

श्री ज्ञानायनमः  
श्री सोमप्रज्ञाचार्य विरचित  
**श्री सिंहदूर प्रकार**

आ ग्रंथ

मूल, टीका, जाषा, बालावबोध अने  
कथाउ सहित रेहे.

तेने

यथामति संसोधन करावीने,  
**श्रावक, ज्ञीमसिंह माणके**

श्री मोहमयी पत्तन मध्ये

निर्णयसागर छापखानामां छपावी प्रसिद्ध कर्म्मे रेहे,

संवत् १९५८. श्री विक्रमसंग्रहालय

वैद्यालय शुभि द्वारा प्रकाशित

## प्रस्तावना.

“ सिंदूर प्रकर ” आ अपूर्व ग्रंथमां तेना कर्त्ता श्री शोमप्रज्ञाचार्य महाराजे नीति आदि विषयोनुं यथातथ्य एवुं तो निरूपण करेलुं ढे के, ते वांचक वर्गनाहृदयमां वांचवानी साथेंज निति विगेरेनी स-ज्ञड डाप बेसाडी दे ढे. आ अल्कौकीक ग्रंथ प्रथम शेर नीमसी ज्ञाइए “जैनकथा रत्नकोष ना” प्रथम ज्ञागमां उपावेल हतो. ते ग्रंथनी तमाम प्रतो अश्रही ढे. तेज आ ग्रंथनी महत्वता दर्शावी आपे ढे. तेमज तेनी मांगणी घणे स्थलेशी थाय ढे तेथी अमोए आ “ सिंदूर प्रकर ” ग्रंथ मूल, टीका, ज्ञाषा बालावबोध अने तमाम कथाउ सहित जूदो उपाव्यो ढे.

आ ग्रंथ वांच्या पठी ते फरी फरी वांचवा मन थाय ढे. मतलबके तेमां समावेल विषय धर्मोपयोगी हो-वानी साथे संसार व्यवहारीपयोगी पण होवाशी ए ग्रंथ कंगाये थतां अलज्य लाज्ज आपवा परिपूर्ण समर्थ ढे. वांचनार साहेबोने तेमां निरूपण करेली बाबत हावेहृष्ट तेवाज खरुपे परिणम्या रहे नहीं एवी ए ग्रंथकारनी चमत्कृति ढे, अने तेथी तेमांना विषयो

हृदयमां प्रवेश थवानी साथे तेवी रीतनी प्रवृत्ति अ-  
वस्य निःसंदेह थइ शके एम कही शकाय तेम डे.  
जेथी वीतराग परमात्मानी जक्किमां दीन थइ आ  
असार संसारसमुद्भ तरी पार पडवाने समर्थ थवाय  
डे अने तेथी आ ग्रंथ एक नौका समान डे.

आ ग्रंथनो जेम जेम विशेष जैन ज्ञान्धर लाज्जाके  
तेवी मारी जीङ्गासा होवाथी फक्त आ एकलोज ग्रं-  
थ जूदो प्रसिद्ध कर्यो डे. आ ग्रंथ उपाववामां दृष्टी  
दोषथी अगर मतिमंदताने दीधे कांइपण न्यूनाधिक  
वचन सिद्धांत विरुद्ध लखायुं होय ते मीथ्या दुष्कृत  
हो, अने तेवी कोइ ज्ञाल होय तो ते वांचनार श्रीसं-  
घे सुधारी वांचवा कृपा करवी. उपाया पठी अमारा  
जोवामां जे कोइ ज्ञालो आवी ते संबंधी शुद्धिपत्र आ  
ग्रंथने डेडे दाखल कर्यु डे ते मुजब प्रथम सुधारी लइ  
वांचवा प्रयत्न करशो एवी आशा डे.

|                       |   |                 |
|-----------------------|---|-----------------|
| मुंबई. ता. १० मी. मे. | } | दां. श्रावक,    |
| शने १५०२              |   | नीमसिंह माणेकना |

कार्य प्रवर्तको.

# अस्य पुस्तकस्यानुक्रमणिका.

## सिंदूरप्रकराख्यग्रंथनी अनुक्रमणिका.

| क्रमांक. | विषय.   | पृष्ठांक. |
|----------|---|-----------|
| १        | मंगलाचरण तथा सांजखनाराने आशीरवाद.                         | १         |
| २        | बीजा काव्यमां सज्जनपुरुषोपत्यें ग्रंथकर्त्तानी विज्ञप्ति. | ५         |
| ३        | त्रीजा काव्यमां आगमानुसारे नव्यजनने हितोपदेशा.            | ७         |
| ४        | धर्मने विषे प्रमाद न करवा आश्रयी दक्षितांग कुमरनीकथा।     | ११        |
| ५        | चोथा काव्यमां मनुष्यज्ञवनुं दुर्बन्धपण्ड विषयाणुं देव.    | ३३        |
| ६        | मनुष्यज्ञवना दुर्बन्धपण्डविषे दश दृष्टांतनी दश कथा.       | ३६        |
| ७        | पांचमा काव्यमां मनुष्यज्ञवनो सर्वोत्कृष्ट जय कह्यो देव.   | ६४        |
| ८        | ठघा काव्यमां संसारना विषयमाटे धर्मनो त्याग करनार मू.      | ६७        |
| ९        | मूढ अमूढ उपर शारी अने सूर बे ज्ञाइउनी कथा.                | ७०        |
| १०       | सातमा काव्यमां मनुष्यज्ञन्मनुं तथा धर्मसामग्रीनुं दुर्दे. | ७३        |
| ११       | आठमा काव्यमां ए ग्रंथमां कहेदा उपदेशनां धारो कहां देव।    | ७५        |
| १२       | नवमाथी बारमा श्लोकमां श्रीतीर्थकरनी जक्किनुं वर्णन देव।   | ७६        |
| १३       | तेरमाथी शोदशमा श्लोकोमां गुरुनी जक्किनुं वर्णन देव.       | ७९        |
| १४       | कुबोधना विद्यन करनार श्रीगुरु देव ते उपर सूर्योन्नदेवनी।  | ८७        |
| १५       | गुरुसेवा करनार उपर श्रीगौतमस्वामीनी कथा.                  | १०४       |
| १६       | सत्तरमाथी वीशमा श्लोकोमां जिनमत तथा सिद्धांतमा।           | १११       |
| १७       | सिद्धांतश्रवण उपर रोहिणीया चोरनी कथा.                     | .... ११४  |
| १८       | एकवीशथी चोवीशमा काव्य पर्यंतसंघनो महिमा कह्यो।            | १३२       |
| १९       | श्रीसंघमहिमा उपर ज्ञरतचक्रवर्तीनी कथा.                    | .... १४०  |
| २०       | पच्चीशथी अष्टावीशमा श्लोकमां हिंसानो निषेध कह्यो।         | १४७       |

# अनुक्रमणिका.

२

- ११ जीवदयानी उपर दामनकनी कथा कही डे. .... १५७  
 १२ उगण्ठीशश्रीब्रीशमाश्लोकोमां साचुंबोखवानोपज्ञाव. १६४  
 १३ सत्यवचन उपर वसुराजानी कथा कही डे. .... १७५  
 १४ तेन्नीशश्री उन्नीशमा श्लोकमां अदत्तादानव्रत स्वरूप डे. १७०  
 १५ अदत्तव्रत उपर नागदत्तनी कथा. .... .... १७७  
 १६ साडत्रीशश्री चालीशमा श्लोकोमां ब्रह्मचर्यनुं स्वरूप. १८१  
 १७ एकतालीशश्री चुम्मालीशमा श्लोकपर्यंत परिग्रहनादोष १  
 १८ परिग्रह विषे मम्मणरोरनी कथा. .... .... १११  
 १९ पीस्तालीशश्री उगण्पच्चाशमा काव्यमां क्रोधनो जय डे. ११५  
 २० क्रोध त्यागनी उपर गजसुकुमारनी कथा. .... .... १२४  
 २१ उगण्पच्चासश्री त्रेपनमा काव्योमां मानना दोष कह्या. १२६  
 २२ मानना त्याग उपर नंदीवेणनी कथा. .... .... १३५  
 २३ त्रेपनश्री उपन्नमा काव्योमां मायानो त्याग कह्यो डे. १३७  
 २४ सत्तावन्नश्री शारमा काव्यसुधी लोन्ननो त्याग कह्यो. १४३  
 २५ लोन्ननी उपर सागररोरनी कथा कही डे. .... १५३  
 २६ एकशरथी चोशरमा काव्योमां सौजन्यता राखवानो उप. १५७  
 २७ सौजन्य उपर विक्रमराजानी कथा कही डे. .... १६६  
 २८ पांसरथी अडशष्टमा काव्योमां गुणीजनना संगनुं वर्णन. १७५  
 २९ सारा नरसानी संगत उपर वे पोपटनी कथा. .... १७५  
 ३० उगणोतेरथी बहोंतेरमा काव्यसुधी इंजियजयनो उपदेश १७७  
 ३१ इंजियदमन उपर सत्यकीनी कथा. .... .... १७६  
 ३२ ब्रहोंतेरथी उहोंतेरमा काव्यसुधी लद्मीनो स्वज्ञाव क. ३०२  
 ३३ लद्मीनी चंचदत्ता विषे सुंदरराजानी कथा. .... ३१२

- ४४ सत्योतेरथी एंशीमा काव्योमां दाननो उपदेश डे. ३१३  
 ४५ दान पूजा विषे अमरसेन वीरसेननी कथा. .... ३२२  
 ४६ एकाशीथी चोराशीमा काव्योमां तपनो उपदेश डे. ३३२  
 ४७ तप उपर वसुदेवना जीव नंदीषेणनी कथा. .... ३४२  
 ४८ पञ्चाशीमाथी अचाशीमां काव्योमां शुज्जनावनो उपदेश. ३४३  
 ४९ नेव्याशीथी बाणुमा काव्योमां वैराग्य दर्शाव्यो डे. ३५३  
 ५० वैराग्यनी उपर सनत्कुमारनी कथा कही डे. ... ३६१  
 ५१ त्राणुथी अचाणुमा काव्यसुधी सामान्य उपदेश डे. ३७०  
 ५२ नवाणुमा काव्यमां ग्रंथनुं समर्थन कस्युं डे ..... ३७२  
 ५३ सोमा काव्यमां प्रशस्ति करीने ग्रंथ समाप्त कस्यो डे. ३७३
- 
-

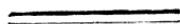
# शुद्धिपत्र.

---

|         |       |                     |                    |
|---------|-------|---------------------|--------------------|
| पांच.   | लीटी. | अशुद्ध.             | शुद्ध.             |
| १२—१८—  |       | ब्रतरुचौ            | ब्रतरुचौ           |
| २५—८—   |       | पीठो                | दीठो               |
| ३७—१४—  |       | प्रसन्नपणे          | प्रढन्नपणे         |
| ५७—१—   |       | आपो                 | आपो                |
| ७४—५—   |       | ( उषदं कें )        | ( उपदं कें )       |
| ८२—१२—  |       | जपा                 | पूजा               |
| ८३—१०—  |       | उता                 | उतो                |
| ८३—१६—  |       | ( साम्राज्य कें )   | ( साम्राज्य कें )  |
| ८४—५-६- |       | पु-ष्योयें          | पु-ष्योयें         |
| ८१—६—   |       | चैति                | चैति               |
| ८३—८—   |       | अशात                | अर्थात्            |
| ८३—१०—  |       | वध्यमुक्तेति        | वधमुक्तेति         |
| ८४—१८—  |       | यत्पुण्यमुत्पुद्यते | यत्पुण्यमुत्पद्यते |
| ८४—१—   |       | जानण                | जानए               |
| १०४—१०— |       | धर्मधर्माँ          | धर्माधर्माँ        |
| ११८—८—  |       | काशोऽप्रियोपि       | काशोऽप्रियोऽपि     |
| १२४—५—  |       | आपत                 | अपत                |
| १३४—४—  |       | वद ।                | वली                |
| १५०—१४— |       | सत्पाच्चिर्यद       | सत्पाच्चिर्यदि     |
| १६०—११— |       | सागरपोतना           | सागरपोतना          |
| १६४—१४— |       | प्रज्ञातञ्जवनं      | प्रज्ञावञ्जवनं     |

# शुद्धिपत्र.

|         |                   |                   |
|---------|-------------------|-------------------|
| १७१—१—  | ( अपत्यय के० )    | ( अपत्यय के० )    |
| १७१—१२— | आसत्य             | आसत्य             |
| १७३—४—  | पुरषने            | पुरुषने           |
| १७५—५—  | शुक्तिमनी         | शुक्तिमती         |
| १७५—२०— | जूदा              | जूदा              |
| १८४—३—  | गुनवनकां          | गुनवनकों          |
| २०६—६—  | वनवा              | वनना              |
| २०७—३—  | विश्रामच्छः,      | विश्रामच्छः,      |
| २०८—१४— | क्रीडगृहमित्यर्थ  | क्रीडागृहमित्यर्थ |
| २२१—१४— | ( धर्म के० )      | ( धर्म के० )      |
| २२४—१५— | तेना              | तेनो              |
| २२४—१७— | गणोतो             | गण तो             |
| २३३—१२— | करतुति            | करतूति            |
| २३८—४—  | दूरतोमुंज         | दूरतोमुंच         |
| २६०—१४— | यशश्वयादि         | यशश्वयादि         |
| ३०२—१६— | ( वीम्नगाईव के० ) | ( नीम्नगाईव के० ) |
| ३०३—५—  | धूमस महनी         | धूम समूह नी       |
| ३१२—११— | शुज्ञाशुज्ञकर्मज  | शुज्ञाशुज्ञकर्मजे |
| ३१०—१—  | हेतकां            | हेतकों            |
| ३६१—१५— | वेराग्य           | वैराग्य           |



अथ

## ॥ श्रीसिंहदूरप्रकरः प्रारम्भ्यते ॥

प्रथम ग्रंथना प्रारंजमां ग्रंथकर्ता पोताना जे इष्टदेव  
तेना चरणस्मरणरूप मंगलाचरण पूर्वक आ  
ग्रंथ सांजखनाराठने आशीर्वाद कहे छे.

॥ शार्दूलविक्रीडितवृत्तद्वयम् ॥

॥ सिंदूरप्रकरस्तपःकरिशिरःक्रोडे कषायाट-  
वी, दावार्चिर्निचयः प्रबोधदिवसप्रारंजसूर्यो-  
दयः ॥ मुक्तिस्त्री कुचकुंज ( वदनैक ) कुंकु-  
मरसः श्रेयस्तरोः पद्मव, प्रोद्मासः क्रमयोर्न-  
खद्युतिज्जरः पार्श्वप्रज्ञोः पातु वः ॥ १ ॥

अर्थः—( पार्श्वप्रज्ञोः केण ) श्रीपार्श्वनाथ प्रज्ञुना  
( क्रमयोः केण ) चरण जे तेमना ( नख केण ) नख,  
तेनी ( द्युती केण ) कांति, तेनो ( ज्जरः केण ) समूह  
ते ( वः केण ) तमोने ( पातु केण ) रक्षण करो. हवे  
ते नखकांतिसमूह केहवो रे ? तो के ( तपः केण )  
तपरूप ( करी केण ) हस्ती, तेना ( शिरः केण )  
मस्तक, तेनो ( क्रोडे केण ) मध्यज्ञाग जे कुंजस्थल

तेने विषे ( सिंदूरप्रकरः केऽ ) सिंदूरना पुंज समान डे, वद्वी ( कषाय केऽ ) क्रोध, मान, माया, लोच, ते रूप ( अटवी केऽ ) वन, तेने बालवा माटे ( दावाच्चिर्निचयः केऽ ) वनना अग्निनी ज्वालाना समूहनी तुल्य डे. वद्वी ( प्रबोध केऽ ) ज्ञान ते रूप जे ( दिवस केऽ ) दिवस तेनो ( प्रारंभ केऽ ) उदय, तेने विषे ( सूर्योदयः केऽ ) सूर्योदय सदृश डे, वद्वी ( मुक्तिस्त्री केऽ ) मुक्तिरूप जे स्त्री, तेना ( कुचकुंज केऽ ) स्तनकुंज, तेने विषे ( कुंकुमरसः केऽ ) कुंकुमरसना लेपन समान डे, तथा ( श्रेयस्तरोः केऽ ) कल्याणरूप जे वृक्ष तेना ( पद्मव केऽ ) नवांकुर तेनो डे ( प्रोद्धासः केऽ ) उत्पत्ति जे थकी, एवो डे. आ श्लोकमां नखकांतिसमूहनी रक्तता डे, माटे सिंदूरप्रकरनी उपमा शापी डे. तथा वद्वी आ श्लोकमां कोइ रेकाणे ( मुक्तिस्त्रीवदनैककुंकुमरसः ) एवो पण पाठ डे. तेनो अर्थ एवी रीतें डे के मुक्तिरूप स्त्रीनुं शोज्ञायमान जे मुख ते मुखकमल रंगवाने विषे कुंकुमरस लेपन सरखो नखकांतिसमूह डे, तेवो अर्थ जाणवो, माटे हे जन्म्यजनो ! ए प्रकारें जाणी मनमां विवेक लावीने श्रीपाश्चनाथनां चरणकमलज

सेवन करवां, ते सेवनार सुजनने जे पुण्य उत्पन्न थाय  
डे, ते पुण्यना प्रसादें करीने उत्तरोत्तर मांगलिक्य-  
माला विस्तार पामो ॥ १ ॥

॥ टीका ॥ श्रीमत्पार्षजिनं नत्वा, स्तोतृणां सुखका  
रकम् ॥ सद्यः संस्मृतिमात्रेण, प्रत्यूहव्यूहवारकम्  
॥ १ ॥ श्रीचंद्रकीर्त्तिसूरीणां, सदगुरुणां प्रसादतः ॥  
सिंदूरप्रकरव्याख्या, क्रियते हृषकीर्त्तिना ॥ २ ॥ युग्मं ॥  
ग्रंथकर्ता आदौ इष्टदेवताचरणस्मणरूपं मंगलाचरण  
पूर्वकं श्रोतृन् प्रति आशीर्वादवृत्तमाह ॥ व्याख्या ॥  
पा श्र्वप्रज्ञोः श्रीपा श्र्वनाथस्य क्रमयोश्वरणयोर्नखयुति-  
ज्ञरः नखकांतिसमूहोवो युष्मान् पातु अवतु रक्तु ॥  
कथं चूतो नखयुतिज्ञरः तपःकरीशिरःक्रोडे सिंदूर-  
प्रकरः तपएव करी हस्ती तस्य शिरःक्रोडे मस्तकम-  
ध्यज्ञागः कुञ्जस्थलं तत्र सिंदूरप्रकर सिंदूरपुंजसदृशः  
नखयुतिज्ञरस्य रक्तत्वात् सिंदूरप्रकरोपमा, पुनः कथं-  
चूतः नखयुतिज्ञरः कषायाटवीदावार्चिर्निंचयः कषा-  
याः क्रोध, मान, मायालोकास्तएव अटवी अरण्यं वनं  
तस्याः दावार्चिर्निंचयः दावामिज्वालासमूहतुल्यः ।  
पुनः कथं चूतो नखयुतिज्ञरः प्रबोधदिवसप्रारंजसू-  
र्योदयः प्रबोधङ्गानं सएव दिवसो दिनं तस्य प्रारं-

ने उदये सूर्योदयसमानः । पुनः कथं चूतोनखयु-  
 तिन्नरः मुक्तिस्त्रीकुचकुञ्जकुमरसः मुक्तिरेव स्त्रीत-  
 स्याः कुचावेव कुञ्जौ तत्र कुंकुमरसः काश्मीरजोड  
 वद्वेष्टुद्यः मुक्तिस्त्रीवदनैककुंकुमरसश्ति वा पाठः ।  
 पुनः कथं चूतः नखयुतिन्नरः श्रेयस्तरोः पद्मवप्रोद्मा-  
 सः श्रेयः कल्याणमेव तरुवृक्षस्तस्य पद्मवानां नूतन-  
 पत्राणां प्रोद्मासः उड्डमः । ईदृशः पा॒र्श्वप्रज्ञोः क्रमयो-  
 श्वरणयोर्नखयुतिन्नरोवो युष्मान् पातु रक्षतु नखयु-  
 तिन्नरस्य रक्तवर्णत्वात् रक्ता एवोपमा । ज्ञो चब्य  
 प्राणिन् ! एवं इत्यात्वा मनसि विवेकमानीय श्रीपा-  
 र्श्वनाथस्य चरणकमलौ एव सेव्यौ सेव्यमानानां  
 यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरं मांगलि  
 क्यमाला विस्तरंतु ॥ १ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—शोन्नित तप गजराज, सीस सिं-  
 हूरपूर भवि ॥ बोधदिवस आरंज, करन कारन उ-  
 द्योत रवि ॥ मंगल तरु पद्मव, कषाय कंतार हुता-  
 शन ॥ बहु गुनरतन निधान, मुक्ति कमला कमला  
 सन ॥ इहविध अनेक उपमा सहित, अरुन वरन  
 संताप हर ॥ जिनराय पाय नख ज्योति वर, नमत  
 बनारसि जोरि कर ॥ १ ॥

हवे कवि सज्जन पुरुष प्रत्यें पोतानी  
विज्ञप्ति करे डे.

संतः संतु मम प्रसन्नमनसो वाचां विचारो  
द्यताः, सूतेऽम्भः कमलानि तत्परिमखं वाता  
वितन्वंति यत् ॥ किंवाच्यर्थनयानया यदि  
गुणो स्त्यासां ततस्ते स्वयं, कर्त्तारः प्रथ-  
नं नचेदथ यशः प्रत्यर्थिना तेन किम् ॥७ ॥

अर्थः— ( संतः केण ) सज्जनो, ( मम केण ) मने,  
( प्रसन्नमनसो केण ) प्रसन्न डे मन जेनुं एवा ( संतु  
केण ) हो. अर्थात् मारी उपर प्रसन्न चित्तवाला  
शाउ. ए सज्जनो केहवा डे ? तोके ( वाचां केण )  
वाणीउना ( विचारोद्यताः केण ) सदसद्विचारने  
विषे सावधान एवा अर्थात् आ वाणी सारी, आ  
वाणी नहिं सारी ए प्रकारना विचारने जाणनारा  
डे. कवि कहे डे. ते घटे डे ( यत् केण ) जे कार-  
णमाटे ( अंजः केण ) जल जे डे, ते ( कमलानि  
केण ) कमलोने ( सूते केण ) उत्पन्न करे डे, परंतु  
( तत्परिमखं केण ) ते कमलोनो आमोद जे डे  
तेने तो ( वाताः केण ) वायुउ ( वितन्वंति केण ) वि-

स्तारे डे, तेम हुं पण आ ग्रंथने रचीश, परंतु ग्रं-  
 थनो विस्तार तो सज्जन पुरुषोज करशे. कोइ रें-  
 काणे कहेद्दुं डे के ॥ १६०क ॥ पद्मानि बोधयत्यर्कः,  
 काव्यानि कुरुते कविः ॥ तत्सौरज्जं नजस्वंतः, संत-  
 स्तन्वंति तङ्गुणान् ॥ अर्थः—कमलने सूर्य विकसित  
 करे डे, तेम काव्योने कवि करे डे, अने ते कमलो-  
 ना सुगंधने वायु प्रसार करे डे, तेम ए कविना गु-  
 णोने संत पुरुषो विस्तारे डे, माटे सज्जननुं एवुं  
 लक्षणज होय डे. ( वा कें ) अथवा जो ते स-  
 ज्जनोनी अन्यर्थना हुं करुं तो पण ते ( अनया  
 कें ) आ मारी कवितानी प्रशंसा करो एवी ( अ-  
 न्यर्थनया कें ) याच्चायें करीने ( किं कें ) शुं  
 कांहीज नहिं. शा कारण माटे के ( यदि कें )  
 जो ( आसां कें ) आ मारी वाणीउ मध्यें ( गु-  
 णोस्ति कें ) गुण डे. ( ततः कें ) तो ( ते कें )  
 ते सज्जनो, ( स्वयं कें ) पोतानी मेलेंज ( प्रथनं  
 कें ) विस्तारने ( कर्त्तरः कें ) करनारा आशे.  
 अर्थात् आ ग्रंथमां कांहिं गुण हशे तो सज्जनो डे,  
 ते मारी प्रार्थना कस्या विनाज विस्तार करशे,  
 ( अथन चेत् कें ) वद्दी जो आ मारी वाणीउमां

गुण नहिं होय तो ( यशःप्रत्यर्थिना के० ) यशना  
शत्रुज्ञात् अर्थात् अपयशने करनारा एवा ( तेन  
के० ) ते विस्तारें करिने ( किं के० ) शुं ? कांही-  
ज नहि. एटदे निर्गुणनो विस्तार करवाथी अपय-  
शज आय डे ॥ २ ॥

॥ टीका ॥ अथ कविः सज्जनपुरुषान्प्रति स्ववि-  
ज्ञस्तिमाह ॥ संतश्चति ॥ सज्जना मम प्रसन्नमनसः  
संतु ममोपरि प्रसन्नचित्ताः ज्ञवंतु । किंविशिष्टाः  
संतः । वाचां कविवाणीनां विचारे सदसद्विचारारेउ-  
द्यताः सावधानाः समीचीनासमीचीनविचारङ्गाः  
यत् यस्मात् कारणात् अंजः पानीयं कमलानि सूते  
तेषां कमलानां परिमलमामोदं वायवो वितन्वंति  
विस्तारयंति तद्वदेनं ग्रंथमहं रचयिष्यामि परं वि-  
स्तारं सज्जनाः करिष्यन्ति ॥ यतः ॥ पद्मानि बोध-  
यत्यर्कः काढ्यानि कुरुते कविः ॥ तत्सौरज्ञं नज-  
स्वंत, संत स्तन्वंतु तक्षणान् ॥ अथवा अनया म-  
मान्यर्थनया सतामये प्रार्थनया किं अपितु न कि-  
मपि । कुतः । यद्यासां ममवाणीनां मध्ये गुणोऽस्ति  
तदा ते संतः स्वयमेव प्रथनं विस्तारं कर्त्तारः ज्ञ-  
विष्यन्ति ॥ यद्यस्मिन् शास्त्रे कश्चिक्षुणो ज्ञविष्यति

तदा संतः स्वयमेव अञ्जयर्थनां विनैव विस्तारं करि-  
ष्यन्ति ॥ अथचेद्यदि आसां ममवाणीनां मध्ये गुणो  
नास्ति तदा तेन प्रथनेन विस्तरेण किं न किमपि ॥  
कथं चूतेन तेन प्रथनेन यशः प्रत्यर्थिना यशः प्रत्य-  
र्थिशत्रुचूतं यत्तत् यशः प्रत्यर्थि तेन यशः प्रत्यर्थिना  
यशसो विनाशकेन निर्गुणस्य विस्तारणेन अयशो  
ज्ञवतीत्यर्थः ॥ २ ॥

**ज्ञाषाकाव्यः**—जैसें कमल सरोवर वासैं, परिमल  
तासु पौन परगासैं ॥ त्यौं कवि ज्ञाषहि अद्वार जोर,  
संत सुजस प्रगटहिं चिहू उर ॥ जो गुणवंत रसा-  
लकवि, तौ जगमहिमा होइ ॥ जो कवि अद्वारगुन  
रहित, तौ आदरे न कोइ ॥ २ ॥

हवे करी डे सकल सुरासुरे सेवा जेमनी एवा जे  
श्रीवीतराग तेमना आगमना अनुसारे जब्य  
जनना हितने माटे धर्मोपदेश कहे डे.

॥ उपजातिवृत्तम् ॥ त्रिवर्गसंसाधनमंतरेण,  
पशोरिवायुर्विफलं नरस्य ॥ तत्रापि धर्मं प्रव-  
रं वदंति, न तं विना यज्ञवतोर्थकामौ ॥ ३ ॥

**अर्थः**— हे जब्यजनो ! ( त्रिवर्गसंसाधनं केष्ठ )

धर्म, अर्थ अने काम, तेना साधननी ( अंतरेण  
 कें ) विना ( नरस्य कें ) मनुष्यनुं ( आयुः कें )  
 आयुष्य ( पशोरिव कें ) गगादिकनी परें ( वि-  
 फलं कें ) निःफल जाणवुं. अर्थात् धर्म, अर्थ,  
 काम अने मोक्ष ए चार जे पुरुषार्थ ढे तेमां हाल  
 ज्ञरतखंरमां मोक्ष तो साधवाने शक्य नथी, ए का-  
 रण माटे शेष धर्म, अर्थ अने काम, ए त्रणना उ-  
 पार्जन विना नर जे मनुष्य तेनुं जीवितव्य पशुनी  
 परें विफल जाणवुं. हवे त्यां आशंका करे ढे के ते  
 धर्म अर्थ अने काम, ए त्रण समान ढे के कांइ ते-  
 उमां अंतर ढे ? तो त्यां कहे ढे, के ( तत्रापि कें )  
 ते त्रण वर्गमां पण ( धर्म कें ) धर्मने ( प्रवरं कें )  
 श्रेष्ठ, ( वदंति कें ) कहे ढे. ( यत् कें ) जे का-  
 रण माटे ( तं कें ) ते धर्म ( विना कें ) विना  
 ( अर्थकामौ कें ) अर्थ अने काम ( न कें ) नहिं  
 ( ज्ञवतः कें ) होय ढे. कारण के जेणे पूर्वजन्में  
 धर्म कस्यो ढे तेनेज अर्थ, काम, आ जन्ममां प्राप्त  
 आय ढे. तेमाटें त्रणवर्गमां जे धर्म ढे, तेज श्रेष्ठ ढे.  
 तेथी है ज्ञव्यप्राणीयो ! मनने विषे विवेक लावीने  
 श्रीसर्वज्ञप्रणीत धर्मज आचरण करवो. धर्मचिरण

करनारा सज्जनोने जे पुण्य उत्पन्न आय डे, ते पुण्यना प्रसादें करीने उत्तरोत्तर मांगदिक्य माला विस्तार पामे डे ॥ ३ ॥

टीकाः—अथ विहितसकलसुरसेव्यस्य देवा  
धिदेवस्य श्रीवीतरागस्यागमानुसारेण जब्यानां हि-  
तहेतवे धर्मोपदेशमाह ॥ त्रिवर्गर्इति ॥ जो जब्याः  
त्रिवर्गसंसाधनं अंतरेण नरस्य आयुः पशोरिव वि-  
फलं झोयं । धर्मार्थकाममोक्षाश्रत्वारः पुरुषार्थाश्रितु-  
र्वर्गस्तेषां मध्ये सांप्रतं अस्मिन् भरतक्षेत्रे मोक्षः  
साधयितुं न शक्यः ॥ अतः कारणात् शेषस्त्रिवर्गः  
धर्मोर्थकामरूपः । तस्य त्रिवर्गस्य संसाधनं उपा-  
र्जनं अंतरेण विना नरस्य मनुष्यस्य आयुर्जीवितं  
पशोरिव विफलं निःफलं वृथेत्यर्थः ॥ येन नरेण ॥  
धर्मार्थकामानां संसाधनं उपार्जनं न क्रियते  
तस्य जीवितं पशोरिव डागादेरिव वृथा निः फलं  
॥ यतः ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां, यस्यैकोपि न वि-  
द्यते ॥ अजागल स्तनस्यैव नीःफलं तस्य जीवि-  
तम् ॥ १ ॥ इति ॥ ते त्रयोपि किं सदृशाः वा किं-  
चिदंतरं इत्याह ॥ तत्रापि त्रिवर्गे धर्म प्रवरं वदंति  
श्रेष्ठं कथयन्ति कुतः यत् यस्मात् कारणात् धर्म विना

श्रीर्थकामौ न ज्ञवतः । येन पूर्वजन्मनि धर्मः कृ-  
तो ज्ञवति तस्यैवात्रार्थकामौ ज्ञवतः नान्यस्य ॥ य-  
दुक्तं किं जंपिएण बहुणा, जं जं दीसई समडजि-  
यबोए ॥ इंदीयमणान्निरामं, तं तं धर्मं फलं सद्वं  
॥ २ ॥ अतः कारणात् त्रिवर्गे धर्मएव श्रेष्ठः ॥ ज्ञो  
ज्ञव्यप्राणिन्नेवं झात्वा मनसि विवेकमानीय श्रीस-  
र्वज्ञप्रणीतो धर्म एवाचरणीयः धर्माचरतां सतां य-  
त्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरमांगलिक्य-  
माला विस्तरंतु ॥ ३ ॥

ज्ञाषाकाव्यः— पुरुष तीन पदारथ साधहिं, धर-  
म विशेष जानि आराधहिं ॥ धरम प्रधान कहै सब  
कोइ, अरथ काम धरमहीतें होइ ॥ धरम करत  
संसार सुख, धरम करत निरवान ॥ धरमपंथ सा-  
धन विना, नर तिरियंच समान ॥ ३ ॥

माटे धर्मने विषे प्रमाद न करवो, धर्मोद्यम क-  
रवाने प्रसादें ललितांग कुमर सुख पाम्यो, अने  
धर्म नही करवाशी सज्जननामा सेवक डुःख पाम्यो  
ते बेहुनी कथा कहे रे.

कथा:- एहज जरतक्षेत्रने विषे श्रीवाल नामें न-  
गर ढे. तिहाँ नरवाहन नामें राजा राज्य करे ढे,

तेने रूप यौवननिधान सर्वगुणेण करी प्रधान, अमृ-  
 तसमान जेनी वाणी डे एवी कमलानामें स्त्री डे.  
 तेनी कूखें जेम ढीपने विषे मुक्ताफल उपजे, तेवा  
 रूपेण करी अमर समान लक्षितांगनामा कुंश्वर ज-  
 न्म्यो, ते अनुक्रमें सर्व कलामां प्रवीण थयो. सा-  
 हात् कंदपर्वतार जेवो अने विनय विवेक विचार  
 चातुर्यादि गुणेण संपन्न थयो, तेने द्वालतां पालतां  
 ते यौवनावस्थाने पाम्यो, तेवारें अनेक प्रकारनां  
 सांसारिक सुख ज्ञोगवतो दिवस द्यतिक्रमवा द्वा-  
 न्म्यो. कोइक अवसरें ते कुमरने कोइ सज्जन एवे  
 नामें मित्र आवी मछ्यो, यद्यपि तेनुं नाम तो स-  
 ज्जन डे परंतु परिणामें करी ते अतिरुद्धर्जन डे.  
 हवे तेनी उपर कुमर-अत्यंत प्रीती राखे डे, पण ते  
 पोतानुं दुर्जनपणुं वधारतो जाय डे ॥ यतः ॥ श  
 शीनि खब्बु कलंकं, कंटकं पद्मं नाले, जलधिजलम  
 येयं, पंमिते निर्धनत्वं ॥ दयितजनवियोगं, दुर्जगत्वं  
 स्वरूपे, धनपतिकृपणत्वं, रत्नदोषी कृतांतः ॥ १ ॥  
 जाड्यंधीमति गण्यते ब्रतरुचौ दंजः शुचौ कैतवं ॥  
 इति काव्यं ॥ शशी दिवसधूसरो गलितयौ वना का  
 मिनि, सरोविगतवारिजं मुखमनक्षरं स्वाकृतेः ॥

प्रचुर्धनपरायणः सतत ऊर्गतिः सज्जनो, नृपांगणग-  
तः खलोन्नवंति सप्त शब्द्यानि मे ॥ २ ॥ इति ॥ जे-  
म नागरवेखिमां निःफलतानुं कलंक, चंदनमां क-  
द्रुतानुं कलंक, लक्ष्मीमां चपलतानुं कलंक, सुवर्णने  
विषे निर्गंधतानुं कलंक डे. तेम लखितांग कुमरने  
विषे वार्ताविशेष जे कांइ कार्य प्रमुख करवां तथा  
गुणझाता, पटुता प्रमुख जे करवां, ते सर्वमां सज्जा-  
ननो मेलाप राखवो, ते कलंकरूप डे.

अन्यदा लखितांग कुमर राजाने नमस्कार  
करवा माटे गयो, विनयवंत गुणवंत कुमरने देखी  
राजा संतुष्ट थइने एक बहुमूल्यनो अपूर्व हार रा-  
जायें कुमरने दीधो. कुमर राजाने नमस्कार करी  
पाढो बलतां ते कुमरनी मार्गमां याचकजनोयें जय-  
जयारव करी प्रार्थना कीधी तेथी कुमरें तरत ते ह्यार  
याचकोने आपी दीधो. ते सर्व वात सज्जनें जा-  
णी, अने तेणे आवी राजानी आगल चाडी खा-  
धी ॥ कह्युं डे के ॥ परविघ्नेन संतोषं, न्नजते ऊर्जा-  
नोजनः ॥ लज्जेदम्भिः परां दीसिं, परमं दिरदाहतः  
॥ ३ ॥ राजायें ते वात सांचढी क्रोधवंत थइ कुमरने  
तेडावी एकांते बेसाडी शीखामण आपीने कह्युं, के

हे पुत्र ! तुं अत्यंत दान देवाना व्यसननो त्याग कर ॥ यतः ॥ अतिदानाद्विषी बद्धो, नष्टो मानात् सुयोधनः ॥ विनष्टो रावणो लौद्या, दतिसर्वत्र वर्जयेत् ॥ ३ ॥ महाद्वःखाय संपद्ये, दतिमेघस्य वर्षेणम् ॥ प्राणघाताय जायेत, प्राणिनामतिज्ञोजनम् ॥ २ ॥ हे पुत्र ! आयपदशी अधिको व्यय करे तो समुद्ध पण खाली थइ जाय. माटे पठी निर्झन पुरुष क्यां-य आदर न पामे ॥ यतः ॥ आदरं लज्जते लोको, न क्षापि धनवर्जितः ॥ कांतिहीनोयथा चंद्रो, वासरे न लज्जेत् प्रथां ॥ ३ ॥ यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः इती ॥ माटे कुल, शील, आचार, विद्या, इंद्रियनुं प-दुत्त्व, ए सर्व धनविना निरर्थक जाणवां. तो हवे हे वत्स ! आजशी तहारे आयपद माफक ऊचित खरच करवो, द्रव्यनो संग्रह करवो, जेमाटे राज्यने योग्य तुंज ढो, अने राज्य पण जो नंमारमां द्रव्य सब-ल हशे, तोज चालशे, अने वली द्रव्य हशे, तोज सज्जा सर्व ताहारी आङ्गामां रहेशे.

एवुं पितानुं वचन सांजदी कुमर मनमां चिंतववा लाग्यो, के जूरे महारा पितानुं महाराउपर केटलुं हेत ढे ॥ यतः ॥ आकरैरंगितैर्गत्या, चेष्टया ज्ञापणे-

न च ॥ नेत्रवक्त्रविकारैश्च, लक्ष्यतेऽतर्गतं मनः ॥ को-  
 श्क पुण्यवंतनी उपरज माता पितानी सौम्यदृष्टि प-  
 छे. हवे कुमर पितानी आङ्गा पाम्या पठीखद्वप स्वद्वप  
 दान धर्म करवा लाग्यो, तेवारें याचकजनो कहेवा  
 लाग्या के हे लखितांगकुंशर (प्रथम तमें हाथी स-  
 रखा दातार अश्ने हवे गर्दन्ज जेवा कृपण केम थया ?  
 अथवा प्रथम तमें कद्वपवृक्ष समान अश्ने हवे धतु-  
 राप्राय केम थया ? अथवा पहेला सिंहसमान अश्ने  
 हवे शीयादीया जेवा केम थया ? एम स्वार्थनष्ट याच-  
 क लोको कहेवा लाग्या ॥ यतः ॥ तावत् प्रीतिर्ज-  
 वेद्वोके, यावदान्नं प्रदीयते ॥ वत्सः कीरक्षयं दृष्टा,  
 स्वयं त्यजति मातरम् ॥ १ ॥ कदापि समुद्भर्यादाथी  
 चूके, राजाहरिचंद्र सत्य मूके, मेरु कंपायमान आय,  
 पृथ्वी पातालने चांपे, तथापि सत्पुरुष पोतानी वाचा  
 चूके नहीं ॥ यतः ॥ चलेच्चमेरुः प्रचलेत्तु मंदरं, चलेत्तु  
 ताराग्रहचंद्रज्ञानुः ॥ कदापिकाले पृथिवि चलेद्धि,  
 तथापि वाक्यं न चलेद्धि साधोः ॥ २ ॥ एवां वाक्य  
 सांजद्वी कुमर डुःखित थयो थको चिंतववा लाग्यो  
 के मने तो वाघ नदीना न्याय समान कष्ट प्राप्त  
 थयुं छे. हवे जो हुं दानेश्वर थाऊं हुं, तो पितानी

आङ्गानुं उद्वंघन थाय डे, अने जो दान नथी आपतो,  
 तो कीर्ति जाय डे ॥ यतः ॥ जइ गिवइ गवइ उयरं,  
 जइ न गिलइ गवंति न यणाइ ॥ अहिविसमा कज्जा  
 गइ, अहिणा भुंदरी गहिया ॥ १ ॥ अथवा रुडुंक-  
 रतां मुजने श्यो दोष डे. एवुं विचारी कुमर वली  
 पण पूर्वनी पेरें दातार थको दान देवा लाग्यो, ते  
 वात राजायें सांजद्वी तेवारें कोपायमान यइने कुम-  
 रने देशवटो दीधो. परी कुमर पण महामाननो धर-  
 नार, साहसिकनो शिरदार ते थोक्काएक असवारोने  
 साथें लइ हाथमां हथीयार लइने तत्काल परदेशें  
 चाल्यो, केम के तेजी ताजणो खमे नही. परी ते  
 समाचार लोकोना मुखथी जाणीने सज्जन पण  
 पाडलथी नीकद्वीने कुमरने जइ मछ्यो. मार्गमां बेहु  
 जण चाव्या जाय डे, तेवारें सज्जनप्रत्यें कुमर पूर्ववा  
 लाग्यो के हे सज्जन ! कांइ चमत्कारिक वात तो कहो.  
 तेवारें सज्जन बोव्यो के हे कुमरजी ! तमें कहो के  
मुण्य अने पाप ए बे मांहे कोण रुडुं डे ? के जेनी  
 ग्रशंसा करीयें. तेवारें लबितांगकुमर हसीने कहेवा  
 लाग्यो के अरे झूंडा मूर्खा ! एटलुं तो सहु कोइ  
 जाणेज डे, के जिहां धर्म तिहां जय, अने पाप ति-

हाँ क्य डे, ते सांचली अधर्मी सज्जन बोल्यो के हे स्वामी ! जो पुण्य रुद्धुं डे, तो तमें दानपुण्यादिक करतां करावतां इहाँ आवी अवस्था केम पास्या ? तारे तेने कुंश्रें कहुं के जे कष्ट पामीयें ते पूर्वकृत पाप कर्मनो उदय जाणवो अने जे शाता पामीयें, ते पूर्वकृत पुण्यकर्मनो उदय जाणवो. तेवारें वक्षी सज्जन बोल्यो, के तमारा धर्मनुं फख तो में प्रत्यक्ष दीरुं, माटें हवे तमें चौर्यादिकें धन उपार्जन करी राज्य पोताने वश करो. ते सांचली लखितांगकुमर बोल्यो के हे दास ! तुं एवां सपाप वचन म बोल. कारण के स्वन्नावें पण पाप वचन बोल्यो थको जीव छुःख प्रत्यें पामे डे. जेम होंशें करी विष खाधुं थकुं पण मरण उपजावे डे, माटे तहारेएवा यद्धा तद्धा प्रबाप करवा नही. कारण वक्षी एम करवाई तारे शुं लाज आय डे. जो तुझने एनो निश्चय कर-वो होय तो चालो आपणे कोइ महंत पुरुषने पूर्डी-यें. अने जो ते पुण्यथकी जय आय एवुं कहे, तो तहारे महारे शी सरत ? ते सांचली सज्जन बोल्यो के जो एम कोइ कहे तो हुं आ जन्मपर्यंत तमारो दास थड्ने रहिश, अने जो एम नठरे तो आजन्म-

पर्यंत तमें माहारा दास थँने रहो. बन्ने जणे एकी प्रतिज्ञा करी, आगल चालतां कोइक गामें जँश पहोता. तिहाँ घणा महोटा लोकोनां टोबामांहे जँश पूरवा लाग्या के ज्ञाइचे ! सुखश्रेय पासीयें ते पुण्यशी किंवा पापशी ? ए प्रश्नवचन सांचलीने लोको बो-खां के ज्ञाइ ! हमणां तो पापज सुखहेतु डे, अने पुण्यशी दृश्य थाय डे, एबुं सांचली बेहुजण आगल चाव्या मार्गमां लितांगकुमरने सज्जान हांसी पूर्व-क कहेवा लाग्यो के अहो कुमर ! हवे तमें घोडा उपरशी उतरी चाकर थँने महारी आगल चालो. पोतानी प्रतिज्ञा पालो. एबुं वचन सांचली कुमर घोडाशी नीचें उतरी सज्जान प्रत्यें कहेवा लाग्यो के हे मित्र ! हुं सर्वदा ताहरो सेवकज हुं. ए असार धननी शोज्ञा कारमी डे तेनी कांइ मने गरज नथी. मने तो एक धर्मज निश्चल थाऊ. एम कही सेवक थँश आगल चाव्यो अने सज्जान घोडा उपर चढ्यो. आगल चालतां वली कुमरप्रत्यें कहेवा लाग्यो के हे कुमर ! श्रीजिनधर्मना फल जोगवो केहवां डे ? हुं तमोने हजी पण कहुं हुं, के तमें तमारो कदा-ग्रह मूकीने पाप चोरादिक कर्म करो, ते शिवाय

बीजो कोइ तमारे जीववानो उपाय मने ज्ञासतो  
नथी. जो एम नाहिं करशो तो कष्ट पामशो. एवां  
वचन सांजली रीश चढावीने कुमर बोद्ध्यो के श्रे  
मूर्ख ! तहारामां गुण तो सर्वे ऊर्जाननांज देखाय  
ठे, पण तहारी फळयें तहारुं नाम सज्जन पाढ्युं ठे.  
ते मिथ्या ठे. जे मिथ्याजपदेश आपे ते महापापी  
जाणवो. तेनी उपर एक दृष्टांत कहुं छुं ते सांजलि  
कोइएक आहेडी निरंतर जीवोनो वध करतो अट-  
वीमां वसे ठे. एकदा प्रस्तावें आहेडीयें वनमां जइ  
एक हरणी दीर्घी, तेने हणवा माटे कान पर्यंत बाण  
सांधीने जेवामां रोडवा लाग्यो, तेवामां हरणी बोद्धी  
के हे व्याध ! हे बांधव ! तुं कण एक सबूर कर.  
एटखामां हुं महारां न्हानां बचांउने धवरावी पाडी  
आवुं. तेवारें आहेडी बीछ्यो श्रे वापडी ! तुं आ  
बाणथी छूटी जइश तो फरी पाडी आवीश नही,  
तेवारें तेने हरणीयें कह्युं के जो हुं न आवुं तो  
महारे शिर गोहत्यादिकनां पापो ठे, ते वचन सां-  
जली आहेडीयें कह्युं के कष्टमांथी उगरवा माटे तुं  
एवां वचन बोद्धे ठे, ते हुं मानुं नही. तेवारें मृग-  
लीयें कह्युं के हे पाराधी ! आ समयें जे तुं कहे

तेवा सम हुं खाउं ! तेवारें आहेडीयें कहुं के शीख पूरतां कुशीख आपे, तेनुं पाप तहारे शिर ल्ये, तो हुं जावा देऊं तेवारें हरणीयें ते प्रतिङ्गा करी, अने पाराधीयें तेने जवा दीधी, पर्ही ते पोतानां बालकोने धवरावी संतोषीने पोतानुं वचन पालवा माटे पाडी आहेडी पासें आवीने कहेवा लागी के हे वधक ! हुं कयी दिशायें नासी जाउं तो तहारा बाणथी बूटुं ! ते सांचली आहेकी विचारवा लाग्यो के हुं एने कुशीख आपीश तो मने पाप लाग्यो, माटे खरुं कहेवुं जोश्यें, एम चिंतवीने कहेवा लाग्यो के जो तुं जमणी बाजुयें नाशी जा, तो बूटे, एवुं वचन सांचली हरणी जमणी बाजु नारी तेथी बूटी. माटे हे सज्जन ! शीख आपतां कुशीख आपे तो ते म-हापापी कहेवाय. तो हवे तुं महारो मित्र डतां मुजने कुशीख केम आपे ठे [जो कोइ बापडा पामर लोकोयें धर्म नही वखाण्यो तो शुं तेथी धर्म व्यर्थ थइ गयो समजवो ? जो आंधखे पुरुषे सूर्य न दीर्घो, तो शुं सूर्य नथी उग्यो, एम समजवुं] माटे संसारमाहे सारपदार्थ सर्वलाकनो आधार, सर्व सुखनो जंडार, स्वर्गापवर्गनो दातार, अर्चित्य-

चिंतामणि समान, सकलकलाप्रधान एवो एक धर्म  
ज ठे एम जाणबुं.

बद्दी सज्जन बोल्यो के अहो कुमर! तुं तो महा  
कदाग्रही देखाय ठे, जेमाटे धर्मनां फल देखतो  
ठतो पण हजी मानतो नथी. रासन्ननुं पूँठ पकड्युं  
ते मूकबुंज नही. एवो तहारो न्याय ठे. जेम कोइ  
ग्रामीण माता पितायें पुत्रने शीखव्युं जे पांच जण-  
मां बेशी जे वात अंगीकार करीयें, ते मूकीयें नही.  
एवी शिक्षा दीधी. एकदा ते मूर्खशिरोमणियें एक  
सांढ नाशी जतोहतो तेथी तेणे पांचनी साहीथी तेनुं  
पूँठ पकड्युं पण मूके नही तारें लोक कहेवा आग्यां  
के हे मूर्ख ! मूकी आप. पण पेलो मूके नही, तेम  
तें पण हठ लीधो ते ठोडतो नथी. हजी पण जो  
महारुं कहुं न माने तो चाल आगल बीजा लो-  
कोने पूरीयें. एम वाद करतां परस्परें नेत्रनी होड  
करी. एटले जे हारे ते पोतानां नेत्र काढी आपे.  
आगल कोइ गाममां जइ लोकोने पूँछ्युं के धर्म  
उत्तम के अधर्म ? तेवारें ते मूर्खोयें पण अधर्मनीज  
स्थापना करी, ते वाणी सांचली सज्जन हर्ष पास्यो.  
आगल जतां कुमरनी पासेंथी होडमां हारेलां नेत्र

माग्यां, कुमरें पण पोतानी चक्षु भरीवडे काढाऊ आपी, तेवारें सज्जाने कहुं के केम कुमरजी धर्मनां फल दीर्घां के ! आंधखा तो थया !!! एम कही लगारेक तिहां बेसी पढी कुमरने मूकी घोडे चडीने सज्जान अन्यदेशें जतो रह्यो.

हवे पाठ्याथी कुमर चिंतववा लाग्यो के आप-दारूप नदीनो पूर, पूर्व कृतकर्मप्रमाणें महारे वृ-द्धि पाम्यो डे, अथवा वलीआपदा ते शुं? धर्मना प्रसादथी सर्व सारुंज आशो. एम चिंतवी झानबद्दें धर्म उपर निश्चल मन करी उज्जो रह्यो. एवामां सूर्य अस्त पाम्यो. चारे दिशायें अंधकार पसख्यो, रात्रिचर जीवो संचार करवा लाग्या, चोर पसख्या, एवा अवसरें तिहां वड उपर नारं धं खीडे मखी मांहोमांहे वातो करवा लाग्या के जेणे जे कौतुक दीरुं होय ते कहो. तेवारें एक बोद्यो के इहांथी पूर्वदिशें चंपा नगरे जितग्नु राजा राज्य करे डे, तेने पुष्पवती नामा पुत्री प्राणथी पण वह्वन्न डे, ते महारूपसोँदर्यनुं निधान डे, यौवनावस्था पामी पण कृतकर्मने योगें तेने अंधपणं प्रात शयुं डे. एकदा प्रस्तावें राजा पोतानी पुत्रीने खोदामां बेसाडी चिं-

तववा लाग्यो के एक तो दीकरी रे ते स्वज्ञावें  
 चिंतानुंज कारण रे अने वद्वी एतो कर्में कल्प-  
 कित रे अने विवाहयोग्य पण थश रे. हवे इयो उ-  
 पाय करवो? एम विचारी नगरमाँ पडह वजडा-  
 व्यो के जे राजानी दीकरीनी आंखो सारी करे,  
 तेने राजा अर्धुं राज्य तथा तेहीज कन्या आपे. ए-  
 वी रीतें राजपुरुषो तिहाँ चहुटे चहुटे ढंडेरो फेरवे  
 रे. ए कौतुक में दीदुं. हवे आगल शुं आशो? ते हुं  
 जाणतो नशी.

एदुं सांचद्वी वद्वी एक न्हानो जारंक बोद्यो के  
 हे तात! तमें जाणता हो तो कहो, के नेत्र सारां  
 थवानो कोइ उपाय रे. ते सांचद्वी वृद्ध जारंक बो-  
 द्यो के हे वत्स! उपाय तो घणाय रे पण जाग्य  
 विना मखे नही. तेवारें लघुज्ञारंक बोद्यो के तमें  
 जाणता हो तो कहो. तेवारे वृद्ध जारंक बोद्यो के  
 हे वत्स! रात्रियें कहेवाय नही ॥ यतः ॥ दिवा  
 निरीद्य वक्तव्यं, रात्रौ नैवच नैवच ॥ संचरंति  
 महाधूत्ता, वटे वररुचिर्यथा ॥ ३ ॥ वद्वी लघुज्ञारं-  
 क बोद्यो के इहाँ तो कोइ सांचद्वतो नशी माटें  
 तमें कहो. तेवारें वृद्ध बोद्यो जे ए वृक्षने जे वेल-

डी वींटाइ रही डे, तेने लइने जो आंखे अंजन करे, तो नवां नेत्र आवे, ते सांजद्दी वल्ली लघुज्ञारंक बोद्ध्यो के स्वामी ! तमें प्रज्ञातें किहां जाशो? ते बोद्ध्यो के तेहीज नगरें हुं जद्ग, लघुज्ञारंक बोद्ध्यो के हुं पण कौतुक जोवाने माटे तमारी साथें आवीश. एवी वात करीने ते ज्ञारंको सूँह रह्या. कुमरें वडहेरल बेरां थकां सर्व वात सांजद्दी विचाखुं जे पुण्यनुं प्रमाण अद्यापि प्रवर्त्ते डे. पर्डी ते वेलडी लइ हाथथी घसीने आंखे अंजन कीधुं, तेथी नवी चक्कु आवी. पर्डी वरु उपर चढी संपूर्ण वेलडी लइ लीधी. अने पोतें ज्ञारंक पंखीनी पांखमां बेसी रह्यो. प्रज्ञातें ज्ञारंक उडी चंपायें पहोतो कुमर पण पांखमांथी नीसरी वस्त्रादिक पहेरी राजद्वारें गयो, दरवाने आवी राजा आगल हकीगत जाहेर करी के हे स्वामी ! कोइक देशांतरी पुरुष आवी कहे डे, के हुं राज्यकुमारीनी आंखो सारी करीश ? ते वात सांजद्दी राजायें तेने आदरथी तेढी विनति करीने कहुं के हे महापुरुष ! उपकार करो. पर्डी कुमरें तरत वेलडीनो रस काहाडी आंखे अंजन करी राजपूत्रीने साजी करी. तेवारें रा-

जायें पण महोटा महोत्सव पूर्वक पोतानी पुत्री कुमरने परणावी दीधी. हाथ मेलावडमां हाथी, घोडा, पायदल प्रमुख घणी लक्ष्मी आपी अने अर्क राज्य दीधुं. तिहां मनुष्य संबंधी जोग जोगवतो सुखें रहे डे.

एकदा गवाहमां बेरो डे, एवामां जेनी आंखमां थी आंसु जरे डे, रोगें करी ग्रस्त अने फाटेलां वस्त्र, बीजत्सांग, डुर्निरीहय, पगें पगें पडता एवा सज्जनने आवतो पीरो. तेवारें पापनां फल प्रत्यक्ष देखीने कुमरने दया आवी तेथी चाकर मोकद्दी तेडावी बेसाडीने पूब्युं के हे सज्जन ! तुं मुझने उलखे डे ? ते बोद्ध्यो अहो सत्पुरुष ! तमने कोण नथी उलखतो. कुमरें साचुं पूब्युं तेवारें अणबोद्ध्यो रह्यो. पठी कुमरें पारब्युं वृत्तांत कही सर्व पोतानी हकीगत संज्ञावी, तेथी ते सज्जन लज्जा पास्यो. पठी तेनां फाटेलां वस्त्र उतरावी नवां पहेरावी जोजन करावीने कह्युं के हे मित्र ! आ लक्ष्मी सर्व ताहारी डे, तुं निश्चित थको आंही सुख जोगव.

हवे सज्जन बोद्ध्यो के हुं तमने मूकीने चालतो थयो. आगल जतां मने चोर मछ्या तेणे लाकडी

तथा मुष्ठादिके खूब मार्यो, अने महारीपासें जे धन हरुं ते सर्व लश लीधुं. मात्र पाप ज्ञोगववा माटेंज जाणेमुने जीवतो मूक्यो होय नहि ? तेम जीवतो मूक्यो. तिहांथी हुं अनेक देश जम्यो सर्वत्र छुःख देखतो तमने आवी मछो हुं. माटे हुं पापीने तमें दूर जवा थो. तमारी पासें म राखो. ते सांचली कुमर वोद्यो के हे सज्जन ! हुं राज्य कन्यादिक रुद्धि पाम्यो, ते सर्व तहारो प्रताप ढे. माटे हवे तुं आ राज्यनी चिंता कर. एम कही तेने प्रधान पदवी आपी.

ए खबर सर्व कुमरनी स्त्री पुष्पवतीयैं सांचली तेवारे जर्तार प्रत्यें कहेवा लागी के हे स्त्रामिन् ! ए तमारो बालपणानो मित्र ढे, तो एने कोइ एकाद गाम आपी थो. पण तमाराथी दूर राखो, परंतु पासें म राखो ॥ यतः ॥ छुर्जनः परिहर्त्तव्यो, विद्यया ज्ञूषितोपिसन् ॥ मणिना ज्ञूषितः सर्पः, किमसौ न जयंकरः ॥ १ ॥ जेमाटे छुर्जनने उपकार करतां पण साहामुं कष्ट थाय, जेम कोइएक कागडो सरोवरने विषे बग प्रमुखने तरता देखी पोतें पण तेमनी पेरें मत्स्यजहाण करवा सारु पाणीमां

पञ्चो, पण तरतां आवडतुं नशी तेथी पाणीमां बू-  
डवा लाग्यो, तिहां तेने कोश राजहंसीयें दीरो,  
तेने दया आवी तेवारें राजहंसने कहेवा लागी के  
हे स्वामी ! बापडो कागडो बूडे डे, माटे तमें उप-  
कार करी एने काहाडो. तेवारें हंसहंसिणीयें मद्दी  
चांचे ताणी पकडीने बाहेर काढ्यो. पठी कागडो  
हंस हंसिणीने पगे लागी कहेवा लाग्यो के हे ज्ञा-  
ग्यवानो ! हुं ज्यांसुधी जीवतो रहुं, त्यांसुधी त-  
मारो उपकार मानीश. हवे कृपा करी तमें बेहु जण  
आहार जळण करवा अमारा वनमां आवो. तेवारें  
हंसें हंसिणीने पूब्युं के केम तहारी शी मरजी डे ?  
हंसिणी बोद्धी के हे स्वामी ! उपकार सर्वने करीयें  
पण अजाण्यानी संगत न करीयें. एम हंसिणीयें  
वास्यो, तो पण दाक्षिण्यने लीधे हंस, कागडानी  
सार्यें वनमां गयो. ते बेहु कोश लीबडाना झाड उ-  
पर बेठा, ते वृक्षनी नीचें कोश राजा आवी वीसा-  
माने अर्थे उन्हो रह्यो डे. तेनी उपर कागडो विष्णु  
करीने तिहांशी उडी गयो. राजायें उंचुं जोश्ने हं-  
सनी उपर बाण मूक्यो, तेथी हंस तडफडतो चूमि-  
यें पञ्चो, राजायें विचास्युं जे आ धवल काग डे,

ए कौतुक जेवी वात ढे. ते सांजदी हंस बोछ्यो ॥  
 नाहं काको महाराज ! हंसोऽहं विमले जले ॥ नी-  
 चसंगप्रसंगेन, मृत्युरेव न संशयः ॥ १ ॥ ए वात  
 छायें कहीने कल्युं के हे स्वामी ! तमें नीचनरनी  
 संगति म करो. कुमर ते हितकारक वचन जाणतो  
 थको पण दाक्षिणपणे तेनो संसर्ग मूके नही, एम  
 केटखोएक काल व्यतिक्रम्यो.

अन्यदा प्रस्तावें राजायें सज्जनने पुब्युं के ए कु-  
 मरनी साथें तमारे मांहोमांहे गाढ स्नेहनुं कारण  
 शुं ढे ? तेवारें सज्जनें विचाल्युं जे हुं प्रथमथी कुमा-  
 रनी उपर दूषण चढावुं, तो पडी महारां दूषण ए  
 प्रकाशी शकशो नही, एम विमासी राजा प्रत्यें बो-  
 छ्यो के हे स्वामिन् ! ए वात कहेवा योग्य नशी,  
 केम के कुमरें मुजनें प्रथमथी सोगंद खवराव्या ढे.  
 एवुं सांजदी राजा वली विशेष आग्रह करी पूर्ववा-  
 दाग्यो, तेवारें राजाने सोगंद आपीने सज्जन कहेतो  
 हवो, के वासपुरी नगरीयें नरवाहनराजानो हुं पुत्र  
 हुं. अने ए महारा घरनी दासीनो पुत्र ढे. कर्मयोगें  
 देशांतरें नमतो थको विद्या पाम्यो, तेवारें नीच-  
 जातिथी लज्जा पामीने घरमां रहे नही. देशांत-

रेंज जम्या करे, ते जमतो जमतो तमारे नगरे आव्यो.  
 विद्यावंत माटे तमें आदर दीधो. पूर्वकर्मना प्रसादशी  
 अर्ज्जुराजपदवी पाम्यो, अने हुं पण महारा पिताशी  
 पराज्ञव पाम्यो थको इहां आव्यो. मने एणे उल्क-  
 ख्यो कारण के मर्मनो जाणज मर्म जाणे, तेथी एणे  
 मुझने पोतानी पासे राख्यो. हे स्वामी ! एनी वात  
 में तुमनें कही, पण एमांहे जली वार कांइ नथी.  
 एवी वात सांजली राजा विचारमां पड्यो जे में अ-  
 णविचार्युं काम कस्युं; राज जाऊ तो जब्बें जाऊ,  
 धन जाऊ तो जब्बें जाऊ. परंतु माराशी माहारो  
 वंश मलीन थयो ते अत्यंत अकार्य थयुं. एम चिं-  
 तवी जसाइने सारवा माटे राजायें अंतरंग पुरुषने  
तेडावीने कहुं के आज रात्रियें घरमांहेले रस्ते जे  
आवे, तेने तरत समाधान करि नाखजो. सेवके  
 पण तेवीज रीते राजानी आङ्गा प्रमाण कीधी, रा-  
 जायें रात्रिने समयें जलो पुरुष मोकदीने कुमरने  
 मारवा माटें तेडाव्यो, तेणे जइ कुमरने वीनव्यो,  
 जे आपने राजा अवश्य तेडे भे. कोइ महोडुं कार्य  
 भे, तेमाटें घरमांहेले रस्ते अइनें आवो, कुमर पण  
 तेवीज रीतें सज्ज अइने जवा लाग्यो, तेवारें स्त्री

बोली हे स्वामी ! ज्ञोला अश रात्रे जाउ गो पण  
 राज्यस्थिति मलीन रे ॥ यतः ॥ काके शौचं द्युत-  
 कारेषु सत्यं, सप्ते द्वांतिः स्त्रीषु कामोपशांतिः ॥  
 द्वीवे धैर्यं मद्यपे तत्त्वचिंता, राजा मित्रं केन दृष्टं  
 श्रुतं वा ॥ १ ॥ ते सांजली कुमर बोद्यो हे सुन्न-  
 गि ! तुं कहे डे, ते सत्य छे, परंतु राजानी आङ्गा-  
 लोपीयें तो महादोष लागे ॥ यतः ॥ आङ्गाजंगो-  
 नरेंद्राणां, गुरुणां मानमर्द्दनम् ॥ पृथक्शशय्या च ना-  
 रीणां अशस्त्रवधउच्यते ॥ २ ॥ ते सांजली स्त्री बो-  
 ली तमे कहो डो ते पण सत्य रे माटे हमणां मि-  
 त्रने मोकदो, कुमरे पण तेमज कखुं अने सज्जनने  
मोकद्यो. मार्गे जातां राजाना सेवके पूर्वं संकेतशी  
 तेने पेसतांज मारी नाख्यो, मरण पामीने दुर्गतियें  
 गयो ॥ यतः ॥ मित्रद्वोहिकृतम्भाश्च, ये च विश्वास-  
 घातकाः, ते नरा नरकं यांति, यावच्छंद दिवाकरौ  
 ॥ ३ ॥ तिहां ते सज्जनना मरणशी कोलाहल थयो,  
 तेवारे कुमरी बोली हे स्वामी ! जो तमें तिहां जा-  
 ता तो शा हवाल थाता ! माटें अद्यापि तमें प्रमाद  
 ठांकी कटक सज्ज करी सावधान थका रहो कुमर  
 पण तेमज सज्ज अश रह्यो. राजा पण सर्वं वात जा-

णी कटक छाइ युद्ध करवाने साहामो आव्यो. बेहु  
 सैन्य मांहोमांहे मख्यां. एवामांहे दीर्घबुद्धिना धणी  
 मंत्रीश्वर आवी राजाने कहेवा लाग्या के हे स्वामी!  
 अणविचाखुं युद्ध न करीयें ॥ यतः ॥ अपरीक्षितं  
 न कर्त्तव्यं, कर्त्तव्यं सुपरीक्षितं ॥ पश्चाङ्गवति सं-  
 तापो, ब्राह्मणी नकुलं यथा ॥ १ ॥ इत्यादि प्रधा-  
 नोनां वचन सांचद्वी राजायें युद्ध निवारण करी कु-  
 लजाती पूरवा माटें मंत्रीश्वरने कुमरपासें मोकछ्या.  
 मंत्रीश्वरें आवी कुमरने विनव्यो जे तमारो कुल-  
 वंश प्रकाश करो. कुमर बोद्ध्यो के सत्पुरुष, पोतानुं  
कुल पोताना मुखथी कहे नही. प्रधान पुरुष बोद्ध्यो  
 तमारा सज्जनमित्रें आवीने राजानी आगल तमा-  
 रा अवर्ण वाद कल्या ठे, प्रायः फुर्जन होय ते पर-  
 विभें संतोषी आय. ते वचन सांचद्वी कुमरें पोतानुं  
 सर्ववृत्तांत प्रधान आगल कल्युं. मंत्रीयें जइ राजानी  
 आगल निवेदन कल्युं, ते समाचार आमूलथी जा-  
 णवा जणी तत्काल कागल लखीने राजायें कुमरना  
 नगरज्ञणी सेवक मोकद्ध्यो, ते सेवक पण लक्षितां-  
 गकुमरना पितापासें जइ सर्व हकीगत कही. तेवारें  
 राजा पोताना पुत्रनी खबर सांचद्वी घणोज हर्षवंत

थयो. अने राजा कहेवा लाग्यो जे जबुं कखुं जे महारा पुत्रने जितशत्रु राजायें जीवितव्यनी पेरें राख्यो, में मंदज्ञागीयें तो अतिदाननुं दूषण आपीने सज्जनना कहेवाथी पुत्रने परदेशों काहाढ्यो. एम कही ते राजाना सेवकने वस्त्रादिक आपी संतोषीने विसर्ज्जन कस्यो. सेवकें आवी राजानी आगल सर्व समाचार संज्ञबाब्यो, राजा प्रमुदित थयो. जमाइ तथा दीकरीने जइ पोतानो अपराध खमाब्यो. अने कह्युं के हे लवितांगजी ! तमारा जेवा गुणवंत कोइ नथी, अने सज्जन सरखो छुरुणी पापी पण कोइ नथी, माटें हवे हे कुमरजी ! तमें राज्यनो अंगी-कार करो. एम कही कुमरनें राज्य आपी पोतें दी-क्षा लइ देवलोकें गयो.

पाडलथी लवितांगकुमर पण राज्यनी चिंताना करनार मंत्रीश्वरने सर्व कारजार सोंपी पोतें सैन्य लइ महोटी झळ्किथी पिताने चरणे जइ नम्यो. पिता पण नेत्रने आनंदकारक एवा पुत्रनुं दर्शन पामीने जेम चंद्रमाना दर्शनथकी समुद्रने हर्ष थाय, तेम हर्षवंत थयो अको पुत्रने कहेवा लाग्यो के हे वत्स ! हवे अमें परलोक साधन करशुं ! अने तमें

ए राज्य अंगीकार करो. ते सांचली लक्षितांग बो-  
द्धो के हे स्वामी ! हुं तमारी सेवामां तत्पर रही-  
श अने तमें राज्य पालो. एम राज्यने अणवांठतां  
पण राजायें कुमरने राज्य दीधुं. अने पोतें चारित्र  
बइ परजवनुं साधन करवा मांड्युं. लक्षितांगकुमर  
पण घणा वर्षे न्यायपूर्वक राज्य पाली अंत्यावस्थायें  
चारित्र बइ देवलोकें गयो. ए लक्षितांगकुमरनुं च-  
रित्र सांचली हे जविजनो ! तमें गीतार्थनां वचनने  
अनुसारें एकमना थइ श्रीजैनधर्मनेविषे प्रीति राखो  
अने दानादिक चार प्रकारनो धर्म पालो, प्रमाद-  
टालो, पाप गालो, आठ मद टालो, आत्मा अजु-  
वालो. तो स्वर्ग मोक्षनां सुख निश्चय पामो ॥ ३ ॥  
इति धर्मविषयिक लक्षितांगकुमरनी कथा संपूर्ण ॥

हवे आ नरजवनुं डुर्लभं पणुं ढे, ते कहे ढे.  
इङ्गवज्ञावृत्तम् ॥ यः प्राप्य इःप्राप्यमिदं  
नरत्वं, धर्मं न यत्नेन करोति मूढः ॥ क्लेश-  
प्रबंधेन सखब्धमब्धौ, चिंतामणि पातयति  
प्रमादात् ॥ ४ ॥

अर्थः—( यः केऽ ) जे ( मूढः केऽ ) मूढ़ पुरुष,

( इदं केऽ ) आ ( दुःप्राप्यं केऽ ) दुःखे प्राप्त थावा  
 योग्य एवुं ( नरत्वं केऽ ) मनुष्यपणुं, तेने ( प्राप्य  
 केऽ ) पासीने ( यत्नेन केऽ ) उद्यमें करीने ( धर्मं  
 केऽ ) धर्मने ( न करोति केऽ ) न करे ढे, ( सः  
 केऽ ) ते पुरुष, ( क्षेत्रप्रबंधेन केऽ ) अति महेनतें  
 ( लब्धं केऽ ) पामेला ( चिंतामणिं केऽ ) चिंताम-  
 णिने ( अब्धौ केऽ ) समुद्रमां ( प्रमादात् केऽ )  
 आलस्ये करीने ( पातयति केऽ ) नाखे ढे. अर्थात्  
 जे मूर्ख पुरुष मोहोटा कष्टे पमाय एवो मनुष्यजन्म  
 पासीने सावधानतायें करीने श्रीवीतरागप्रणीत धर्म-  
 ने न अंगीकार करे, तेण अतिदुःखे मद्देलो एवो  
 प्रत्यक्ष चिंतामणि प्रमादथकी समुद्रमां नाख्यो,  
 एम जाणवुं. ए कारण माटे नरनवे करीने धर्मनुं  
 उपार्जन करवुं. आ रेकाणे ब्राह्मण रत्नांशें देवीयें  
 दीधेला चिंतामणिनुं समुद्रमां पातन करुं, तेनो  
 संबंध जाणवो. माटें हे नव्यजनो ! ए प्रकारें मनने  
 विषे विवेक द्वावीने धर्मज करवो कारण के धर्मने  
 विषे प्रीति करनारा सुजन पुरुषो तेने जे पुण्य उत्पन्न  
 थाय. इत्यादि सर्व पूर्ववत् जाणवो ॥ ४ ॥

टीका ॥ अथ नरनवस्य दुर्लभत्वमाह ॥ यः

प्राप्येति ॥ यो मूढो मूर्खः इदं छुःप्राप्यं नरत्वं प्राप्य  
 यत्नेन उद्यमेन धर्मं न करोति सः क्षेशप्रबंधेन  
 लब्धं चिंतामणिरत्नं प्रमादात् अब्धौ समुद्रे पात-  
 यति ॥ यो मूर्खः पुमान् छुःखेन महता कष्टेन प्राप्यं  
 यतः ॥ चुर्व्विंग १ पासग २ धन्ने ३, जूए ४ रथणेय  
 ५ सुमिण ६ चक्रेय ७ ॥ कूर्म ८ युग ९ परमाणू १०,  
 दस दिठंता मणुश्च जस्मे ॥ १ ॥ इत्यादिदशचिर्द्व-  
 ष्टांतैर्दुर्व्विच्चं इदं नरत्वं मनुष्यजन्म प्राप्य लब्ध्वा य-  
 त्नेन सावधानतया श्रीवीतरागप्रणीतं धर्मं न करो-  
 ति उपेक्षते स क्षेशप्रबंधेन महता कष्टप्रकारेणाति-  
 प्रयासेन लब्धं प्रत्यक्षं प्राप्तं चिंतामणिरत्नं प्रमा-  
 दात् अब्धौ समुद्रे पातयति ॥ अत्र ब्राह्मणरत्नद्वी-  
 पदेव्यादत्तचिंतामणि रत्नसमुद्रपातनसंबंधोवाच्यः ।  
 ज्ञो ज्ञायप्राणिन् ! एवं ज्ञात्वा मनसि विवेकमा-  
 नीय यत्नेन धर्मेण व कार्यः धर्मं च कुर्वतां सतां-  
 यत् पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरमांग-  
 लिक्यमाला विस्तरंतु ॥ ४ ॥

॥ ज्ञाषाकाव्य ॥ कवित्त ॥ जैसें पुरुष कोइ धन-  
 कारन, हींडत दीप दीप चढ़ि जान ॥ आवत हाथ  
 रतन चिंतामनि, झारत जबधि जानि पाखान ॥

तैसें ग्रमत ग्रमत ज्वसागर, पावत नरसरीर पर-  
धान ॥ धरम जतन नहिं करत बनारसि, खोवत  
वाहि जनम अङ्गान ॥ ४ ॥

सिद्धांतने विषे मनुष्यनो जन्म पामवो दश दृष्टांतें  
दुर्बल कह्यो डे, ते दश दृष्टांतनां नाम कहे डे. एक  
चूबकनो, बीजो पासकनो, त्रीजो धान्यनो, चोथो  
द्यूतनो, पांचमो रत्ननो, उठो स्वप्ननो, सातमो चक्रनो,  
आठमो कूर्मनो, नवमो युगनो, दशमो परमाणुनो.  
ए दश दृष्टांतनां नाम कह्यां. हवे एनी उपर संक्षे-  
पथी कथाऊ कहे डे:-

प्रथम चुबक ते देशी जाषायें जोजन कहे वाय  
डे, तेनो दृष्टांत कहे डे. कांपिलपुर नगरे ब्रह्मनामें  
राजानी चुबणी नामें राणी तेने चौद सुपने सूचित  
ब्रह्मदत्त नामें पुत्र थयो. ते पांच वर्षनो थयो, तेवारें  
तेनो पिता मरण पास्यो. हवे राज्यचिंता करवा  
जणी तेना दीर्घादिक चार मित्र मद्या. तेमां दी-  
र्घने कांपिलपुरे राख्यो. अने बीजा त्रण मित्र पो-  
ताने घेर गया. हवे चुबणी राणी इंड्रियोना चपक-  
पणाथकी दीर्घनी साथें लुब्ध थइ. तेवारें धनुनामा  
मंत्रीश्वरें ते समाचार कुमरने जणाव्या, कुमर पण

दीर्घने तथा पोतानी माताने शीखामण आपवा सारु नानाविध प्रपंच देखाडवा लाग्यो. राजसन्नामांहे अनाचारी पुरुष देखी राजहंसीशुं काग संयोग करतो जोइ ब्रह्मदत्त कहेवा लाग्यो के ए पापीने अन्य जातिशुं अण मलतां संबंध क्यांथी मट्यो. ए अन्याय हुं सहन करी शकुं एम नथी. तेवारें प्रधानने शंका उपनी जे निश्चें ए ब्रह्मदत्तें चुकणीने अनाचार सेवती जाणी ढे. अने दीर्घराजायें पण ते समाचार जाणी चुकणीनी आगल कहुं के तहारा पुत्र ब्रह्मदत्तें एवां चिन्ह देखाड्यां ढे, माटें ते आपण बेहुजणने मारशे, तेथी जो तुझने महारो खप होय तो प्रथमथीज आपणे एने मारी नाखीयें, तो सारुं थाय. तेवारें राणीयें कहुं के हुं एना विनाशनो उपाय करुं दुं. पढी चुकणीयें ब्रह्मदत्तने एक कन्या परणावी. अने नवुं लाखनुं गृह कराव्युं. ए चुकणीनो अन्निप्राय सर्व जूना पाटनक प्रधानें जाणो, जे ए विषयांधत्वथकी पुत्रने लाख गृहमां बाबी नाखशे, तेमाटे प्रधाने पण नगरबाहिर यका प्रसन्नपणे लाखना धवलगृह खरें मध्य गर्ता खणावीने पढी ब्रह्मदत्तने कहुं के तहा-

री मातायें तुजने मारवा माटे लाखनुं यह बनाव्युं थे, पण ते वात ब्रह्मदत्तें मानी नहीं। ब्रह्मदत्तें कहुं के डोरु कुडोरु शाय पण मावतर कुमावतर शाय नहीं। ते सांजली प्रधानें कहुं के खामी ! तमें कहो डो ते सत्य हशे। पण जेवारें आ घरमां वसवानुं मुहूर्त होय, तेवारें सूतां थकां सावधान रहेजो। कांश काम पडे तो पाठु प्रहारें सरंग उघाडी नगरनी बाहिर आवजो। अश्व शणगारी पखाण सहित हुं सज्ज करी राखीश। तमें महारी साथें देशांतर चालजो।

हवे चुलणीयें मुहूर्त जोवरावी पुत्रने कहुं के तमें नवपरिणीत डो, माटें आजे नवा घरमां शयन करवा जाजो। कुमर तिहाँ गयो, तेवारें तेने प्रधानें कहुं के आज तुमें सावधान रहेजो। ते सांजली ब्रह्मदत्तें जङ्क परिणामें चिंतव्युं जे आवा स्थान-कमां वली शो उपद्रव थवानो थे ? रात्रियें अक-स्मात् ते पापबुद्धि मातायें घरनी चारे बाजुयें आग लगाडी दीधी। ते देखी वरधनु मित्रें कुमरने जगा-छ्यो, ते सुरंगमांथी बेहु जण नाशि अश्वारूढ थश देशांतर जणी चाव्या। केटलीएक जूमि जह्वंधी गया। एकदा वनमांहे कुंशरने तृष्णा लागी ते सारु

मंत्रिपुत्र पाणी लेवा गयो, ते घणी वारपर्यंत न आ-  
व्यो तेवारें तेने जोवा माटें कुंअर निकछ्यो, ते मा-  
र्गमां चूलो पछ्यो तेवारें तृष्णायें पीड्यो थको एक  
वृक्षनी नीचें जइ सुइ रह्यो. एवामां एक देशांतरी  
वटेमार्गु कोइ एक ब्राह्मण पाणीनुं पात्र लइ वृक्षनी  
ठायायें आवी विश्राम लेवा बेरो. ब्रह्मदत्तें तेनी  
पासेंथी पाणी माग्युं. ब्राह्मणें पाणी आप्युं अने वढी  
पासें कांश्क फलादिक हतां, ते खावाने आप्यां,  
तेवारें ब्रह्मदत्तें कहुं के मुजने जे वखत राज्य प्राप्त  
थयुं तमें सांजलो, ते वखत कपिलपुर पाटणे आव-  
जो. एम कही ब्राह्मणने विसज्ज्यों.

वढी तिहांथी केटलेक कालें बेनातट नगर जणी  
जातां मार्गमां एक ब्राह्मण मछ्यो, तेना सधवाराथी  
बार योजननी अटवी कुमरें उद्धंघन करी. जोजन-  
नी वेलायें ब्राह्मण पोतें एकलोज जम्यो. पण कुम-  
रने आग्रह मात्र न कीधो. तेम कुंश्वरें पण याचना  
कीधी नहीं. कारण के महांत पुरुष मरणांते पण  
याचना करे नहीं. एम करतां अटवी उत्तरी प्रांते  
पहोता, तेवारें कुमरें कहुं के हे ब्राह्मण ! तमारा  
पसायथी हुं अटवी उत्तर्यो, माटें जेवारें मुजने

कांपिलपुरनुं राज्य प्राप्त थयुं सांचलो, तेवारें तरत  
आवजो. एम कही ब्रह्मदत्त बेनातट नगरें गयो.  
ब्राह्मण चिंतववा लाग्यो के जूरे एनुं औदार्य धैर्य  
केहबुं ढे ? अने महारुं कृपणपणुं केहबुं ढे ? एम  
चिंतवतो स्वस्थानकें गयो. पठी केटलेक कालें जा-  
ग्योगें ब्रह्मदत्तने ड खंड पृथ्वीनुं राज्य मछुं. चक्र-  
वर्तीनी पदवी प्राप्त थइ. वरधनुमित्र पण आवी  
मछ्यो, तेमने आपणा नगर जणी आवता जोइ  
चुलणीयें देहनो त्याग कस्यो. ब्रह्मदत्त पोताना  
पिताना राज्यपाटें बेरो.

हवे जेणे पाणी पीवरावयुं हतुं ते ब्राह्मण पण  
ब्रह्मदत्तने राज्य मछुं सांचली नगरमां आव्यो  
तेणे राजाने मखवाना घणा उपाय कस्या पण द-  
रिङ्गीने राजानुं दर्शन आय नही. एम ड मास वही  
गया पठी नगरमां कोइ बुद्धिथी उपाय बतावना-  
रानी शोध करतां एक बुद्धिना आपनारायें कह्युं के  
मने लाख सोना मोर आपो तो हुं उपाय बतावुं.  
तेने ब्राह्मणे कह्युं जो मुजने राजानो मेद्वाप थशे,  
तो हुं तुजने लाख सोनामोर आपीश. पठी बुद्धि-  
ना देवावालायें कह्युं के एक महोटो जबरजस्त

वांस लक्ष्मने तेने रस्तामांहिकां जूनां त्रूटेकां फाटेकां  
खासडांनी माळा वदगडी ते वांसडाने पकडी  
राजमार्ग उज्जा रहो, जेवारें राजानी खारी निक-  
लशे, तेवारें तेना उपर दृष्टि पडवाशी अज्ञिनव  
आश्र्य देखी राजा पूर्ण करशे, ते वखत तुं आ-  
शीर्वाद आपजे. ब्राह्मण पण तेज उपाय करी रा-  
जाने मळ्यो. राजायें दीर्घे तेवारें तरत उलखी तुष्ट-  
मान थश्ने कहेवा लाग्यो के हे विष्र ! माग माग-  
जे मागे ते आपुं. ब्राह्मणें कहुं के स्वामी घेर जश्च  
महारी छीने पूर्णी आबुं, राजायें कहुं शीध्र पूर्णी  
आव ब्राह्मणें घेर आवी छीने पूर्णुं के हे प्रिये !  
राजा संतुष्ट थयो ढे माटें हवे हुं शुं मागुं ? तेवारें  
छीयें विचालुं जे ए गाम गरास नगर मागशे तो  
पठी मुजने मानशे नही माटें एबुं मगाबुं के जेशी  
ए समतुल्य रहे. एबुं चिंतवीने कहेवा लागी के  
आपणे ब्राह्मणजाति ठैयें, माटे गाम नगरादिक  
मागशुं तो रात्रि दिवस तेनी चिंतामां रहेबुं पमशे,  
घणा चाकर नफर राखवा पमशे अने जो धनधा-  
न्य मागसुं, तो व्यापार चलाववो जोशे. व्याजें धन  
आपबुं जोशे इत्यादि संज्ञाल राखवानी विटंबना

करवी पड़शे, माटे राजाना ड खंड पृथ्वीमां जेट-  
 ला चूला रे, ते प्रत्येक चूला दीर एक दिवस आ-  
 पणा कुटुंबने ज्ञोजन मलै, अने एक सोनामोर द-  
 क्षणा मलै. एवी मागणी करो.) ब्राह्मणे पण स्त्रीना  
 कह्या मुजब राजा पासें जइ याचना करी, तेवारें  
 राजा बोद्ध्यो के हे निर्जाग्य ! पाठ्यबुद्धि ब्राह्मण !  
 हुं तुष्टमान थयो डतां आ फरी जीख मागवानुं ते  
 तैं शुं माग्युं ? पण ब्राह्मणे तो स्त्रीना कहेवा प्रमा-  
 णेंज राजाने कहुं. हे महाराज ! जो तुमें तुष्टमान  
 थया तो एटबुंज आपो के जेथी हुं रक्षीयायत था-  
 उं ! तेवारें राजाने तेमज प्रमाण कीधुं. अने पहे-  
 ला दिवसें चक्रवर्तीयं पोताने घेर जमाडीने एक  
 सोना मोर दक्षणा अपी. पठी चक्रवर्तीनी १५२०००)  
 अंतेउरीने घेर जम्यो. पठी चक्रवर्तीना पुत्र पौत्रा-  
 दिकने घेर जम्यो(पण जेवो स्वाद पहेले दिवसें  
 चक्रवर्तीना घरनी रसवतीनो हतो, तेवो स्वाद बी-  
 जा कोश्ना घरनी रसवतीनो आवे नहीं. तेथी तेज  
 जमण संज्ञास्या करे अने मनमां विचारे के कोश  
 रीतें फरी चक्रवर्तीने घरे जमवानो वारो आवे तो  
 सारुं ! पण वारो आवे नहीं ते वारो पण कदापि

कोइ देवताना सहायथी अथवा प्रबल आयुष्यवान् पामे. परंतु मनुष्य जन्मथी ब्रह्म थयो ते फरी मनुष्यावतार न पामे) इति प्रथम चुद्धकृष्टांतः ॥१॥

हवे बीजो पासानो दृष्टांत कहे रे. जरतदेतमां गोल देशने विषे चणकनामें ग्राम रे. तिहाँ चणकनामें ब्राह्मण तेनी चिणेश्वरी नामें जार्या ते स्त्री जरतार बेहु अरिहंतनी जक्किनां करनार रे. तेमने घेरे दांत सहित पुत्र जन्मयो. मात पितायें दांत घसावी नाख्या. एकदा कृषीश्वरनो संघाडो तेमने घेर आठयो, तेवारे चिणेश्वरीयें नमस्कार करीने पूज्यु के महाराज ! अमारे घेर आ दांत सहित पुत्र आव्यो, तेनुं शुं फल आशे ? कृषियो बोद्ध्या के जो तमें एना दांत नही घसत तो ए राजा आत. हवे ए दांत घसी नाख्या माटे बिंबांतरित राजा आशे, पठी ते पुत्रनुं चाणाक्य एवुं नाम दीधुं. ते पण आकरो श्रावक थयो, सर्वविद्या जाप्यो, यौवनावस्था पाम्यो, रुडा कुलमां परणाव्यो, अन्यदा प्रस्तावें चाणाक्यनी स्त्री जाइना विवाह माटें पीयर गइ. तिहाँ विवाह उपर बीजी पण बहेनो आवी रे, तेना ससरा महाधनवंत रे तेश्री ते बहेनो

वस्त्रान्नरण पहेरी जमी तांबूल नक्षण करी उंची चढ़ी बेरी. अने चाणाक्यनी स्त्रीना अंगनां वस्त्र जूनां फाटां देखी हसवा लागी. तेथी ते आकरो असंतोष धरती विवाह करी पोताने घेर आवी. चाणाक्यें पोतानी जार्यने आमण दूमणी देखीने पूऱ्युं जे तुजने शी असमाधि उपनी ढे ? पण ते बोल्ही नही. तेवारें नर्तारें घणो आग्रह करीने पूऱ्युं तारें तेणे पण पोताना पीयर संबंधी सर्व वृत्तांत कहुं. ते सांजद्वी चाणाक्य ऊऱ्योपाङ्कन करवानो उपाय चिंतववा लागो. तेवारें तेने कोइक ब्राह्मणे कहुं के पाइद्वीपुर नगरें नंदराजा वर्ष-दिवसने आंतरे ब्राह्मणने दक्षणा आपे ढे. एवुं सांजद्वी चाणाक्य पण तिहां गयो. राजाने घेर जट वीशामो लेवा माटे नंदराजाना सिंहासन उपर चढ़ी बेरो. राजानी दासीयें कहुं के हे विप्र ! तमें बीजे कोइ आसने बेसो. ते सांजद्वी चाणाक्यें बीजे आसनें कमंसूल मेड्युं तेमज त्रीजे आसने रुक्मूक्यो, चोथे जपमालिका मूकी, एम चार सिंहासन रुध्यां. अने पांचमे आसने जनोइ मूकी, तेवारें दासीयें तेने रीशथी उठाडी मूक्यो. चाणा-

क्यें पण रीसाइने एवी प्रतिज्ञा करी के हुं खरो चाणाक्य तोज के ए नंदराजानें समूलो उन्मूली नाखुं ? एवुं कही सज्जामांहेश्वी निकट्यो आगल जतां विचारवा लाग्यो जे मने तो राज्य मखवानुं नथी. माटे हुं प्रधानज थाइश ! पण कोइ राजयो-ग्य कुमर जोउं. एम चिंतवतो मयूरपोषकने गामें गयो. यावत् निहानिमित्ते तेने घेर गयो, ते अव-सरें मयूरपोषकनी दीकरीने गर्जने योगे चंद्रमा पीवानो दोहोलो उपनो, पण कोइ पूरी शके नही तेना बापें चाणाक्यने परदेशी जाणी पूब्युं तेवारें चाणाक्य बोट्यो के ए पुत्र जन्मतांज जो मुझने आपो तो हुं दोहोलो पूर्ण करुं. बापें ते वात कब्ब-ल करी तेवारें चाणाक्यें पोतानी मतियें करी डिं-डयुक्त तृणनुं घर कराव्युं ते उपर एक पुरुष डिं-पूरवा माटे डानो चढाव्यो. पठी विशालथाल डु-ग्धमिश्रीप्रमुख परमान्ने जरी ते घरमां जिहां चं-द्रमानो उयोत डे, तिहां मूळ्यो तेमां चंद्रमानुं प्र-तिबिंब डे, माटें बापें दीकरीने तेडीने कहुं के हे पुत्रि ! ए चंद्रमा डे तेनुं तमें पान करो. तेवारें ते पुत्रीयें परमान्न पीवा मांम्युं तेम तेम उपर रहेद्वा

पुरुषें ते रिङ्ग पण पूरवा मांस्युं, जेवारें संपूर्ण पान करी लीधुं. तेवारें रिङ्ग पण पूरी नास्युं, घरमां अंधकार थयो. एम करी चंद्रमानो दोहोलो पूरो कराव्यो. पूर्ण मासें पुत्र जन्म थयो, तेनुं नाम चंद्रगुप्त पाल्युं.

हवे चंद्रगुप्तने तिहां मूकी चाणाक्य पोतें सुवर्णविद्या साधवा जणी देशांतरें जमवा लाग्यो, सुवर्णसिद्धि करवानी विद्या पामीने चाणाक्य बार वर्षे पाठो तेज गामें आव्यो. तेवारें चंद्रगुप्तने ठोकराउ साथें रमतो दीठो. तिहां चंद्रगुप्त पोतें राजा थयो ढे, कोइक ठोकराने प्रधान कस्यो ढे, केटबाएकने खिजमतदार सेवक कस्याठे, एवो देखी चाणाक्य हर्षवंत थयो ठोकराने आशीष आपी कहेवा लाग्यो के, हे राजा ! अमने काँइक दान आपो, चंद्रगुप्ते कहुं जाउ तमोने पांच गाम दीधां. एम कही नमस्कार कीधो. वद्दी लोकोनी गाय जती देखी चंद्रगुप्ते कहुं के ए गाय पण तमें द्व्यो. चाणाक्ये कहुं के ए पारकी ढे ते केम लेवाय ! चंद्रगुप्ते कहुं “वीरज्योज्या वसुंधरा” ए वचन सांजद्दी विस्मित थको चाणाक्व पूरवा लाग्यो आ बालक कहेनां ढे ? तारें बीजा बोख्या ए परित्राजकनो पुत्र

दे. ते सांचली चाणाक्यें कहुं, के हे वत्स ! आव  
 तु जने राज्य देवराबुं. तेवारें चंडगुस उठीने चाणा-  
 क्यने पगे लाग्यो अने बेहुजण देशांतरे चाल्या प-  
 ठी धातुर्वादादिकने योगें सुवर्णसिङ्गि करी हस्ती,  
 तुरंगम, गज पायदलादिक सर्व सैन्य एकत्रुं करी,  
 लश्ने पामलीपुर नगरे घेरोनाख्यो. नंद राजा पण  
 युद्ध करवा साहामो आव्यो, युद्ध करतां दैव योगें  
 चाणाक्यनुं सैन्य ज्ञागयुं. तेवारें ते चाणाक्य, चंड-  
 गुसने साथें लश्न जीवतो नाठो. पाठबाथी नंद राजायें  
 चाणाक्यने मारवा माटें केटबाएक घोडेसवार मो-  
 कल्या अने नंदराजा पाठो घेर आव्यो. हवे ते सवारो  
 दोडता दोडता चाणाक्यनी नजीक आव्या. ते जो-  
 इ चाणाक्यें चंडगुसने कहुं के हे वत्स ! तुं ना-  
 शीने सरोवरमां प्रवेश कर. तेणे तेमज कीधुं अने  
 चाणाक्य पोतें सरोवरने कांठे योगींड यश्च ध्यान  
 धरवा बेठो, एवामां असवार आवी चाणाक्यने  
 पूढ़वा लाग्या, स्वामी ! तमे इहां बे स्वरूपवंत यौ-  
 वन वय पुरुषो जाता दीर्घ ? चाणाक्यें ध्यानज्ञंगना  
 जयनो मोल घालीने संझाथी सरोवरमां रहेलो चं-  
 डगुस देखाड्यो, तेने काढवा माटें असवारें हथी-

यार धरती उपर राख्यां अने पोतें पाणीमां प्रवेश करवा मांक्यो, एटलामां चाणाक्यें उतावलथी उर्ही लघुलाघवी कलायें करी तेहज हथीयारथी तेनुं मस्तक कापी नाख्युं, पठी चंद्रगुप्तने पाणीमांथी काहा ढी अश्व तथा हथीयारबश बेहु मार्गे चालता थया. तेवारें रस्तामां चंद्रगुप्तने चाणाक्यें कहुं के हे वत्स! में तुझने पाणीमां बताव्यो ते वखतें तुझने महारी उपर द्वेष उपन्यो के केम ? ते कहे. तेवारें चंद्रगुप्तें कहुं के हुंतो एम समज्यो के जे तमें कहुं हशे, ते गुणने वास्तेज कहुं हशे.

बढ़ी आगल जतां नंदराजानो बीजो असवार आवतो देखी फरी चाणाक्यें ते चंद्रगुप्तने तलावमां प्रवेश कराव्यो अने त्यां कोइ धोबी वस्त्र धोतो ह-तो तेने चाणाक्यें कहुं हे रजक ! राजा रीसाणो भे ते लोकोने मारतो आवे डे, माटे जीवितद्य वांगो तो श्राहींथी नाशी जाऊ. रजकें पण उघाडे खड़े असवार आवतो दीगो, ते जोइ धोबी नाशी गयो. पाड़लथी चाणाक्य ते धोबीनां वस्त्र धोवा लाग्यो. तेने असवारें आवी पूर्वनी पेरें पूब्युं, तेने पण चाणाक्यें तेमज पूर्वोक्त बुद्धियें करी मारी नाख्यो.

फरी बेहु जण तिहांशी आगल चाळ्या. संध्या समयें एक गामें गया, तिहां एक मोशीने घेर जइ बेगा एटलामां ते मोशीनो पुत्र व्याखु करवा बेरो तेने मोशीयें उनी राब पीरशी ठे, तेमां ते ठोकरे उतावळें वचमां हाथ घाळ्यो, तेवारें मोशीयें कल्युं के दाऊ रे पुत्र दाऊ. तुं पण चाणाक्यनी पेरें मूर्ख कां थयो ठो ? ते सांजदी चाणाक्यें मोशीने पू-ब्युं के माताजी ! चाणाक्यने मूर्ख केम कहो ठो ? तेवारें मोशी बोद्धी के चाणाक्यें प्रथमथीज पामदी-पुर जइ रुध्युं परंतु जो देश पोताने वश करी पठी नगरने घेरो घाल्यो हत, तो शुं बगडी जात ? ए बुद्धि सांजदी चाणाक्य विस्मयापन्न थइ हिमवंत पर्वतें गयो. तिहां एक गाममां जइ पर्वतराजानी सार्थें प्रीति कीधी. एकदिवस अवसर जोइ चाणाक्य ते राजानी सार्थें मसलत करी के आपणे नंदराजनो देश वश करी पामदीपुरमांशी नंदराजने उगडी श्रद्धों श्रद्ध राज्य वहेंची लेशुं, तेणें पण ते वात मान्य करी, पठी बेहु एकरा मली कटक मेलवी अनुक्रमें सर्वदेश वश करी ठेहेलो पामदी-पुरने विषे घेरो नाख्यो, नंद राजायें युद्ध कल्युं. ते-

माँ नंदराजा हारी गयो, तेवारें धर्मद्वार माग्युं, तेने चाणाक्यें कहुं के हे नंदराजा ! जेटबुं एक रथमाँ ऊव्य उपडे, तेटबुं लइ जाउ, तेथी अधिक लेशो माँ. नंदराजा पण मणिरत्न सुवर्णादिक रथमाँ नरी, एक स्वरूपवद्वना दीकरीने रथमाँ बेसाडी तिहांथी निकछ्यो. एवामाँ चंद्रगुप्त रथमाँ बेसी गाममाँ फरवा निकछ्यो ठे, तेनी उपर कुमरीनी दृष्टि पडी, तेथी अनुराग उपन्यो, तेवारें नंदराजा पुत्रीनो मनोगत ज्ञाव जाणीने बोद्ध्यो के हे पुत्रि ! तुं सुखें ए चंद्रगुप्त जर्तारने वर. तहारुं कद्याण आउ. एम कहेतांज ते पुत्री रथ उपरथी उतरीने चंद्रगुद्धना रथ उपर चढवा लागी. तेटबामाँ चंद्रगुप्तना रथना नव आरा जांगी पड्या तेवारें चंद्रगुप्तें, कहुं के ए कन्या अशुज्जकरिणी ठे माटे जवा द्यो आपणा कामनी नथी. तेने चाणाक्यें कहुं के ए शुकन जबुं ठे, एनुं वर्जन म कर. नव आरा जांग्या माटें तहारी नव पेढी पर्यंत राज चालशे, एम कही कन्या राखी. पठी पर्वतक अने चंद्रगुप्त ए बेहु नंदना घरमाँ गया, तिहां लह्मीनी वहेंचण करवा लाग्या, ते घरमाँ एक कन्या दीरी. तेनी उ-

परें पर्वतक राजा सानुरागी थयो. तेवारें ते कन्या चाणाक्यें पर्वतकराजाने परणावी परंतु ते विषकन्या होवाथी तेना करस्पर्शनशी पर्वतक राजा विपत्ति पाम्यो. ते विषकन्याने घोगे चंद्रगुप्तने औषध विना व्याधि गयो ॥ यतः ॥ अर्द्धराज्यहरं मित्रं, योन हन्यात्स हन्यते ॥ तस्माद्विनौषधेनैव, व्याधिर्गंडेनु गम्यते ॥ ३ ॥ चंद्रगुप्त सर्वराज्यनो धणी थयो, राज्य पालवा लाग्यो. एवामां पाल्कीपुरनिवासी सर्व लोक मद्वी विनति करवा लाग्या के अहो स्वामी ! नंदराजा अमारी पासेंथी स्वद्वप कर खेतो हतो, प्रजाने आत्मजनी पेरें पालतो अने हमणां तमारा राज्यमां तो अमें करें करी पीडित डैयें, माटे केम करीयें ! क्यां जद्यें !!! तेवारें चंद्रगुप्ते चाणाक्यना मुख साहामुं जोयुं, तेणे विचास्तुं जे आलोकोने संतोष नहिं थाशो, तो लोक उचालो जरीने जाशो ! एम विचारी लोकोने कर रहित कस्यां, तेने दीधे आयपद थोड़ी अने खरच घणो यवाथी नंदार खाली थतो देखीने चाणाक्य कांश्क नवीन उपाय चिंतववा लाग्यो, तेवारे त्रण उपवास करी पूर्वना मित्र देवताने आराध्यो. ते देवतायें आवी

नक्किने प्रमाणे चाणाक्यने वे अजेय पासा आप्या.  
 पठी चाणाक्य ते शहरना व्यवहारीयाने तेडी क्रोड क्रोड टकानां रत्न चंमारमांथी काहाढी द्युत रमवा माटे कहेवा लाग्यो के जे मुज्जने जुवदुं रमता जीते, तेने ए रत्न सर्व आपुं. अने जे हारे ते ए रत्न मांहेला रत्न सरखुं एक रत्न आपे. ए वचने संतोष पाम्या थका ते व्यवहारिया रमवा लाग्या, पण देवताधिष्ठित पासाना बलथी चाणाक्य जीती जाय. कोइ कालें हारे नही. ते पण कदापि दैवयोगें हारी जाय, परंतु मनुष्यज्ञव हाथमांथी गयो ते फरी पामवो महा ऊर्बंज ढे ॥ इति द्वीतीय-पासक दृष्टांतः ॥ २ ॥

हवे त्रीजो धान्यनो दृष्टांत कहे ढे. कोइक राजायें कौतुक माटें सर्व जातिनां जरतक्षेत्रमां उपजतां धान्य एकठां करावी तेमां एक पाथो सरशवना दाणानो नाख्यो, ते धान्य सार्थे मेलवीने पठी एकशो वर्षीनी मोशीने तेवाढी कहुं के आचोवीस जातिना धान्यना राशीमांथी सर्व जातिनां धान्य जूदां करीने वली एक सरशवनो पाथो सार्थे मेलव्यो ढे, ते काहाढी आपो. ते वृद्धा मोशीथी

ए कोइ रीतें जूदा थइ शकेज नहीं तेपण(कदापि  
देव साहायथी सरशव जूदा थइ शके, पण जे म-  
नुष्यावतार गयो ते फरी वीतरागनी आङ्गामां  
वर्ततो एवो मनुष्यन्नव पामवो डुर्बन्न हे)॥ इति  
तृतीय दृष्टांतः ॥

हवे चोथो दूतनो दृष्टांत कहे ठेः— कोइक रा-  
जानी सज्जा एकशो आठ आँजायें करी समन्वित  
हे, ते वद्धी एकेके थंज्जें एकशो ने आठ हाँसो हे.  
ते राजा घणो वृद्ध थयो पण मरण पामतो नथी,  
तेवारें महोटा ढोकरायें विचास्तुं जे हुं पण वृद्ध  
थवा आव्यो. तो हवे राजा क्यारें मरशो ने पढी हुं ते  
राज्य क्यारें ज्ञोगवीश ! माटे कोइ रीतें राजाने  
मारी नाखुं तो हुं राजा आउं. ते दुपी वात प्रधाने  
जाणिने राजाने संचलावी. राजायें विचास्तुं जे  
युत्र पण जीवतो रहे अने हुं पोतें पण जीवतो  
रहुं ! एवी युक्ति शोधुं. पढी बुद्धिना प्रपंचे करी  
युत्रने तेडावीने कहुं जे हे वत्स ! हुं वृद्ध थयो मा-  
टे तुं राज्य ले पण प्रथम आपणा घरनी चाल ठे,  
ते कर, के जे थकी तुजने राज्य स्थिर थाय. कुमर  
बोख्यो के हे पिताजी ! जे तमें अङ्गा आपो, ते हुं

करुं. राजायें कहुं आपणी सज्जाना एक मंकपें १०७ थांजला ढे थांजले थांजले १०७ हांस ढे, माटे तमें महारी साथें जूबदुं रमो. एकवार जीतो तो एक हांस जीत्या. एम १०७ वार जीतो तो एक जीत्या एवा १०७ थांजा जीतीने राज्य द्यो, पण जो रमतां रमतां वचमां एक दाव हारी जाशो, तो पाडला दाव सर्व व्यर्थ जाशो. ते वचन सांजदी कुमर पण लोजना वशथी रमवा बेरो. घणा दिवस रमतां पण एके थांजो जीती शकायो नही, तो सर्व सज्जाना थांजला क्यांथी जीत्या जाय ? कदापि ते पण कोइ देवताना सान्निध्यथी जीत्या जाय, परंतु मनुष्यजनवर्षी भ्रष्ट थयो ते बीजी वार मनुष्यजन्म न पासे ॥ इति चतुर्थ द्यूतदृष्टांतः ॥ ४ ॥

हवे पांचमो रत्नोदृष्टांत कहे ढे:- वसंतपुर नगरे अपार धननो धणी गुणवान् धन्नो एवे नामें व्यवहारीयो वसे ढे. तेने गुणवंत एवा पांच पुत्रो ढे. हवे ते धन्नो शेठ रत्न परीक्षाने विषे निपुण ढे, माटें तेनुं अपर नाम रत्नपरीक्षक ढे. जे जे बहुमूद्दां रत्न आवे, ते सर्वनो संग्रह करे, पण वेचे नही. तेवारें पुत्रो कहेवा लाग्या के हे पिताजी ! बमणा त्रमणां दाम

आवे ढे, तेम ढतां रत्न कां वेचता नथी ? तो पण ते लोन्नवशें वेचे नहि. एकदा ते शेर ग्रामांतरें गयो, पडी पाडलाथी पुत्रोयें सर्व रत्न कोइ देशांतरीने वेचातां आपी दीधां. शेर घेर आढ्यो, अने पोतानां रत्न वेचवाना सर्व समाचार सांजली रीशें करी कहेवा लाग्यो के हे पुत्र ! महारां जे रत्नो ढे, ते रत्नो पाठां आण्याविना महारा घरमां तमें आवशो नही. तेवारें ते पांचे पुत्र रत्न लेवा माटे परदेश जणी निकट्या, पण ते सर्वे रत्नो तेवांने तेवांज क्यांथी मल्हे ? हवे ते पण कदाचित् कोइ देवताना सहायथी मल्ही जाय, परंतु मनुष्यावतारथकी ब्रष्ट थयो जे होय, ते फरी मनुष्यजनवने पासे नही ॥ इति पंचम रत्नदृष्टांतः ॥ ५ ॥

हवे ढठो स्वप्ननो दृष्टांत कहे ढे:-उज्जयणी नगरीयें बहोंतेर कलानो जाण एवो मूलदेव नामें राजपुत्र ढे, ते कलाकलापें करी सकल लोकने प्रीति ऊपजावतो रहे ढे. एकदा ते उज्जयणीमां देवदत्ता वेश्यानी उपर आकरो रागातुरथइने तिहांज रह्यो. तेने कोइक व्यवहारीये मान ब्रंश करी काढ्यो. त्यांथी निकली परदेश जमवा लाग्यो. अ-

नेक पृथ्वीनां विनोद देखतो थको कोइक गामें  
मरमांहे जइ सूतो तिहाँ स्वप्नमां चंडमाने पोता-  
ना मुखमां पेसतो देखी जाएयो, ते समये तेज  
मठमां एक कापडीये एटके कोइ गुंसाइने चेके  
पण एवुंज स्वप्न दीरुं. परी जागीने ते स्वप्ननो वि-  
चार पोताना गुरु गुसांइ पासे जइ पूरवा लाएयो,  
तेवारें गुंसांश्यें कहुं के आज तुं धृत खांक सहित  
रोटबो पाशीम ! एवुं जाणी मध्यान्ह समये ते  
जिहामाटे गयो, तिहाँ कोइक दातार पुरुषे धृत  
खांक सहित रोटबा आप्या, ते लइ चाखतो थयो  
अने मनमां प्रमोद पाभ्यो. हवे मूलदेव तो शास्त्र-  
नो जाण ढे माटे मठयकी निकली फलफलादिक  
लइ स्वप्नपाठक आगव मूकी स्वप्ननो वीचार पूर्व्यो.  
तेवारें पाठक बोद्यो के तमोने महादुं राज्य मख-  
शे ? तेने तहत मानीने नगरमांहे जिहा पामी  
कद्माषें करी मासोपवासी साधुने पारणुं करावयुं.  
ते साधुनी जक्किना प्रजावथी देवता तुष्टमान अइ  
बोद्यो के हे मूलदेव ! तुं एके वचनें जे विचारमां  
आवे, ते माग. तेवारें मूलदेव बोद्यो के हे स्वा-  
मी ! हजार हस्ती बंधाय एवुं राज्य देवदत्ता गणि-

का सहित आयो. देवता बोद्ध्यो के ए सर्वे तमें पामशो. तेवार पठी सातमे दिवसें कोश्क नगरें गयो. तिहाँ अपुत्रीयो राजा मरण पाम्यो. ते नगरना खोकोयें राजानुं मृतकार्य करि राज्यना अधिकारी पंचने मेलवी पंचदिव्य प्रगट करी (मूलदेवने राज्य आप्युं. ए वात गुंसांझना चेलायें सौन्नदी तेवारें पश्चात्ताप करवा मांड्यो जे अरे हुं निर्बुद्धि बुं मने स्वप्न लाधुं ते फोकट हाथुं. पठी वारंवार जश्ति हाँज सुवे पण स्वप्न देखे नही. कदाचित् दैवयोगें वली ते कापडी स्वप्न पण देखे, परंतु मनुष्यज्ञवर्थी ब्रष्ट थयो ते फरी मनुष्यज्ञव पामे नही॥)। इति षष्ठि स्वप्नहृष्टांतः ॥ ६ ॥

हवे सातमो चक्रनो हृष्टांत कहे ढे. इंद्रपुर नगरें इंद्रदत्त राजा ढे, तेने बावीश राणीयोना श्रीमाल्य प्रमुख बावीश पुत्रो ढे. सर्वे ते बहोंतेर कलामां प्रवीण ढे, सर्वे सौन्नाग्यना निधान ढे, एकदा वली राजायें मंत्रीनी पुत्रीने परणी. पाठलथी कर्मयोगें ते मंत्रीनी पुत्रीने अने राजाने द्वेष थयो, तेथी राजायें तेने त्यागी दीधी, पिताने घेर जश्ति रही- एम करतां धणा दिवस वीत्या, तेवारें एक दिवस राजा-

यें बाहिर जातां ते स्त्रीनेगोंखें बेठी दीर्घी, ते दिवसें ते क्षतुस्नानवाली डे. राजायें तेने साहात् रतिसमान देखी पोताना मानसोने पूब्युं के अरे ! ए स्त्री ते कोण डे ? तेवारें एक सुजटें कहुं हे स्वामी ! ए मंत्रीनी पुत्री तमारी राणी डे, तेवारें राजा ते रात्रें तिहांज रह्यो. पठी ज्ञान्ययोगें कोश्क पुण्यवंत जीव तेने उदरें आवी उपनो. प्रातःकालें पुत्रीयें पिता आगल सर्व समाचार कह्या. तेवारें मंत्रीयें ते दिवस, वेळा, संकेत, इत्यादि सर्व यादी कागदें लखी राखी अने पूर्ण दिवस थये पुत्र जन्मयो, तेनुं नाम सुरेंद्रदत्त दीधुं. पठी उज्ज्वल पद्ममां जेम चंद्रमा हर्ष उपजावे, तेम हर्ष उपजावतो क्रमें क्रमें वधतो गयो. हवे तेज दिवसें मंत्रीनी दासीयें चार पुत्र प्रसव्या, तेनां नाम कहे डे. एक अग्नि कर, बीजो पर्वतक, त्रीजो बहुल, चोथो सागर अने पांचमो तेनी साथें सुरेंद्रदत्त, ए पांचे मली एकज उपाध्याय पासें ज्ञानवा लाभ्या, तिहां प्रधानें सुरेंद्रदत्तने ज्ञानाववा माटे कबाचार्यने सारी रितें जबामण दीधी, ते उपरथी कबाचार्यें पण धणी मेहेनत करीने ज्ञानाव्यो, दासीना चारे पुत्र विन्न करे, पण

सुरेंद्रदत्त विद्याच्छासज करतो रहे. वबी राजाना बीजा जे बावीश पुत्रो डे, ते पण तेज नीशाखमां जणे डे, परंतु ते राजमद यौवन मदें करीने उद्धंठ थका गुरुनी साहामा वांकुं बोल्के, तेवारें कलाचार्य-तेमने शीख आपे, तो रुदन करता मा बापनी आ गल जाय. अने प्रधान तो अध्यापकने एज जल्लामण करे, के पुत्रने ताडना तर्जना करीने पण जणावजो. तेथी उपाध्याय पण तेने खांतें करी विशेष जणावे शास्त्रकला, राधा वेध प्रमुख सर्वकलाऊ शीखी हुशीयार थयो, तेवारें अध्यापकें सुरेंद्रदत्त कुमरने लावीने प्रधानने सोंप्यो, प्रधाने पण अध्यापकने सारीरीतें दान दइ संतोषीने विसर्जन कर्यो,

एवा अवसरें मथुरानगरीयें जितशत्रुराजानी निर्वृत्ति नामें पुत्री डे, ते तरुण अवस्थाने प्राप्त थइ, तेवारें मातायें सर्व शणगार पहेरावी तेना बाप पासें मोकळी, पितायें तेनी सुरत देखी ए कन्या खयंवरने योग्य डे. एम चिंतवीने कल्यु के हे पुत्री ! मन मानता जरतारने तमें वरो. पुत्री बोली हे पिताजी ! जे राधावेध साधे, तेने हुं वरुं ! कुमरीनी एवी प्रतिष्ठा जाणी राजायें गम गम

द्वूत मोकली कहेवराव्युं. अने इङ्गदत्तने घणापुत्र  
ठे माटे तेने तेडवा सारु प्रधान मोकछो, तेणे जइ  
राजाने वीनव्यो के स्वामी ! तमारा पुत्रो सहित  
तमें स्वयंवरने विषे पधारो. राजा पण बावीश पुत्रें  
परवस्थो थको प्रधान सहित स्वयंवर मंस्यें आव्यो.

हवे जितशत्रुराजायें शुच मुहूर्ते सर्वनगर श-  
णगाखुं. पोतें नगर बाहिर सर्व परिवार सहित  
निकछो, चंमप कराव्यो, तेनी वचमां स्तंज उज्जो  
कीधो, उपर सृष्टिसंहारें फरतां आठ आठ चक्र  
मांड्यां, ते उपर पूतली मांकी, उंधामुखने धारण  
करनारी ते पूतली ठे तेथी तेनुं नाम राधा पाडेलुं  
ठे. लब्दी हेरल तेलथी जरेली एक कडाइ मांकी.  
तिहां कन्या, पंचवर्णी सुगंध युक्त फूलनी माला  
लझ अंजनी पासें आवी उज्जी रही. अने कहे ठे  
के जे पुरुष ए राधावेध साधशे, तेना कंठमां हुं  
आ माला आरोपण करीश. एम कही सावधान  
थझ उज्जी रही.

ते अवसरें इङ्गदत्त राजायें पोतानो महोटो श्री-  
माल नामें पुत्र ठे तेने दूर लझ जइ कहुं के हे  
पुत्र ! तुं राधावेध साध. अने कन्या सहित ए राज्य

बद्ध ले. ते वात सांचली ते पुत्र कंपवा लाग्यो. ध-  
नुष्य मात्र पण उपाडी न शक्यो, तथापि वद्दी कां-  
इक साहस आदरी धनुष्य तो प्रयासें करी उपाड्युं, पण  
ते चढावी शक्यो नहीं, तेवारें विलखो थऱ्हने बाँध्यो  
के अरे ! आ कार्य तो महाराष्ट्री आयज नहीं !

एवामां वद्दी बीजो कुंश्वर आव्यो, ते आवी ध-  
नुष्य चडावी तुरत पाठो वद्यो. पठी त्रीजो कुमर  
आवी हृष्टियें जोइ पाठो वद्यो, तथा चोथो पुत्र  
तो अर्द्ध रस्तेशीज जोइ पाठो वद्यो, अने पांचमो  
तो पोताना स्थानकशी उव्योज नहीं. एम बावीश  
कुमर विलखा थऱ्ह बेगा, तेवारें, राजानुं मुख विल-  
खाणुं जोइ प्रधानें कहुं के स्वामी ! छुःखी म आ-  
जे. एक पुत्र तमारो हज्जी पण ढे, तेने राजांयें पू-  
छ्युं के ते कयो पुत्र ढे ? तेवारें मंत्रीश्वरें सर्व वृ-  
त्तांत कही संचलाड्युं अने कागल लावी नामो वं-  
चाव्यां. राजायें पण ते वात संचारीने प्रधानने क-  
हुं के ते पुत्रने तरत तेडी लावो. तेवारें मेहेतें पण  
सुरेंद्रदत्तने स्नान शणगार करावी तेडी आणी रा-  
जाने पगे लगाड्यो. राजा ते पुत्रने देखी हर्षित  
मन थयो थको चिंतवा लाग्यो के ॥ यत्रोदकं तत्र

वसंति हंसा, यत्रामिषं तत्र पतंति गृध्राः ॥ यत्रा-  
र्थिनस्तत्र ज्ञवंति वेश्या, यत्राकृतिस्तत्र गुणावसंति  
॥ १ ॥ हवे राजायें कह्युं के हे वत्स ! ए राधावेद  
साधी कन्या सहित राज द्वयो. ते कुमरनी मुखा-  
कृति देखी लोक पण चमत्कार पाम्यां. कुमर पण  
राजानो आदेश पामी निश्चल मनें गुरुना चरणक-  
मखने नमस्कार करी स्थंञ्जनी नजीक जइ धनुष्यने  
नमन करी तत्काल धनुष्य चढावी तेलनी कढाइ-  
मांहे नीची दृष्टियें मुख जोते थके उपर बाण मू-  
क्यो. ते बाणें राधानी आंखमाहेली कीकी वींधी,  
जेवी वींधी के तुरत याचक लोकोयें जयजयारव  
कीधो, अने कन्यायें वरमाला घाली. राजा अने  
मंत्रीश्वर ए बे हर्ष पाम्या, तिहाँ सुरेंद्रदत्त कन्या  
सहित राज्यलङ्घीनां सुख पाम्यो. एवी रीतें कोइ  
कदाचित् राधावेद साधे, पण मनुष्यन्नवर्थी ब्रह्म थ-  
यो, ते वली फरीने नरन्नव न पामे ॥ इति सप्तम  
चक्रदृष्टांतः ॥ ७ ॥

हवे आठमो कूर्मनो दृष्टांत कहे डेः—कोइक ए-  
क लक्ष योजन प्रमाण ऊह डे, तेमां एक महोटो  
काचबो रहे डे. तेणे एकदा प्रस्तावे वायराने योगे

वश थयो थको ( डुः प्रापं कें ) चोराशी लाख-  
जीवयोनिने विषे नमता जीवें महाकष्टे पामवा यो-  
ग्य एबुं ( मत्यजन्म कें ) मनुष्यजन्म तेने जिन-  
धर्मविना ( मुधागमयति कें ) व्यर्थ गमावे रे,  
( सः कें ) ते पुरुष, ( स्वर्णस्थावे कें ) सुवर्ण  
स्थावने विषे ( रजः कें ) धूल एटखे कचरादिक  
तेने ( क्षिपति कें ) नाखे रे. अर्थात् सुवर्णस्थाव स-  
मान मनुष्यजन्म जाणबुं, तथा रजसमान प्रमाद  
जाणवा. एटखे प्रमादवशें मनुष्यजन्म व्यर्थ जाय  
रे. वली पण ते पुरुष शुं करे रे ? तो के, ( पीयू-  
षेण कें ) अमृतें करीने ( पादशौचं कें ) पादप्र-  
क्षावनने ( विधत्ते कें ) करे रे, अर्थात् जे अमृ-  
तना बिंदुमात्रनुं पान करवाशी अजरामरत्व प्राप्त  
आय रे, ते अमृतने पादप्रक्षावनने माटे वृथा ग-  
मावबुं ते अयुक्त जाणबुं. तेम वली ते पुरुष शुं करे  
रे ? तो के ( प्रवरकरिणं कें ) उत्तम हस्तीप्रत्यें  
( ऐंधनारं कें ) काष्ठज्ञारने ( वाहयति कें ) वहन  
करावे रे. अर्थात् जे हस्तीने पोताना छार आगल  
बाँधे उते छारनी शोन्ना आय रे, तो ते हाथीएं  
काष्ठ लाववां, ते अयुक्त रे वली ते पुरुष शुं करे

ठे ? तो के ( वायस के० ) कागडाने ( उक्कायना-  
र्थम् के० ) उक्काडवाने अर्थे ( चिंतारलं के० ) चिं-  
तामणि ने ( करात् के० ) हाथथकी ( विकिरति के० )  
फेंके ठे. अर्थात् मनोवांछित अर्थने देनारुं एवुं  
चिंतामणि रत्न तेनुं कागडाने उडाडवाने माटे फें-  
कबुं ते अयोग्य ठे, तेम धर्मसाधक पुरुषे मर्त्यज-  
न्में करी प्रमाद करवो ते अयुक्तज ठे. तेथी हे ज-  
द्यजनो ! एम जाणीने मनमां विवेक लावी प्रमा-  
दनो त्याग करीने धर्में करीने मनुष्यजन्म सफल  
करवो धर्म आचरता एवा सज्जन पुरुषोने जे पुण्य ॥  
इत्यादि पूर्ववत् ॥ ५ ॥

**टीका:-** अथ मनुष्यज्ञवस्य सर्वोत्कृष्टत्वमाह ॥  
स्वर्ण स्थाप इति ॥ यः पुमान् प्रमत्तः सन् प्रमाद-  
स्य वशं पतितः सन् मद्यविषयकषायनिङ्गा विक-  
शारूपप्रमादवशं गतः सन् द्वःप्रापं चतुरशी तिद-  
क्षजीवयोनिषु ऋमति जीवेन द्वःखेन महता कष्टन  
प्राप्य यत् मर्त्यजन्म मनुष्यज्ञवं तत् मुधा वृथा श्री-  
जिनधर्मं विना निःफलं गमयति । स पुमान् स्व-  
र्णस्थापे रजो धूलिं कच्चवरादि क्षिपति । स्वर्णस्था-  
पतुव्यं मर्त्यजन्म रजःसदृशाः प्रमादाः ॥ पुनःसः

पुमान् पीयूषेण श्रमृतेन कृत्वा पादशौचं चरणप्र-  
क्षालनं विधत्ते करोति । पीयूषस्य बिंदुमात्रपाने-  
नाजरामरत्वं स्यात् तत् पादप्रक्षालनार्थं मुधा वृथा  
गमयतीत्युक्तं ॥ पुनःसः पुमान् प्रवरकरिणं प्रधान-  
हस्तिनं ऐंधनारं ईंधनकाष्ठसमूहं वाहयति ॥ य-  
स्मिन् गजे द्वारिबिक्षेपिपि सति शोन्ना जवति । तेन  
ईंधनानयनमयुक्तं ॥ पुनः सः पुमान् वायसोङ्गायना-  
र्थं काकस्य उङ्गायननिमित्तं चिंतामणिरत्नं करात् ह-  
स्तात् विकिरति विक्षिपति ॥ यथा मनोवांडितार्थ-  
दायकस्य चिंतामणिरत्नस्य काकउङ्गायनार्थं विक्षेप-  
णमयुक्तं तथा धर्मसाधकेन मर्त्यजन्मना प्रभादसेवन-  
मयुक्तं । ज्ञो जन्म्यप्राणिन् ! एवं ज्ञात्वा मनसि वि-  
वेकमानीय प्रभादं त्यक्त्वा धर्मेण कृत्वा मनुष्यज-  
न्म सफलं कार्यं ॥ धर्ममाचरतां सतां यत् पुण्यमु-  
त्पद्यते तत् पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरमांगदिक्षयमाला  
विस्तरंतु ॥ ५ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—सवैया त्रेवीशा ॥ ज्यौं मतहीन  
विवेक विना नर, साजि मतंगज ईंधन ढोवै ॥ कं-  
चन ज्ञाजन धूलि जरे सठ, मूढ सुधारससूं पग  
धोवै ॥ बोहितकाग उमावन कारन, कारि महामनि

( ६७ )

मूरख रोवै ॥ त्यौं नरदेह डुबंज बनारसि, पाश  
अजान अकारथ खोवै ॥ ५ ॥

हवे जे संसारना विषय माटे धर्मनो त्याग  
करे ढे, ते मूढ पुरुष जाणवा ते कहेरे.

॥ शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ ते धत्तूरतरुं वपं-  
ति ज्वने प्रोन्मूल्य कट्पञ्चुमम्, चिंतारत्न,  
मपास्य काचशक्लं स्वीकुर्वते ते जडः ॥  
विक्रीय द्विरदं गिर्णिं उसदृशं क्रिणति ते रा-  
सन्न, ये लब्धं परिहृत्य धर्ममधमा धा-  
वंति ज्ञोगाशया ॥ ६ ॥

अर्थः— ( ये केष्ठ ) जे ( अधमाः केष्ठ ) मूर्ख  
एवा पुरुषो ( लब्धं केष्ठ ) प्राप्त अयेदा एवा ( धर्म  
केष्ठ ) धर्म जे तेने ( परिहृत्य केष्ठ ) त्याग करीने  
( ज्ञोगाशया केष्ठ ) ज्ञोगविषय वांडनाने अर्थे, ( धा-  
वंति के ) दोडे ढे, अर्थात् विषयार्थमां प्रवर्त्ते ढे,  
( ते केष्ठ ) ते नरो, ( ज्वने केष्ठ ) पोताना एह-  
नेविषे उत्पन्न अयेदा ( कट्पञ्चुमं केष्ठ ) कट्पञ्चुम-  
ने ( प्रोन्मूल्य केष्ठ ) काढी नाखीने ( धत्तूरतरुं केष्ठ )

धंतुराना वृक्षने ( वपंति केण ) आरोपण करे दे, वद्धी ( ते जडाः केण ) ते जड पुरुषो शुं करे दे ? तो के ( चिंतारत्नं केण ) चिंतामणि रत्नने ( अ-पास्य केण ) त्याग करीने ( काचशक्लं केण ) काचना कटकाने ( स्वीकुर्वते केण ) स्वीकार करे दे, वद्धी ( ते केण ) ते जड पुरुषो, ( गिरिङ्कसदृशं केण ) पर्वतसमान उंची कायावाला ( द्विरदं केण ) हस्ती-ने ( विक्रीय केण ) वेचीने ( रासनं के ) गर्दन्नने ( क्रीणंति केण ) मूळ्यें करीने ग्रहण करे दे. आ छेकाणें कद्यपवृक्षसदृश धर्म जाणवो, तथा धंतुराना वृक्षसमान विषय जाणवा, तेवी रीतें सर्वत्र सारां दृष्टांतो धर्मने लगाडवां तथा अन्य दृष्टांतो विषय-ने लगाडवां. माटे हे ज्ञव्यजनो ! एम मनने विषे विवेक द्वावीने कद्यपवृक्ष तथा चिंतामणि समान, श्रीजिनेश्वरना धर्मनुंज आराधन करबुं. आराधन करनारनुं जे पुण्य ॥ इत्यादि पूर्ववत् ॥ ६ ॥

**टीका:-**— ये तु असाराणां विषयाणां कृते धर्म ल्यजंति ते मूढा एवेत्याह ॥ ते धन्त्र इति ॥ ये अधमा मूर्खाः पुरुषाः लब्धं प्राप्तं धर्मं परिहृत्य त्यक्त्वा ज्ञोगाशया विषयवांडया धावंति । विषयार्थ

प्रवर्त्तते, ते नरा ज्ञवने स्वगृहे प्रोक्षतं उत्पन्नं कद्यपवृक्षं  
 प्रोन्मूल्या उत्खाय धत्तूरतरुं वपंति आरोपयंति । पुनस्ते  
 जडाः मूर्खाः चिंतामणिरत्नं श्रपास्य त्यक्त्वा दूरीकृत्य  
 काचशक्लं काचखंम् स्वीकुर्वते गृहेहंति ॥ पुन  
 स्ते जडा गिरीङ्कसदृशं पर्वतप्रायकायं उच्चं द्विरदं  
 हस्तिनं विक्रीय रासनं गर्दनं क्रीणंति मूढ्येन गृ-  
 एहंति ॥ अत्र कद्यपवृक्षसदृशोधर्मः । धत्तूरसदृ-  
 शा ज्ञोगाः एवं सर्वत्रोपनयः । ज्ञो ज्ञव्यप्राणिन् !  
 एवं झात्वा मनसि विवेकमानीय कद्यपवृक्षचिं-  
 तामणिसदृशः श्रीजिनधर्म एवाराध्यः आराधय-  
 तां यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरमांग-  
 लिक्यमाखाविस्तरंतु ॥ ६ ॥

॥ ज्ञाषाकाव्यः—ज्यौं नरमूल उखारि कद्यपतरु,  
 बोवन मूढ कनकको खेत ॥ ज्यौं गजराज वेचि  
 गिरिवरसम, कूर कुबुद्धि मोल खर खेत ॥ जैसे  
 डांडि रतन चिंतामनि, मूरख काच खंम मन देत ॥  
 तैसे धरम विसारी बनारसि, धावत अधम विषय  
 सुख हेत ॥ ६ ॥

कथा:-ए अर्थ उपर शशी सुरनो दृष्टांत कहे  
 डेः—आ जरत केत्रमांहे शुक्तिमती नामा नगरीने

विषे शशीनामा राजा राज्य करे ढे, ते महाप्रतापी  
 ढे, तथा तेनो लघुज्ञाइ सूर एवे नामें ढे, ते वेहु  
 ज्ञाइ एक दिवस रयवाडीयें चब्बा, वनमांहे वृक्ष-  
 नी नीचें साधुने बेढा दीठा, तेवारें अश्वथी उतरी  
 बेहुज्ञाइयें साधुने वांद्या, साधुयें पण धर्मबाज आ-  
 पी उपदेश देवा मांज्यो ॥ गाथा ॥ माणुस्स खित्त  
 जाई, कुब रूवारोग आउयं बुद्धि ॥ सबा णुग्गह  
 सिझा, संजम लोगंमि छुव्वहो लहियं ॥ १ ॥ माटे तमें  
 सत्पुरुष ठो, ते धर्मने विषे प्रमाद म करो ॥ गाथा ॥  
 चिक्कणघडेण साचिय, ढबीज्ञाणं पाणियं जाई ॥ को-  
 रं कुंजं च ज्ञेदइ, तहावि ज्ञवजीवाणं ॥ २ ॥ इत्या-  
 दि उपदेश सांजली सूरराजा दीक्षा लइ छुष्कर  
 तप करवा तैयार थर्या. अने शशीप्रत्यें जाइपणांना  
 हितने माटें कहेवा लाग्यो के हे बांधव ! आ जी-  
 वें जन्मोजन्म ज्ञोग ज्ञोगव्या. समुद्रनी जेटलां पा-  
 णी पीधां, मेरु जेटलां धान्य आरोग्यां, तो पण तृती-  
 न अइ) तेने शशी कहेवा लाग्यो के हे बांधव !  
 एवो कोण मूर्ख होय के जे जला राज्यज्ञोग, लिं-  
 त लोचना स्त्री, पान फूल तंबोलादि उत्तम प्रकार-  
 ना ज्ञोग इत्यादि सामग्री संबंधी सुख तेने त्यागीने

परबोकना सुखने अर्थें उपवासादिक कष्ट करे, पर बोक रे के नशी तेकोणें जोयो रे ? माटें तमें माह्या हो, तो आ रता ज्ञोग ज्ञोगवो, पोताना जीवने शाता आपो, अंतराय म करो यौवन पामेलुं फोकट म गमावो एवा ज्ञाइनां वचन सांजलीने सूरराजा खिन्न थयो. पठी गुरुपासेंथी चारित्र ग्रहण करी सर्वपरिग्रह ठांकी चारित्र पालवामां तत्पर थयो. अंत्यावस्थायें अणसण आराधी स्वर्गे गयो. अने शशीराजा विषयासक्त थको मरण पामी नरके गयो. सूरराजायें देवलोकने विषे अवधिज्ञानने बद्दें करी पोताना ज्ञाइने नरकनां डुःख ज्ञोगवतो दीगो, तेवारें देवलोकथी निकदी नरकमां जइ आपणां रूप तेज शेक्कि प्रगट कीधां, ते देखी शशी बोल्यो के हे बांधव ! अद्यापि ते महारो देह पञ्चो रे, माटें तुं जइने ते देहनी यत्त कर के जेम हुं नरकथकी निकदी सुखी आजं ! ते सांजली सूर बोल्यो के अरे मूर्ख ! जीवरहित देह पञ्चो रे ते शुं सुकृत करशो ? प्रथमथीज तें कोइ कष्ट कर्खुं हत तो आ नरकमां तुं पडत नही. हवे तुं तहारुं मन छाम राखी कर्म खपाव, करेलां कर्मनो पश्चात्ताप

कर, जेम आगले जवें सुखी आश्श. एवुं कही सूर  
पोताने स्थानके पहोतो. एम कोइक जीव शशीनी  
येरें मनुष्यजनवमां धर्म न करे, ते आगल पश्चात्ताप  
पामे. माटे सर्वकोइ धर्म करो ॥ ६ ॥

हवे मनुष्य जन्मनुं तथा धर्मसामग्रीनुं ऊर्ब-  
जपणुं कहे रे,

॥ शिखरिणीवृत्तम् ॥ अपारे संसारे कथमपि  
समासाद्य नृजनवम्, न धर्म यः कुर्याद्विषयसु  
खतृष्णातरक्षितः ॥ ब्रुडन् पारावारे प्रवर-  
मपहाय प्रवहणम, स मुख्योमूर्खाणामुषबा-  
मुपद्वधुं प्रयतते ॥ ७ ॥

अर्थः— ( यः कें ) जे पुरुष, ( विषय कें ) श-  
ब्द, रूप, रस, स्पर्श, गंध, तेमनां ( सुख कें )  
सुख तेनी ( तृष्णा कें ) वांग तेणे करीने ( तर-  
क्षितः कें ) व्याकुल थयो थको ( अपारे कें )  
अनंत एवा ( संसारे कें ) संसारने विषे ( कथम-  
पि कें ) माहाकष्टे करीने ( नृजनवं कें ) नरजनव-  
त्वने ( समासाद्य कें ) पामीने ( धर्म कें ) धर्मने

( न केऽ ) नहिं ( कुर्यात् केऽ ) करे, ( सः केऽ )  
 ते पुरुष, ( पारावारे केऽ ) समुद्रने विषे ( ब्रुमन्  
 केऽ ) बूढतो डतो ( प्रवरं केऽ ) उत्तम एवुं ( प्रव-  
 हणं केऽ ) वाहाणने ( अपहाय केऽ ) त्याग करीने  
 तरवाने माटे ( उषलं केऽ ) पाषाणने ( उपलब्धुं  
 केऽ ) ग्रहण करवाने ( प्रयतते केऽ ) प्रयत्न करे ठे,  
 एटले उद्यम करे ठे. ते पुरुष कहेवो जाणवो ? तो  
 के ( मूर्खाणां केऽ ) मूर्खोना मध्यें ( मुख्यः केऽ )  
 मुख्य जाणवो. अर्थात् ते पुरुष, मूर्खोमां मोहोटो  
 मूर्ख जाणवो. आ ठेकाणें संसार ते समुद्र जाणवो  
 अने धर्म, ते वाहाण जाणवुं. विषयो ते पाषाण स-  
 मान जाणवा. माटे हे जन्यजनो ! आ प्रकारें जा-  
 णीने मनमां विवेक लावीने संसार समुद्रतारक ए  
 वा धर्मनुंज आराधन करो. आराधन करता एवा  
 सज्जनोने जे पुण्य उत्पन्न थाय ठे, ते पुण्य ॥ इत्या-  
 दि पूर्ववत् जाणवुं ॥ ७ ॥

टीका:- अथ नरज्ञवस्य धर्मसामद्याश्च ऊर्ध्वं  
 ज्ञत्वमाह ॥ अपारे संसारेति ॥ यः पुमान् विषयसु-  
 खतृष्णातरबितः सन् विषयाणां कामज्ञोगानां शब्द-  
 रूपरसस्पर्शं धानां सुखस्य तृष्णा वांडा तया तर-

बितो वाहितो व्याकुलीकृतः सन् अपारे अनन्ते  
 संसारे कथमपि महता कष्टेन नृजर्वं मनुष्यजन्म  
 समासाद्य प्राप्य धर्मं न कुर्यात् न करोति । सः पु  
 मान् पारावारे समुद्रे ब्रुडन् निमज्जनं प्रवरं उत्तमं  
 प्रवहणं पोतं अपहाय त्यक्त्वा तरणार्थं उपखं पा-  
 षाणं उपखब्धुं यहीतुं प्रयत्ने यत्तं करोति उद्यमं  
 करोति ॥ कथं चूतः सः । मूर्खाणां मुख्यः मूर्खेषु वृ-  
 ऋमूर्खः । अत्र संसारः समुद्रः । धर्मः प्रवहणं ।  
 विषयाः पाषाणसदृशा इत्युपनयः ॥ ज्ञो जन्यप्राणि-  
 न् ! एवं इत्यात्वा मनसि विवेकमानीय संसारसमुद्र-  
 तारकः श्रीधर्मएव आराध्यः । आराधयतां च सतां  
 यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरमांगलि-  
 क्यमाला विस्तरंतु ॥ ७ ॥

ज्ञाषाकाव्यः— सोररो ॥ ज्यौं जल बूढत कोइ,  
 तजि वाहन पाहन गहैं ॥ त्यौं नर मूरख होइ, ध-  
 रम डाँकि सेवत विषय ॥ ७ ॥

हवे आ ग्रंथमां जेटखां उपदेशनां छारो कहेवा-  
 नां डे ते उपदेश छारें करी सर्व छारो कहे डे.  
 ॥ शार्दूलविक्रीडितवृत्तत्रयम् ॥ जक्कि तीर्थ-  
 करे गुरों जिनमते संघे च हिंसानृतं, स्तेया

ब्रह्मपरिग्रहाद्युपरमं क्रोधाद्यरीणां जयम् ॥  
 सौजन्यं गुणिसंगमिन्द्रियदमं दानं तपोज्ञाव-  
 नां, वैराग्यं च कुरुष्व निर्वृतिपदे यद्यस्ति  
 गंतुं मनः ॥ ८ ॥

अर्थः—हे जन्यप्राणीयो ! ( यदि केष्ट ) जो त-  
 मारुं ( निर्वृतिपदे केष्ट ) मोक्षपदने विषे ( गंतुं केष्ट )  
 जावानुं ( मनः केष्ट ) मन ( अस्ति केष्ट ) ढे, तो  
 तमें १ ( तीर्थकरे केष्ट ) तीर्थकरने विषे एटखे श्री-  
 वीतरागने विषे ( जक्किं केष्ट ) गुणोत्कीर्तनरूप ज्ञाव-  
 पूजाने ( कुरुष्व केष्ट ) करो. वली २ ( गुरौ केष्ट )  
 धर्मोपदेशक गुरुने विषे जक्किने करो. जक्कि अने  
 कुरुष्व ए वे पदो, सर्वत्र योजवां. वली ३ ( जिन-  
 मते केष्ट ) श्री जिनशासनने विषे जक्किने करो व-  
 ली ४ ( संघे केष्ट ) चतुर्विध श्रीसंघने विषे जक्किने  
 करो. ( च केष्ट ) तथा ५ ( हिंसा केष्ट ) जीववध  
 प्राणातिपात, ६ ( अनृतं केष्ट ) असत्य ते मृषा-  
 वाद तेने तथा ७ ( स्तेय केष्ट ) अदत्तादान एटखे  
 परवस्तुनुं ग्रहण करवुं. ८ ( अब्रह्म केष्ट ) स्त्रीसेवा,  
 मैथुन, तथा ९ ( परिग्रहादि केष्ट ) धन धान्यादि

नवविध परिग्रहादि ते थकी ( उपरमं केण ) निवर्त्तन जे तेने करो. तथा ( क्रोधाद्यरीणां केण ) १० क्रोध, ११ मान, १२ माया, १३ लोच्च, ते शत्रुउत्तरो ( जयं केण ) जयने करो. तथा १४ ( सौजन्यं केण ) सुजनन्नाव ते सर्व जीवोने विषे मैत्रिन्नाव तेने करो. तथा १५ ( गुणसंगं केण ) गुणवान् मनुष्योनो संग जे संगति तेने करो. तथा १६ ( इंद्रियदमं केण ) पांच इंद्रियोनुं दमन करो. वली १७ ( दानं केण ) सुपात्रादि पांच प्रकारना दानने करो. वली १८ ( तपः केण ) तप ते अनशन ऊनोदर्यादि बाह्य अने अन्यंतर मली बार प्रकारनुं तेने करो. तथा १९ ( ज्ञावनां केण ) शुन्नचित्त ज्ञावने करो. ( च केण ) वली २० ( वैराग्यं केण ) संसारथकी ज्ञोगादिकथ-की जे विरक्तज्ञाव तेने करो. एटलां वानां मोहपददायक जाणीने रूडै प्रकारे आराधन करवां. आराधना करनार सुजनोनुं जे पुण्य । इत्यादि पूर्ववत् जाणवुं ॥ ८ ॥ ए प्रकारे आ काव्यमां सर्व मली वीश छार जे आ ग्रंथमां हवे कहेवाशे, ते छारनां नाम कह्यां.

टीकाः—अथास्मिन् शास्त्रे एतान्युपदेशद्वाराणि

कथयिष्यन्ते ॥ इत्युपदेश द्वारेण द्वारवृत्तमाह ॥ ज-  
 क्तिमिति ॥ जो जन्मप्राणिन् ! यदि तव निर्वृतिपदे  
 मोक्षे गंतुं मनोऽस्ति । तदा त्वं तीर्थकरे श्रीबीत-  
 रागे जन्मे जावपूजां गुणोत्कीर्तनरूपां कुरुष्व ॥ १ ॥  
 पुनर्गुरौ धर्मोपदेशके जन्मे कुरुष्व ॥ २ ॥ पुनः जि-  
 नमते जिनशासने जन्मे कुरुष्व ॥ ३ ॥ पुनः चतुर्वि-  
 धसंघे जन्मे कुरुष्व ॥ ४ ॥ हिंसाऽनृतस्तेयाऽब्रह्मपरिग्र-  
 हायुपरमं कुरुष्व ॥ ५ ॥ हिंसा जीववधः प्राणातिपा-  
 तः ॥ ६ ॥ अनृतं, असत्यं मृषावादः ॥ ७ ॥ स्तेयं  
 चौर्यं अदत्तादानं अदत्तपरस्ववस्तुग्रहणं ॥ ८ ॥ अ-  
 ब्रह्म मैथुनं स्त्रीसेवा ॥ ९ ॥ परिग्रहो धनधान्यादि नव-  
 विधः ॥ १० ॥ एत्य उपरमं निवर्त्तनं कुरुष्व ॥ ११ ॥ अत्र व्यु-  
 परमोऽपि पाठो जन्मति पुनः क्रोधाद्यरीणां क्रोध, ॥ १२ ॥  
 मान, ॥ १३ ॥ माया, ॥ १४ ॥ लोक, ॥ १५ ॥ रू-  
 पारीणां जयं कुरुष्व । पुनः सौजन्यं सुजनजावं स-  
 वर्जीवेषु मैत्रिजावं कुरुष्व ॥ १६ ॥ पुनः गुणिसंगं  
 गुणानां गुणवतां मनुष्याणां संगं संगतिं कुरुष्व  
 ॥ १७ ॥ पुनः इंद्रियदमं पञ्चेंद्रियाणां दमनं कुरुष्व  
 ॥ १८ ॥ पुनर्दानं सुपात्रादि पञ्च प्रकारं कुरुष्व ॥ १९ ॥  
 पुनस्तपोऽनशनमूनोदर्यादि बाह्यं आज्यंतरं च द्वा-

दशविधं कुरुष्व ॥ १७ ॥ पुनर्जाविनां शुन्नचित्त-  
ज्ञावं कुरुष्व ॥ १८ ॥ पुनर्वैराग्यं संसारात् जोगादि-  
न्यश्च विरक्तज्ञावं कुरुष्व ॥ २० ॥ एतानि मोक्ष-  
पददायकानि ज्ञात्वा सम्यक् प्रकारेणाराधनीयानि ॥  
आराधयतां सतां यद्गुत्पद्यते पुण्यं तत्पुण्यप्रसादात्  
उत्तरोत्तरमांगब्लिक्यमादा विस्तरंतु ॥ ८ ॥

ज्ञाषाकाद्यः— ठप्पय ॥ जिन पुज्जहि गुरु नम-  
हि, जैनमत बैन बखानहि ॥ संगन्नगति आदर-  
हि, जीवहिंसा नहि जानहि ॥ छूर कुसील अ-  
दत्त, त्याग परिग्रह परिमानहि ॥ क्रोध मान डब  
लोज, जीति सज्जन थिति रानहि ॥ गुन संग क-  
रहि इंद्रिय दमहि, देहि दान तप ज्ञाव जुत ॥ ग-  
ही मन विराग इह विधि रहहि, ते जगमें जी-  
वन मुकत ॥ ८ ॥

हवे जेवो जहेश तेवो निर्देश एवुं वचन ढे-

क्ख श्री सुर्यो अथर्वामित्य श्लोकमां कहेलां जे छारो  
सभे यथाक्रिये दिव्वदे ढे, तेमां प्रथम  
क्रमांकः चार श्लोके करी श्रीतीर्थकरनी  
जकिन्द्र छार कहे ढे.

पाष दुष्पति उगात्र दखयति व्यापादयत्या-

पदम् पुण्यं संचिनुते श्रियं वितनुते पुष्णा-  
ति नीरोगताम् ॥ सौञ्जाग्यं विदधाति पञ्च-  
वयति प्रीतिं प्रसूते यशः, स्वर्गं यहति नि-  
र्वतिं च रचयत्यर्चाऽर्हतां निर्मिता ॥ ५ ॥

अर्थः— हे ज्ञव्यजनो ! ( अर्हतां केऽ ) जिनज्ञ-  
गवंतोनी ( निर्मिता केऽ ) करेली एवी ( श्रचां केऽ )  
गुणोत्कीर्त्तन, वंदना, पर्युपास्त्यादि एवी ज्ञावपूजा  
जे हे, तें ( पापं केऽ ) पापने ( लुप्तिं केऽ ) दूर करे  
हे. वली ते ज्ञाव पूजा ( डुर्गति केऽ ) डुर्गति एट-  
ले नरकादिक जे डुष्टगति तेने ( दबयति केऽ )  
खंडन करे हे, अर्थात् निवारण करे हे. वली ते ज्ञा-  
वपूजा, ( आपदं केऽ ) कष्टने ( व्यापादयति केऽ )  
विनाश करे हे. तथा वली ते ज्ञावपूजा, ( पुण्यं  
केऽ ) पुण्य जे धर्म तेने ( संचिनुते केऽ ) वृद्धि प-  
माडे हे. तथा ते ज्ञावपूजा, ( श्रियं केऽ ) लक्ष्मीने  
( वितनुते केऽ ) विस्तारे हे, वली ते ज्ञावपूजा,  
( नीरोगतां केऽ ) शरीरने विषे जे आरोग्यता तेने  
( पुख्ताति केऽ ) पोषण करे हे, वली ते ज्ञावपूजा,  
( सौञ्जाग्यं केऽ ) सर्वे जनोमां जे श्वाघनीयता,

तेने ( विदधाति के० ) करे डे. वक्षी ते ज्ञावपूजा  
 ( प्रीतिं के० ) प्रीतिने ( पद्मवयति के० ) उत्पन्न  
 करे डे. वक्षी ते ज्ञाव पूजा, ( यशः के० ) यशने  
 ( प्रसूते के० ) प्रसवे डे एटबे विस्तारे डे. तथा ते  
 ज्ञावपूजा, ( स्वर्गं के० ) देवपदवीने ( यष्टिं के० )  
 आपे डे. ( च के० ) तथा ते ज्ञावपूजा, ( निर्वृतिं  
 के० ) निर्वृतिने ( रचयति के० ) रचे डे, उत्पन्न करे डे.  
 माटें हे ज्ञव्यजनो ! ए प्रकारें विवेक लावीने मनने  
 विषे जांणीने रुडा प्रकारें निर्मलपणाने आपनारी एवी,  
 अने आ लोक तथा परलोक, तेने विषे सर्वं सौख्य-  
 ने देनारी एवी वंदनादि गुणस्तुतिरूप श्रीजिननी  
 ज्ञावपूजा, करवा योग्य डे. ते ज्ञावपूजा करनार, स-  
 जनने जे पुण्य । इत्यादि पूर्ववत् जाणवुं ॥ ए ॥

टीका:-अथ यथोदेशस्तथैव निर्देश इति वच-  
 नात् अनुकमेण द्वाराणि विवृणोति ॥ तत्र प्रथमं  
 चतुर्जिर्वृत्तैः श्रीतीर्थकरञ्जकिद्वारमाह ॥ पापं छुंप-  
 तीति ॥ जो ज्ञव्याः ! श्रहतां जिनानां ज्ञावपूजा,  
 गुणोत्कीर्तनवंदना पर्युपास्त्यादि निर्भिता कृता स-  
 ती पापं छुंपति दूरीकरोति ! पुनर्दुर्गतिं नरकादि-

दुष्टगतिं दखयति खंमयति निवारयति । पुनः आ-  
पदं कष्टं व्यापादयति विनाशयति । पुनः पुण्यं ध-  
म्मं संचिनुते वृद्धिं प्रापयति । पुनः श्रियं द्वाहर्मीं वि-  
तनुते विस्तारयति पुनर्नीरोगतां शरीरे आरोग्यं पु-  
ष्णाति पोषयति । पुनः सौज्ञाग्यं सर्वजनेषु ऋद्वाघनी-  
यतां विदधाति करोति । पुनः प्रीतिं पद्मवयति उत्पाद-  
यति । पुनर्यशः प्रसूते यशोविस्तारयति । पुनः खर्गं  
त्रिदिवं देवपदं यडति ददाति । पुनर्निर्वृतिं रचयति  
ददाति । ज्ञो जन्यप्राणिन् ! एवं ज्ञात्वा मनसि विवेक-  
मानीय सम्यक् निर्मलविधायिनी इह लोके परलोके च  
सर्वसौख्यदायिनी वंदनादिगुणस्तुतिः श्रीजिनज्ञाव-  
जपूर्णा कार्या । कुर्वतां सतां यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यप्र-  
सादात् उत्तरोत्तरमांगलिक्यमाला विस्तरंतु ॥ ५ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—मात्रात्मक कवित्त लोर्पै छुरित  
हरैं छुःख संकट, आपै रोग रहितनर देह ॥ पुन्न  
ज्ञामार ज्ञरैं जस प्रगटै, मुगतिपंथसों करै सनेह ॥  
रचै सुहाग देहि सोज्ञा जग, परज्ञव पहुंचावै सु-  
रगेह ॥ कुगति बंध दख बलै बनारसि, वीतराग  
पूजा फख एह ॥ ५ ॥

( ४३ )

वद्वी पण श्रीजिनवरनी ज्ञावपूजाना  
फलने कहे डे.

स्वर्गस्तस्य गृहांगणं सहचरीसाम्राज्यबद्धमीः  
शुन्ना, सौन्नाग्यादिगुणावलिर्विलसति स्वैरं  
वपुर्वेश्मनि ॥ संसारः सुतरः शिवं करतख-  
क्रोडे खुरत्यंजसा, यःश्रद्धान्नरन्नाजनं जि-  
नपतेः पूजां विधत्ते जनः ॥ १० ॥

अर्थः— ( यः के० ) जे ( जनः के० ) पुरुष,  
( श्रद्धा के० ) पूजा रुचि तेनो ( न्नर के० ) न्नार ए-  
टद्दे प्रचुरता तेनुं ( न्नाजनं के० ) पात्र अयो भता  
अर्थात् शुन्न ज्ञावना युक्त अयो भतो ( जिनपतेः  
के० ) श्री वीतरागनी ( पूजां के० ) ज्ञावपूजाने  
( विधत्ते के० ) करे डे, ( तस्य के० ) ते पुरुषने  
( स्वर्गः के० ) देवलोक ते, ( गृहांगणं के० ) गृह-  
ना आंगणानी येरें निकट आयडे. वद्वी ( शुन्ना  
के० ) मनोहर एवी ( साम्राज्यबद्धमीः के० ) ( साम्रज्य-  
नी ऋद्धि, ते पुरुषने ( सहचरी के० ) साथें वर्तना-  
री आय डे. तथा ( वपुः के० ) शरीर तेज ( वे-  
श्मनि के० ) घर तेने विषे ( सौन्नाग्यादि के० )

सौन्नाथ, धैर्य औदार्यादि ( गुणावलिः केष्ट ) गुणोनी पंक्ति, ते ( स्वैरं केष्ट ) पोतानी इड्डायें ( विलासति केष्ट ) आवीने विलास करे ढे. अर्थात् रहे ढे. वल्ली ( संसारः केष्ट ) संसार ते ( सुतरः केष्ट ) सुखें करीने तरवाने शक्य थाय ढे. वल्ली ( शिवं केष्ट ) मोह, ते ( अंजसा केष्ट ) अनायासें करी शीघ्र, ते पुरुषना ( करतबक्रोडे केष्ट ) हस्ततबमध्यें ( बुद्धति केष्ट ) हस्तगोचर थाय ढे. माटे हे जन्मजनो ! एम जाणीने मङ्गने विषे विवेक लावीने जिनप्रज्ञुनी जावपूजा करो ते पूजा करनारने जे पुण्य ॥ इत्यादि पूर्ववत् जाणतुं ॥ १० ॥

**टीका:**—पुनः श्रीजिनस्य जावपूजायाः फलमाह ॥ स्वर्गस्तस्येति ॥ यो जनः श्रद्धान्नरज्ञाजनं सन् श्रद्धारुचिः तस्या जरः प्रचुरता तस्य जाजनं स्थानं जाजनशब्दस्याजहृष्टिं गत्वान्नपुंसकत्वं शुन्नजावनायुक्तः सन् जिनपते: श्रीवीतरागस्य जावपूजां विधत्ते करोति तस्य जनस्य स्वर्गो देवबोको यहांगणं यहस्यांगणव-निकटो जवति । पुनः शुन्ना मनोहरा साम्राज्यबद्धमी: राज्यकृद्धिस्तस्य सहचरी सार्थवर्तिनी जवति । पुनर्व-पुर्वेशमनि वपुरेव शरीरमेव वेशम यहं तस्मिन् सौन्ना-

ग्यधैर्यौदार्यचातुर्यादिगुणानां आवलिः श्रेणिः स्वैरं  
 स्वेष्या विलसति आगत्य विलासं करोति तिष्ठ-  
 तीत्यर्थः । पुनः संसारः सुतरः सुखेन तीर्थते इति  
 सुतरः सुखेन तरीतुं शब्द्यो ज्ञवति । पुनः शिवं मो-  
 ह्मः अंजसा शीघ्रं तस्य करतबक्रोडे हस्ततबमध्ये  
 छुट्टि हस्तगोचरो ज्ञवतीत्यर्थः ॥ अतोन्नावाहृतः  
 उत्पन्नकेवलज्ञानाश्रतस्तिंशदतिशयैर्विराजमानाः स-  
 मवसरणस्थाः इति ॥ यतः ॥ उसरणमवसिरित्ता,  
 चउत्तीसं श्रेष्ठ सए निसेवित्ता ॥ धम्मकहं च कहं-  
 ता, अरिहंता हुंतु मे सरणं ॥१॥ इति वचनात् ॥ जो  
 ज्ञव्यप्राणिन् ! एवं ज्ञात्वा मनसि विवेकमानीय अर्ह-  
 तां ज्ञावपूजा कार्या । कुर्वतां च यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्य-  
 प्रसादात् उत्तरोत्तरमांगलिक्यमालाविस्तरंतु ॥ १० ॥

ज्ञाषाकाव्यः—वृत्त उपर प्रमाणे ॥ देवबोक ता-  
 को घर अंगन, राजरीद्धि सेवैं तस पाइ ॥ ताके  
 तन सोन्नाग आदि गुन, केलि विलास करैं नित  
 आइ ॥ सो नर तुरत तरैं ज्ञवसागर, निरमल होइ  
 मोहपद पाइ ॥ दरव ज्ञाव विधि सहित बनारसि,  
 जो जिनवर पूजैं मन खाइ ॥ १० ॥

( ४६ )

वब्धी पण ज्ञावपूजानुं फल कहे डे.

॥ शिखरिणी वृत्तम् ॥ कदाचिन्नातंकः कु-  
पित इव पश्यत्यन्निमुखम्, विदूरे दारिङ्गं  
चकितमिव नश्यत्यनुदिनम् ॥ विरक्ता कां-  
तेव त्यजति कुगतिः संगमुदयो, न मुंचत्य-  
न्यर्ण सुहंडिव जिनाच्चाँ रचयतः ॥ ११ ॥

अर्थः—( जिनाच्चाँ केण ) श्रीवितरागनी वंदना-  
दि ज्ञावपूजाने ( रचयतः केण ) करता एवा पुरुषो-  
ने (आतंकः केण) ज्ञय, ते (कदाचित् केण) कोइ व-  
खत पण ( अन्निमुखं केण ) सन्मुख ( न पश्यति  
केण ) न जोवे डे. ते केनी पेरें ? तो के जेम कोइ  
( कुपितश्व केण ) कोइनी उपर कोपायमान थयो  
होय ते तेनी सामुं न जोवे, तेनी पेरें आहीं पण  
जाणी लेबुं.तथा (दारिङ्गं केण) दारिङ्ग जे डे ते ते-  
नाशी ( अनुदिनं केण ) निरंतर ( विदूरे केण ) घणे-  
ज दूर ( नश्यति केण ) नासे डे, अर्थात् तेनाशी  
दारिङ्ग दूर जाय डे, केनी पेरें ? तो के ( चकितमिव  
केण ) ते दारिङ्गय जाणीये ज्ञयन्नीत थयुं होय नहिं ?  
तेनी पेरें. वब्धी ( कुगतिः केण ) नरकादि ऊर्गति,

ते पुरुषना ( संगं केऽ ) समीपपणाने ( त्यजति केऽ ) त्याग करे थे. एटद्वे तेने मूकी दे थे, केनी पेरें ? तो के ( विरक्ता केऽ ) विरक्त अयेद्वी एवी ( कांतेव केऽ ) स्त्री जेम होय तेनी पेरे. अर्थात् जेम विरक्त स्त्री, स्वामीना संगनो त्याग करे थे, तेनी पेरें. वली ( उदयः केऽ ) अन्ध्युदय, जे प्रताप, ऐश्वर्यादिक ते ( अन्ध्यर्णं केऽ ) ते पुरुषना समीपपणाने ( नमुंचति केऽ ) न मूके थे, केनी पेरें ? तो के ( सुहृदिव केऽ ) मित्रनी पेरें. ए कारण माटें अहंत्प्रज्ञनी ज्ञावपूजा जे वंदनादिक ते करवा योग्य थे, माटें हे ज्ञव्यजनो ! ए प्रकारें जाणीने मनमां विवेक द्वावीने श्रीजिनवरनी ज्ञावपूजा करवी. करता एवा सुजन पुरुषोने जे पुण्य । इत्यादि पूर्ववत् ॥११॥

टीकाः—पुनर्ज्ञवपूजायाः फलमाह ॥ जिनाच्च  
श्रीबीतरागस्य वंदनादिज्ञावपूजां रचयतः कुर्वतः  
पुरुषस्य आतंको जयं कदाचित् अन्निमुखं सन्मुखं  
न पश्यति न विलोकयति । क इव ? कुपित इव । यथा  
कश्चित् कुपितो रुष्टो ज्वति स यथा तस्य सन्मुखं न  
पश्यति तथेत्यर्थः ॥ पुनर्दारिङ्ग्रथं दरिङ्ग्रत्वं अनुदि-  
नं निरंतरं तस्य दूरे न इयति दूरे याति किमिव ?

चकितमिव । न्यन्त्रीतमिव । पुनर्नरकादिकुगतिस्तस्य  
 संगं समीपं त्यजति मुंचति । का इव ? विरक्ता कुपिता  
 रुष्टा कांता इव स्त्री इव । यथा विरक्ता स्त्री चर्तुः संगं  
 त्यजति तथेत्यर्थः । पुनः उदय अच्युदयः प्रतापैश्च-  
 र्यादिवृद्धिस्तस्य अच्यर्ण समीपं न मुंचति न त्यजति ।  
 क इव ? सुहृदिव मित्रमिव ॥ अतोऽहंतां ज्ञावपूजा  
 वंदनादि कार्या । ज्ञो ज्ञव्यप्राणिन् ! एवं ज्ञात्वा म-  
 नसि विवेकमानीय श्रीजिनस्य ज्ञावपूजा कर्तव्या ।  
 कुर्वतां च सतां यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्त-  
 रोत्तरमांगलिक्यमाला विस्तरंतु ॥ ११ ॥

ज्ञाषाकाव्यः— वृत्त उपरप्रमाणे ॥ ज्यौं नर रहै  
 रिसाय कोप करि, ज्यौं चिंताज्य विमुख बखानि ॥  
 ज्यौं कायर संके रिपु देखत, त्यौं दारिद्र ज्ञैं ज्य  
 मानि ॥ ज्यौं कुमारि परिहरे संदपति, त्यौं डुरगति  
 ढंडे पहिचानि ॥ हित ज्यौं विज्ञौ तज्जै नहि संग-  
 ति, वीतराग पूजा फख जानि ॥ ११ ॥

वद्दी पण श्रीजिनपरमेश्वरनी ज्ञावपूजानुं  
 माहात्म्य कहे दे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ यः पुष्पैर्जिनम-  
 च्चति स्मितसुरस्त्रीलोचनैः सोऽच्यते, यस्तं

वंदति एकश्चिजगता सोऽहर्निशं वंद्यते ॥  
 यस्तं स्तौति परत्र वृत्रदमनस्तोमेन स स्तू-  
 यते, यस्तं ध्यायति कृष्टकर्मनिधनः स  
 ध्यायते योगिन्निः ॥ १२ ॥

अर्थः—( थः केण ) जे पुरुष, ( पुष्पैः केण ) पु-  
 ष्पोयें करीने ( जिनं केण ) जिनज्ञगवानने ( अर्च्च-  
 ति केण ) पूजन करे डे, ( सः केण ) ते पुरुष, ( स्मि-  
 त केण ) विकसित एवां ( सुरस्त्री केण ) देवताउनी  
 स्त्रीयोनां ( लोचनैः केण ) नेत्रोयें करीने ( अर्च्यते  
 केण ) पूजाय डे. अर्थात् जिनपूजन करनारो पुरु-  
 ष, देवलोकने विषे उत्पन्न आय डे, अने तेने देव-  
 लोकनी स्त्रीयो विकसितनेत्रैं करी पूजे डे, एटबे  
 राग सहित तेनुं अवलोकन करे डे. वली ( यः केण )  
 जे पुरुष, ( एकशः केण ) एकवार ( तं केण ) ते जि-  
 नप्रज्ञुने ( वंदति केण ) वंदन करे डे, ( सः केण )  
 ते पुरुष, ( अहर्निशं केण ) रात्रि दिवस, ( त्रिज-  
 गता केण ) त्रण ज्ञुवनैं करि ( वंद्यते केण ) वंदन  
 कराय डे. अर्थात् जे ज्ञगवानने वंदन करे, ते त्रि-  
 जगतने वंद्य आय. वली ( यः केण ) जे पुरुष, ( तं

के० ) ते श्री जिनवरने ( स्तौति के० ) स्तवे डे,  
 वर्णन करे डे. ( सः के० ) ते पुरुष, ( परत्र के० )  
 स्वर्गने विषे ( वृत्रदमन के० ) इंद्रो, तेना ( स्तोमे-  
 न के० ) समूहें करीने ( स्तूयते के० ) स्तवाय डे,  
 स्तुति कराय डे एटबे पोतानी गुणस्तुतियें करीने  
 वर्णन कराय डे. वली ( यः के० ) जे पुरुष, ( तं  
 के० ) ते परमेश्वरने ( ध्यायति के० ) पिंकस्थपद-  
 स्थरूपस्थ रूपातीतज्ञेदें करीने ध्यान करे डे, एटबे  
 हृदयने विषे जगवानने ध्यानगोचर करे डे. ( सः  
 के० ) ते पुरुष, ( योगिन्निः के० ) योगीश्वर जे म-  
 हामुनियो तेमणे ( ध्यायते के० ) ध्यानगोचर क-  
 राय डे. हवे ते पुरुष कहेवो डे ? तो के ( कृत के० )  
 रचना कस्यो डे ( अष्ट कर्म के० ) आठ कर्मनो  
 ( निधनः के० ) विनाश जेणे एवो डे. अर्थात् सि-  
 द्धावस्थाने प्राप्त थाय डे ॥ १७ ॥ आ प्रकारे आ  
 सिंदूरप्रकर ग्रथमां चार श्वोकें करी ज्ञावपूजानो  
 ग्रथमप्रक्रम कह्यो ॥ इति ग्रथमप्रक्रमः ॥ ३ ॥ ए  
 परमेश्वरनी पूजा उपर नक्षराजा अने दमयंतीनी  
 कथा जाणवी, ते सर्वत्र ग्रसिद्ध डे ॥ ए श्री तीर्थ-  
 करञ्जकिनुं ग्रथमद्वार संपूर्ण शयुं ॥ ३ ॥

इति पूजायाः प्रस्तावः ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य,  
व्याख्ययां हर्षकीर्तिना ॥ सूरिणा विहितायां तु,  
पूजायाः प्रक्रमोऽ जनि ॥ १ ॥ इति जिनवर प्रक्रमः ॥

टीका:- पुनः श्रीजिनज्ञावपूजायाः माहात्म्य-  
माह ॥ यः पुरुषः पुष्टैः कृत्वा जिनं श्रीवीतरागं अ-  
चेंति पूजयति स पुरुषः स्मितसुरस्त्रीलोचनैः अर्च्यते  
पूज्यते । स्मितानि विकसितानि यानि सुरस्त्रीणां देवां-  
गनानां लोचनानि नेत्राणि तैः । देवलोके देवत्वेनो-  
त्पन्नः स देवांगनान्निर्विकसितनेत्रैः अर्च्यते पूज्यते ।  
सरागं अवलोक्यते इत्यर्थः । पुनर्यः पुमान् एकशः  
एकवारं श्रीजिनं वंदति स अहर्निशं दिवारात्रौ  
त्रिजगता त्रिभुवनेन वंद्यते । यो जिनं वंदति स  
त्रिजगद्वयो नवतीत्यर्थः । पुनर्यः पुमान् तं श्रीजि-  
नं स्तौति वर्णयति स पुमान् परत्र परलोके वृत्रदम-  
नस्तोमेन वृत्रदमनानां इंद्राणां स्तोमेन समूहेन  
स्तूयते । गुणस्तुत्या कृत्वा वर्णते । पुनर्यस्तं श्रीजि-  
नं ध्यायति विमुस्थपदस्थरूपस्थरूपातीतन्नेदैर्हदये  
ध्यानगोचरं करोति स पुमान् योगिन्निर्योगी श्वरैर्म-  
हामुनिन्निधर्यायते ध्यानगोचरः क्रियते । कथं चू-  
तः सः । क्वसकर्मनिधनः क्वसं रचितं कृतं अष्टानां

कर्मणां निधनं विनाशो येन सः कृतकर्मनिधनः॥  
सिद्धावस्थां प्राप्त इत्यर्थः ॥१६॥ इति पूजायाः प्रस्तावः

नाषाकाव्यः—वृत्त उपर प्रमाणे ॥ जो जिनदं  
पूजैँ मूलनसों, सुर नैननि पूजा तिसु होइ ॥ वर्दें  
ज्ञाव सहित जो जिनवर, वंदनीक त्रिज्ञवनमें सो-  
इ ॥ जो जिन सुजस करैं जन ताकी, महिमा इंद्र  
करैं सुर लोइ ॥ जो जिनध्यान करंत बनारसि,  
ध्यावैं मुनी ताके गुन जोइ ॥ १७ ॥

हवे चार श्वोकें करी गुरुजक्किनुं छार कहे डे.

॥ वंशस्थवृत्तम् ॥ अवद्यमुक्ते पथि यः प्र-  
वर्तते प्रवर्तयत्यन्यजनं च निःस्पृहः ॥ स  
एव सेव्यः स्वहितैषिणा गुरुः, स्वयं तरं-  
स्तारयितुं क्षमः परम् ॥ १८ ॥

अर्थः—( स्वहितैषिणा केण ) पोताना हितना  
वांडक पुरुषे ( सएव केण ) तेहीज ( गुरुः केण )  
गुरु ( सेव्यः केण ) सेवन करवा योग्य डे. ते केवा  
गुरु सेवा योग्य डे ? तो के ( अवद्यमुक्ते केण )  
अवद्य जे पाप तेथकि मुक्ते एटले मुकायैला एटले  
सत्य एवा ( पथि केण ) मार्गने विषे ( यः केण ) जे

गुरु(प्रवर्त्तते के०) प्रवर्त्ते रे. (च के०) वद्वी (अन्यजनं  
के०) अन्य जननें शुद्धमार्गने विषे (प्रवर्त्तयति के०)  
प्रवर्त्तवे रे. वद्वी ( निःस्पृहः के० ) परिग्रहादि वां-  
गारहित डता जे गुरु ( स्वयं के० ) पोते० ( तरन्  
के० ) संसारसमुद्भ तरता डता ( परं के० ) अन्य-  
ने ( तारयितुं के० ) तारखाने ( क्रमः के० ) समर्थ  
होय रे. ये गुरु शब्दनो अर्थं शुं रे ? तो के गृ-  
णाति एटले कहे रे तत्त्वने ते गुरु कहियें. अथात्  
जे तत्त्वोपदेशक शुद्ध प्ररूपक ते गुरु जाणवा. ए  
माटे जे शुद्धप्ररूपक तथा जिनाङ्गाराधक होय ते  
गुरु सेववा योग्य रे. परंतु जमाद्यादिक कुगुरञ्ज से-  
ववा योग्य नहिं, कुगुरु केवा होय रे ? तो के उ-  
त्सूत्रना प्ररूपक, खब्बंद, पोतानी मतियें कहिपत ए-  
वा मतने करनारा तथा जिनाङ्गाना विराधक अने  
मायावी होय रे. माटे हे जन्म जीवो ! ए प्रकारें  
जाणी मनने विषे विवेक लावीने जे शुद्ध प्ररूपक  
तथा जिनाङ्गाराधक एवा गुरु होय, तेने सेववा.  
सेवन करनारनें ॥ १३ ॥

टीका:-अथ चतुर्जिवृत्तैर्गुरुन्नक्तिद्वारमाह ॥ अ-  
वध्यमुक्तेति ॥ आत्महितवांडकेन पुरुषेण स एव

गुरुः सेव्यः । कः सः ? यः अवद्यमुक्ते पापवर्जिते  
 सत्ये पथि धर्ममार्गे स्वयं प्रवर्त्तते प्रचलति । च  
 पुनः अन्यजनं अन्यतोकं शुद्धमार्गे प्रवर्त्तयति । गुं-  
 रुनिःस्पृहः परिग्रहांदिवांगारहितः सन् पुन र्यः स्वयं  
 संसार समुद्रं तरन् सन् परं अन्यं तारयितुं क्रमः  
 समर्थः ॥ यणाति कथयति तत्त्वमिति गुरुः तत्त्वोप-  
 देशकः शुद्धप्ररूपकश्त्यर्थः ॥ यतः ॥ हीणस्स वि-  
 सुद्ध परू, वगस्स नाणाहियस्स कायवं ॥ जणचित्त-  
 गगहणडं, करंति लिंगाविसेसं तु ॥ १ ॥ अन्यच्च ॥  
 दंसण जठो जठो, दंसण जठस्स नहि निवाणं ॥  
 सिंजंति चरण रहिया नसिंजंति ॥ १२ ॥ अतःका-  
 रणात् यः शुद्धप्ररूपकः जिनाङ्गाराधकः स गुरुः से-  
 व्यः नतु जमाद्या दयः कुगुरवः सेव्याः । अहाङ्ग-  
 दाः उत्सूत्रप्ररूपकाः स्वमतिकटिपतमतकर्त्तराः जि-  
 नाङ्गाविराधकाः मायाविनस्ते तु कुगुरवः ॥ एवं ज्ञा-  
 नव्यप्राणिन् ! इति झात्वा मनसि विवेकमानीय  
 शुद्धप्ररूपको जिनाङ्गा राधकोगुरुः सेव्यः ॥ सेव्य-  
 मानानां यत् पुण्य मुसद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्से-  
 त्तरमांगलिक्यमादा विस्तरंतु ॥ १३ ॥

**ज्ञाषाकाव्यः—आज्ञानक ठंद ॥ पाप पंथ परहरहि,**

धरहि शुचपंथ मग ॥ पर उपगार निमित्त, वखानहि  
मोख मग ॥ सदा अवंडित चित्त जु, तारन तरन  
जग ऐसे गुरुकों सेवत, जागहिं कर्म खग ॥ १३ ॥  
वद्वी फरीने पण गुरुसेवानुं फल कहे डे.

॥ मालिनीवृत्तम् ॥ विद्लयति कुबोधं बोध-  
यत्यागमार्थम्, सुगतिकुगतिमागगौं पुण्य-  
पापे व्यनक्ति ॥ अवगमयति कृत्याकृत्यन्ने-  
दं गुरुर्यो, नवजलनिधिपोतस्तं विना ना-  
स्ति कश्चित् ॥ १४ ॥

अर्थः—हे जन्मवजनो ! ( तं विना केण ) ते गुरु  
विना बीजो ( कश्चित् केण ) कोइ पण, ( नवजल-  
निधी केण ) संसाररूप जे समुद्र तेने विषे ( पो-  
तः केण ) नावसमान ( नास्ति केण ) नर्थी. अर्थात्  
संसारसमुद्र तरवामां नावसमान गुरु विना बीजो  
कोइ नर्थी. ते गुरु कहेवा डे ? तो के ( यः  
केण ) जे ( गुरुः केण ) गुरु, ( कुबोधं केण )  
कुत्सित बोध ते कुत्सितज्ञान जे मिथ्यात्व, तेने  
( विद्लयति केण ) विशेषं करी नाश करे डे. वद्वी  
जे गुरु ( आगमार्थ केण ) सिद्धांतोना अर्थने ( बो-

धयति केण ) जणावे रे. तथा जे गुरु ( पुण्यपापे केण ) पुण्य अने पाप ते धर्म अने अधर्म ए बोने पण ( व्यनक्ति केण ) प्रगट करे रे. एटवे आ पुण्य रे अने आ पाप रे, ए प्रकारें प्रकट करे रे. ते पुण्य अने पाप कहेवां रे ? तो के ( सुगतिकुगति-मार्गां केण ) पुण्य ते देवनरादि सुगतिमार्ग, पाप ते नरकतिर्यगरूप कुगतिमार्ग जाणवो. वदी पण जे गुरु, ( कृत्याऽकृत्य केण ) करवाने योग्य ते कृत्य अने न करवाने योग्य, ते अकृत्य, तेना ( ज्ञेदं केण ) विवेक एटवे विचार तेने ( अवगमयति केण ) जणावे रे. जेम प्रदेशी राजा माहानास्तिकमति हतो, तेने केशीगणधर गुरुयें प्रतिबोध करीने तत्त्वमार्ग विषे स्थापन कस्यो. माटें हे जब्यप्राणीयो ! ए प्रकारें जाणीने मनमां विवेक लावीने संसारसमुद्भ तरवाने माटें नावसमान एवा श्रीगुरुनी सेवा करवा योग्य रे, अने गुरुनी सेवा करनार सुजनोने जे पुण्य । इत्यादि सर्वं पूर्ववत् जाणवुं ॥ १४ ॥

टीका:- अथ पुनरपि गुरुसेवायाः फलमाह ॥  
विद्वयतीति ॥ ज्ञो जब्याः ! तं गुरुं विनाऽन्यः क-  
श्चित् ज्ञवज्वलनिधिपोतः प्रवहणं नास्ति । ज्ञव एव

संसार एव जबनिधिः समुद्रस्तत्र पोतः प्रवहणं सं-  
 सारसमुद्रतारणे प्रवहणसमानं गुरुं विनाऽन्यः क-  
 श्चिन्नास्ति । योगुरुः कुबोधं कुत्सितज्ञानं मिथ्यात्वं  
 विद्बयति । पुनर्यो गुरुः आगमार्थं सिद्धांतानां अ-  
 र्थं बोधयति ज्ञापयति । पुनर्यो गुरुः पुण्यं पापे पु-  
 ण्यं च पापं च पुण्यपापे ते धर्माधर्मौ द्वे अपि  
 व्यनक्ति प्रकटयति । इदं पुण्यमिदं पापमिति । कथ-  
 चूते पुण्यपापे सुगतिकुगतिमार्गौ सुगतिश्च सुगति-  
 कुगती तयोमार्गौ पुण्यं देवनरादि सुगतिमार्गः पापं  
 नरकतिर्यग्रूपं कुगतिमार्गः । पुनर्यो गुरुः कृत्याऽकृत्य-  
 न्नेदं अवगमयति कर्तुं योग्यं कृत्यं कर्तुमयोग्यं अ-  
 कृत्यं । कृत्यं च अकृत्यं च कृत्याकृत्ये तयोर्नेदो  
 विवेको विचारस्तं ज्ञापयति ॥ यथा प्रदेशी नृपः  
 महा नास्तिकमतिः केशिगणधरगुरुणा प्रतिबोध्य  
 तत्त्वमार्गं स्थापितः ॥ चो जन्यप्राणिन् ! इति ज्ञा-  
 त्वा मनसि विवेक मानीय संसारसमुद्रतारणाय  
 प्रवहणसमानं श्रीगुरोः सेवा कार्या । गुरोः सेवां कु-  
 र्बतां च सतां यत्पुण्यमुत्पुद्यते तत् पुण्यप्रसादात् उ-  
 त्तरोत्तरमांगलिक्यमादाविस्तरंतु ॥ १४ ॥

जाषाकाव्यः—हरिगीतठंड ॥ मिथ्यात दबनसि-

( ए४ )

झांत साधक, मुगति मारग जान ण ॥ करनी अकरनी  
सुगति डुर्गति, पुन्न पाप बखान ए ॥ संसारसागर  
तरन तारन, गुन जिहाज विसेखियें ॥ जगमांहि  
गुरु सम कहि बनारसि, और कोउ न बेखियें ॥१४॥

कथा:-कशीगुरु, कुबोधना विदलन करनार रे,  
तेनी उपर सूर्याज्ञदेवनी कथा कहे रे:-एकदा श्री-  
महावीर देव अमलकप्पा नगरीयें समोसस्या तिहाँ  
सूर्याज्ञ विमानथकी सूर्याज्ञदेवता वांदवा आव्या. प्र-  
चुआगल बत्रीशबद्ध नाटक करी स्वस्थानके गया. परी  
गौतमस्वामीयें जगवाननें पूँछ्युं के महाराज ! एवडी  
झट्कि एणें केम पामी ? तेवारें जगवान् कहेता हवा  
के श्रेतंविका नगरीमां प्रदेशी राजा, तेनी सूरिकां-  
ता जार्या तेनो चित्रनामें सारथी हतो, ते एकदा  
सावडी नगरीयें गयो. तिहाँ केशी कुमारने देखी  
वांद्या अने धर्मकथा सांजली. आवकधर्म पडिव-  
ज्यो. परी ते चित्रसारथीयें पोताना राजाने प्रति-  
बोध आपवा माटे श्रेतंबीयें पधारवा बिनति करी  
त्यारे गुरुयें कहुं के अन्नोदक संबंधें जणाशे. परी  
केटखेक दिवसें गुरु श्रेतंबीयें आव्या, तेनी चित्र-  
सारथीने खबर पडी. तेवारें गुरुने वांदना गया,

उतारो आपी सारथीयें कहुं के हेस्वामी ! राजा नास्तिक थे, तेने प्रतिबोधजो. हुं पण कोइ उपाय करी तेने इहां लावीश. अन्यदा घोडा फेरवाने मिशें राजाने चित्रसारथी तिहां तेडी लाव्यो. तिहां गुरुने दूकडाज व्याख्यान करता देखीने चित्रसारथी प्रत्यें राजा कहेवा लाग्यो के, जो खलु मुंक पद्मुवासंति ? अणायरिया खलु जोअणायरियं पञ्जुवासंति ? तेवारें सारथीयें कहुं के हे स्वामी ! चालो आपणे जइ पूठीयें. राजा पण तिहां गुरुपासे जइ पूठवा लाग्यो, हे मूँक ! शरीरमांहे आत्मा तो नथी तो धर्म करेलो कोण जोगवे ? गुरु कहे तमारा कहेवा प्रमाणे प्रत्यक्ष देखाय ते प्रमाण अने जे प्रत्यक्ष न देखाय, ते अप्रमाण. तो तमारां माता पिता पण देखातां नथी माटें अप्रमाण थयां ? राजा बोद्योजो धर्म अधर्मादिक-थे, तो महारो पिता अनेक जीवोनो संहार करनार हतो माटे नरके गयो हशे ? अने महारी माता धर्मिष्ठ हती माटें स्वर्गे गइ हशे ? तो हे जिक्काचर ! हुं तो तेनो अत्यंत वल्लभ पुत्र रुद्रो ते मने आवीने धर्मनो प्रतिबोध आपे तो परबोक

पण ढे तथा पुण्य पाप पण ढे, इत्यादि सर्व वात हुं  
 सत्य करी मानुं ! तेवारें आचार्य बोद्ध्या के हे रा-  
 जन् ! बंधीवाननी पेरें तहारो पिता कर्मपाशें करी  
 बंधाएं ढे ते शी रीतें आहीं तहारी पासें आवी  
 शके ? राजा बोद्ध्यो तो महारी माताजीने स्वर्गथी  
 आवतां शी हरकत नडे ढे ? सूरि बोद्ध्या के ते तो  
 संपूर्ण वांछित सुख जोगवे ढे, तेथी नही आवे. त-  
 था वाली मनुष्यलोकनो डुर्गंध उंचो उठले ढे, ते  
 तेनाशी सहन थाय नही. त्यारें राजा बोद्ध्यो के में  
 एक चोरने पकडी पश्चानी कोटीमांहे नाखी ढार  
 हांकी दीधुं, पढी केटलेक दिवसें खोली जोयुं तो  
 चोरनुं शरीर तिळतिळनी पेरे दीतुं, परंतु मांहे  
 जीव तोदीछो नही ? माटें जीव नशी, तथा एक चो-  
 रने तोदीने पढी फांसी आपी मारी नाखी फरी तोद्ध्यो  
 तो कांश पण वध्यो घट्यो नहीं ? माटे शरीरमांहे  
 जीव नशी, तेवारें सूरि बोद्ध्या के निःरिङ्क कोटी-  
 मांहे पेसी कोश्क शंख वजावे, ते शंखनो शब्द बा-  
 हिर केम संज्ञाय ढे, तेम जीवनो पण एज स्व-  
 ज्ञाव जाणवो . तथा अरणीना लाकडामांहे फाडी  
 जोतां थकां अग्नि देखातो नशी पण उपायने योगे

अग्नि पामीयें बैयें. इत्यादि अनेक दृष्टांत आपी रा-  
जाने प्रतिबोध्यो. राजा श्रावक थयो, समक्त्वमूल  
बार व्रतनो उच्चार कस्यो, यावत् एनी स्त्री सूरिकां-  
तायें निःस्वार्थ जाणी विष दीधुं. राजा अनशन  
द्वेष सूरियान्नविमानने विषे सूरियान्ननामें देव थयो.  
तिहांथी च्यवी महाविदेहें अवतरी मोहन सुख पा-  
मशे ॥ इति प्रदेशी राजानो दृष्टांत ॥ १४ ॥

वद्वी पण गुरुसेवानुं फल कहे ढे.

॥ शिखरिणीदृतम् ॥ पिता माता भ्राता प्रि-  
यसहचरी सूनुनिवहः, सुहृत्स्वामी माद्यत्क-  
रिज्ञिटरथाश्वः परिकरः ॥ निमज्जांतं जंतुं नर-  
ककुहरे रक्षितुमखम्, गुरोर्धर्माऽधर्मप्रकट-  
नपरात्कोऽपि न परः ॥ १५ ॥

अर्थः—(नरककुहरे केऽ) नरकविवरनी मध्यें (नि-  
मज्जांतं केऽ) छूबता एटखे पडता एवा ( जंतुं केऽ )  
जीवने ( गुरोः केऽ ) गुरुथकी ( परः केऽ ) बीजो  
( कोपि केऽ ) कोइ पण ( रक्षितुं केऽ ) रक्षण क-  
रवाने ( न केऽ ) नहि ( अद्वं केऽ ) समर्थ होय.  
केम के ? ( पिता केऽ ) पिता तेपण तेनुं रक्षण कर-

वाने न समर्थ होय डे, तथा ( माता के० ) जननी ते पण तेनुं रक्षण करवाने न समर्थ होय. तथा ( ब्राता के० ) सहोदर ते पण तेनुं रक्षण करवाने न समर्थ होय. तथा ( प्रियसहचरी के० ) अत्यंत व्याज एवी स्त्री पण तेनुं रक्षण करवाने न समर्थ होय डे. तथा ( सूनुनिवहः के० ) पुत्रसमूह पण तेनुं रक्षण करवाने न समर्थ होय डे. तथा ( सुहृत् के० ) मित्र पण तेनुं रक्षण करवाने न समर्थ होय डे. तथा ( स्वामी के० ) नायक पण तेनुं रक्षण करवाने न समर्थ होय डे. ते नायक केहवो डे? तो के ( मायत् के० ) मदोन्मत्त एवा ( करि के० ) हस्ती, ( जट के० ) मुज्जट ( रथ के० ) रथ तथा ( अश्वः के० ) घोडाडे डे जेमने एवो डे अर्थात् एवी सर्व सामग्री सहित एटखे बबवान् एवो स्वामी पण रक्षण करवाने समर्थ थाय नहि. तथा ( परिकरः के० ) महोटो सेवकादिवर्ग, ते पण रक्षण करवाने समर्थ न होय डे अर्थात् नरकमां पडता जीवोने ए पूर्वोक्त सर्व, रक्षण करवाने समर्थ न होय डे, पण मात्र एक युरु जे डे, तेज नरकमां पडता जंतुने रक्षण करवाने समर्थ थाय डे. युरु विना कोइ पण नरकमां

पडतां जीवने रक्षण करवाने समर्थ नथी. ते गुरु  
कहेवा ढे ? तो के ( धर्माधर्म कें ) पुण्य अने पाप,  
तेनुं ( प्रकटन कें ) प्रकाशन तेने विषे ( परात्  
कें ) तत्पर एवा ढे. वल्ली गुरु जे ढे, ते धर्म  
अधर्म ए बेने बतावे ढे. ते जेम केः—जे प्राणी ध-  
र्मने अंगीकार करे ढे, ते नरकने विषे पडता नथी,  
अर्थात् सुगतिने नजनारा थाय ढे. अने जे अध-  
र्मने अंगीकार करे ढे. ते प्राणी नरकमां पडे ढे,  
अर्थात् कुगतिने नजनारा थाय ढे. माटे हे जन्म-  
जनो ! एम जाणीने मनने विषे विवेक छावीने न-  
रकपातयकी रक्षण करवाने समर्थ गुरु ढे, ते सेव-  
वा योग्य ढे, बाकी सर्व पूर्ववत् जाणबुं ॥ १५ ॥

टीकाः—पुनः गुरुसेवायाः फलमाह ॥ पितामाते-  
ति ॥ नरककुहरे नरकविवरमध्ये निमङ्गांतं ब्रूडंतं  
पतंतं संतं जंतुं जीवं गुरोः परोऽन्यः कोपि रक्षितुं  
अखं न । कोपि न समर्थः । कथं ? पिता जनको  
रक्षितुं नाखं । माता जननी रक्षितुं नाखं । ब्राता  
सहोदरो रक्षितुं नाखं । प्रिया अत्यंतवद्वज्ञा सहच-  
री स्त्री रक्षितुं नाखं । सूनुनिवहः पुत्रगणोऽपि र-  
क्षितुं नाखं । सुहृत् मित्रमपि रक्षितुं नाखं न स-

मर्थः । स्वामी नायकोऽपि रक्षितुं नालं । किंचूतः  
 स्वामी ? मायत्करिज्ञटरथाऽश्वः । मायंतो मदोन्म-  
 ता करिणो गजाः जटा सुजटाः रथः अश्वाश्च यस्य  
 स एवं विधो बलवान् यः स्वामी स रक्षितुं नालं ।  
 पुनः परिकरः प्रचूतसेवकादिवर्गोऽपि नरके पतंतं  
 संतं रक्षितुं अलं समर्थो न । किंतु एको गुरुरेव  
 नरके पतंतं जीवं रक्षितुं समर्थः । गुरोः परः कोऽ-  
 पि नरके पतंतं जीवं रक्षितुं न समर्थः । किंविशि-  
 ष्टात् गुरोः । धर्मधर्मप्रकटनपरात् । धर्मश्च अ-  
 धर्मश्च धर्मधर्मौ पुण्यपापे तयोः प्रकटने प्रका-  
 शने परस्तत्परो यः सः तस्मात् । गुरुर्धर्माऽधर्मौ द्वा-  
 वपि दर्शयति । ततश्च यः प्राण । धर्ममंगीकरोति-  
 स नरके न पतति । किंतु ? सुगतिज्ञानवति ॥ य-  
 तः ॥ नरय गय गमण पडिह, डए कए तह पए-  
 सिणा रन्ना ॥ अमरविमाणं पत्तं, तं आयरिय प्प-  
 ज्ञावेण ॥ ३ ॥ ज्ञो ज्ञव्य प्राणिन् ! एवं ज्ञात्वा मनसि  
 विवेकमानीय नरकपतनात् रक्षणीयः समर्थो गुरुरेव  
 सेव्यः ॥ सेव्यमानानां च यत्पुण्यमुत्पद्यते तत् पुण्य-  
 प्रसादात् उत्तरोत्तरमांगलिक्यमालाविस्तरंतु ॥१५॥  
 जाषाकाव्यः—सवैय्या त्रेवीशा ॥ मात पिता सुत

बंधु सबी जन, मीत हितू सुख कामिनी फीके ॥  
 सेवकराजि मतंगज वाजि, महा दल साजि रथी  
 रथ नीके ॥ डुर्गति जाइ डुःखी विलबाइ, पैरे सिर  
 आइ अकेलहि जीके ॥ पंथ कुपंथ गुरु समुजावत,  
 और सगे सब स्वारथहीके ॥ ३५ ॥

हवे गुरुनी आङ्गानुं माहात्म्य कहे भे.

॥ शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ किं ध्यानेन न-  
 वत्ववशेषविषयत्यागैस्तपोन्निः कृतम्, पूर्णं  
 ज्ञावनयाऽलमिन्द्रियदमैः पर्याप्तमाप्तागमैः ॥  
 किं त्वेकं नवनाशनं कुरु गुरुप्रीत्या गुरोः शा-  
 सनम्, सर्वे येनविना विनाथबद्धवत् स्वार्थाय  
 नाऽखं गुणाः ॥ १६ ॥ इति द्वितीय गुरु-  
 सेवनप्रक्रमः ॥ ५ ॥

अर्थः—हे जन्मप्राणी ! गुरुनी आङ्गा विना (ध्या-  
 नेन केण) ध्यान करवायी (किं केण) शुं ? तो के  
 काहिं नहिं. तथा (अशेषविषय केण) समस्त वि-  
 षयो, तेना (त्यागैः केण) त्यागें करीने (नवतु  
 केण) हो एटले संपूर्ण शुं, अर्थात् समस्त विष-

यत्यागें करीने पण काहिं नहिं. वक्ती गुरुनी आङ्गा विना ( तपोज्ञि के० ) तप जे पष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादशादि, पक्षक्षपण, मासक्षपण, सिंहनिक्रीडितादिक तप तेणे करीने पण शुं ( कृतं के० ) कस्तु? एटद्वे पूर्ण थयुं, अर्थात् तेणे करीने पण कांहि नहिं. तथा ( ज्ञावनया के० ) शुञ्जन्नावें करीने पण ( पूर्ण के० ) पूर्ण थयुं, अर्थात् तेणे करीने पण कांहिं नहिं. वक्ती ( इंड्रियदमैः के० ) इंड्रियोना दमनें करीने पण ( अक्षं के० ) परिपूर्ण, अर्थात् तेणे करीने पण काहिं नहिं वक्ती ( आसागमैः के० ) सूत्रसिद्धांतना पठनें करीने पण ( पर्यातं के० ) पूर्ण थयुं. अर्थात् तेणे करीने पण काहिं नहिं. त्यारें ( तु के० ) वक्ती ( किं के० ) शुं करबुं ? के जे अक्षी की ते पूर्वोक्त सर्व सफल थाय ? तो के ( गुरुप्रीत्या के० ) अत्यंत प्रीतियें करीने ( एकं के० ) एक, ( गुरोः के० ) गुरुनुं ( शासनं के० ) शासन जे शीखामणवचन तेने ( कुरु के० ) हे ज्ञव्यजीव ! तुं कर, अर्थात् गुरुनीज शुद्ध आङ्गाने पालन कर. ते गुरुनुं शासन कहेबुं डे ? तो के ( ज्ञवनाशनं के० ) संसारभ्रमणने नाश करनारुं डे. कारण के ( येन के० )

जे ( एकेन केऽ ) एक गुरुशासन ( विना केऽ )  
 विना ( सर्वे केऽ ) सर्वे ( गुणाः केऽ ) पूर्वोक्त ध्या-  
 नादिक गुणो पण ( स्वार्थाय केऽ ) पोतपोताना  
 फल साधनने माटें ( अबं न केऽ ) समर्थ यता  
 न थी. अर्थात् सर्वे निष्फल थाय ढे. केनी परें ? तो  
 के ( विनाथबलवत् केऽ ) सैन्याधिपति रहित सै-  
 न्यनी परें. अर्थात् जेम निर्णयिक सैन्य, जयसाधक  
 थतुं न थी, तेम गुरुनी आङ्गा विना क्रियानुष्ठाना-  
 दिक सर्वे, निष्फल थाय ढे. गोशालक, जमालि कु-  
 लबालक निहवादिकनी परें. आहीं गोशालकादि-  
 कनो दृष्टांत बेवो. माटें एवी रीतें जाणीने गुरुनी  
 आङ्गा सहित सर्वे कर्म, करवा योग्य ढे. तेथी हे  
 ज्ञव्यप्राणी ! ए प्रकारें जाणी मनमां विवेक लावीने  
 श्रीगुरुसेवा करवी. गुरुसेवा करनार एवा सुजनने  
 जे पुण्य । इत्यादि पूर्ववत् जाणुं ॥ १६ ॥ ए गुरु-  
 सेवा नामा बीजुं द्वार संपूर्ण थयुं ॥ २ ॥

टीका:- अथगुरोराङ्गायाः माहात्म्यमाह ॥ किं-  
 ध्यानेनेति ॥ ज्ञो ज्ञव्याः ! गुरोः आङ्गां विना चेत्  
 ध्यानं कृतं ? तर्हि तेन ध्यानेन किं । अपितु न कि-  
 मपि फलं । पुनः अशेषविषयत्यागैर्नवतु पूर्णं जातं ।

समस्तविषयाणां त्यागेपि किमपि न फलं । पुनः गु-  
 रोराङ्गां विना तपोन्निः कृतं । षष्ठाष्टमदशमद्वादशा-  
 दि पक्षक्षपण मासक्षपण सिंहनिक्रीडितादिनिस्त-  
 पोन्निः कृतं संपूर्णं जातं ॥ अर्थान्नि किमपि । पुन-  
 न्नाविनया शुन्नन्नावेनापि पूर्णं जातं । पुनः इंद्रियदमैः  
 पञ्चेंद्रियाणां दमनैः कृत्वा अलं पूर्णं जातं । पुनः  
 आस्तागमैः सूत्रसिद्धांतपठनैरपि पर्यातं पूर्णं जातं ।  
 तर्हि किं ? किंतु गुरुप्रीत्या गरिष्ठवात्सद्व्येन अधि-  
 कादरेण एकं गुरोः शासनं कुरु । गुरोरेवाङ्गां शुद्धां  
 पालय । किंचूतं गुरोः शासनं ? नवनाशनं । संसा-  
 रपरित्र्यमणवारकं । यतो येनैकेन गुरोः शासनेन  
 आङ्गया विना सर्वेऽपि गुणाः पूर्वोक्ता ध्यानादयः  
 खार्थाय स्वस्वफलसाधनाय अलं न । समर्था न ।  
 किंतु निःफला इत्यर्थः ॥ किंवत् ? विनाथबलवत् ।  
 निर्नायकसैन्यवत् यथा निर्नायकं सैन्यं जयसाधकं  
 न तथा गुरोराङ्गां विना क्रियानुष्ठानादिकं सर्वं निः-  
 फलं । गोशालकजमालिकुलबालकनिहवादिवत् ॥  
 एवं ज्ञात्वा गुर्वाङ्गासहितं सर्वं कर्तव्यं ॥ यदुक्तं  
 श्रीकृष्णसूत्रे ॥ असणवा आहारेत्तए ॥ उच्चार पा-  
 सवणं वा परिच्छेत्तए ॥ सज्जायं वा करित्तए ॥

धर्मजागरिणं वा जागरित्तेषु ॥ एतो सेकपपश्च अणापुद्धिता ॥ निरुक्तु इठेद्वा अन्नायरं तवो कम्मं उवसंपजित्ताणं विहरित्तेषु ॥ तं चेव सबं ॥ नणियवं चो नव्यप्राणिन् ! एवं झात्वा मनसि विवेकमानीय श्रीगुरुसेवा कर्त्तव्या ॥ कुर्वतां च सतां यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरमांगलिक्यमाला विस्तरंतु ॥ इति ॥ १६ ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्तिना ॥ सूरिणा विहितायां तु, गुरुसेवन, प्रक्रमः ॥ २ ॥ इति गुरुसेवनप्रक्रमः ॥ २ ॥

नाषाकाव्यः—वस्तुष्टुंद ॥ ध्यान धारन ध्यान धारन, विषै सुख त्याग ॥ करुना रस आदरन, चूमिशयन इंद्रिय निरोधन ॥ व्रत संयम दान तप जगति जाव सिद्धंत सोधन ॥ ए सब काम न आवही, ज्यें बिनु नायक सैन ॥ सिवसुख हेत बनारसी, करु प्रतीत गुरु बैन ॥ १६ ॥

कथा:-इहां गुरु सेवानो करनार मोहें जाय. तेनी उपर श्रीगौतमस्वामीनी कथा कहे रेः—एकदा प्रस्तावें श्रीर्वद्वामान स्वामीयें व्याख्यान करतां करतां उपदेश दीधो, जे अष्टापदपर्वत उपर जरतचक्रवर्तीनी करावेद्वी मानोपेत चोवीश तीर्थकरनी

प्रतिमार्ज रे, तेने जे पोतानी लब्धिना बखें जइ वांदे, ते ग्राणी तङ्गवें मोहें जाय. ते सांनखी श्री-गौतम स्वामी पोतानें मोह जावानो निर्णय करवा माटें प्रजुनी आङ्गा मागी अष्टापद नणी चाल्या. तेमने कौडिन्यादिक तापसोयें आवता दीरा, तेवारें तापसो, मांहोमांहे कहेवा लाग्या के आ महोटा मुनीश्वर आवे रे, पण योजन प्रमाण पावडी शी रीतें चढी सकशे ? अमें महा तपस्याना करनार पांचशें एक जण ते एक उपवास करी सूके पत्रे पारणुं करी एक पावडी चढ्या. पण आगल जइ शकता नथी. एवो विचार करे रे, एवामां गौतम स्वामी चढ्या. यावत् दर्शन करी पाठा फस्या, तेवारें श्रीगौतमस्वामी पासेंथी सर्व पन्नरशें ने त्रण तापसोयें दीक्षा लीधी, शासनदेवीयें साधुनो वेश आणी आप्यो, परी मार्गे आवतां सर्वने पूब्युं के तमारे आजे शेनुं पारणुं करवुं रे ? तेवारें तापस वोद्या के खीर खांस घृतनुं पारणुं करीयें तो सारुं. पठी गौतमस्वामी पात्रुं नरी वहोरी लाव्या. अ-क्षीणमहानिशि लब्धिने बखें करी सर्व तापसोने पारणुं कराव्युं. एवो चमत्कार देखी पोताना मन-

मांहे गुरुतत्वनी ज्ञावना ज्ञावतां ज्ञावतां पांचशेने  
एक तापसोने केवलज्ञान उपनुं अने पांचशे ने एक-  
ने समोसरण देखतां केवलज्ञान उपनुं. तथा पांच-  
शे ने एकने श्रीवीरनी वाणी सांज्ञयतां केवलज्ञान  
उपनुं. ते सर्व १५०३ तापस केवली थया थका  
श्रीवीरने वांदीने केवलीनी सज्ञामां बेठा, ते जोइ  
श्रीगौतमस्वामीने शंका उपनी जे आजना दीहि-  
तने केवलज्ञान उपनुं हशे ? जगवान् बोख्या के  
केवल ज्ञान उपनुं ढे, अने हुं निर्वाण पामीश ते-  
वारें तुजने केवलज्ञान उपजशे. ते सांज्ञयी श्रीगौ-  
तम स्वामी संतोष पाम्या. अनुक्रमें केवल ज्ञान  
पामी मोक्ष सुख पाम्या. अने तापस पण मोक्ष  
सुख पाम्या. एतुं गुरु सेवानुं फल जाणी हे जठय-  
लोको ! तमें धर्मना दायक एवा गुरुनी सेवा करो,  
के जे थकी संसार तरो ॥ १६ ॥ इति गुरुसेवाधि-  
कारे श्रीगौतमस्वामी कथा समाप्ता ॥

हवे चार श्लोकोयें करीने जिनमत जेजिनोक्त  
सिद्धांत, तेनुं माहात्म्य कहे ढे.

॥ शिखरिणीवृतम् ॥ न देवं नादेवं न शुन्न-

गुरुमेवं न कुगुरुम्, न धर्मं नाधर्मं न  
 गुणपरिणामं न विगुणम् ॥ न कृत्यं नाऽ-  
 कृत्यं न हितमहितं नाऽपि निपुणम्, वि-  
 लोकंते लोका|जिनवचनचक्रविरहिताः ॥१४॥

अर्थः—(जिनवचन कें) जिनशास्त्र रूप (चक्रुः  
 कें) चक्रु जे नेत्र तेणे करी (विरहिताः कें)  
 रहित एवा (लोकाः कें) लोको जे डे, ते हवे  
 कहेवाशे ते एवी वस्तुने (नविलोकंते कें) न  
 देखे डे, अर्थात् नहिं जाणे डे. शुं शुं नथी जाण-  
 ता ? तो के (देवं कें) सर्वज्ञ, जितरागादि लक्ष-  
 णोयें युक्त जे सुदेव, तेने न जाणे डे. वक्ती ते  
 (अदेवं कें) कुदेव एटबे स्त्री, शस्त्र, अहा, सू-  
 त्रादि लक्षणोपेत जे कुदेव तेने पण (न कें) न  
 जाणे डे. वक्ती ते (एवं कें) ए प्रकारे (शुञ्जगुरुं  
 कें) सुगुरु जे डे तेने एटबे शुद्धमार्गप्ररूपक एवा  
 सुगुरुने (न कें) न जाणे डे. वक्ती (कुगुरुं कें)  
 पंचाचाररहित एटबे उत्सूत्रप्ररूपक एवा कुगुरुने  
 (न कें) न जाणे डे. तथा (धर्मं कें) धर्मने  
 (न कें) नहिं जाणे डे, तथा (अधर्मं कें)

अधर्मने न जाए डे. अर्थात् धर्माधर्मना अंतरने ते  
 पुरुष जाणता नथी. वबी ( गुणपरिणम्भ कें ) गुणें  
 करीने परिपूर्ण अर्थात् गुणवानने ( न कें ) न जाए  
 डे, तथा ( विगुणं कें ) गुणरहित एटबे निर्गुण तेने  
 ( न कें ) नहिं जाए डे. अर्थात् गुणवान् अने निर्गुण  
 जनने समानज देखे डे. वबी ( कृत्यं कें ) करवा  
 योग्य कार्य तेने ( न कें ) न जाए डे. तथा ( अ-  
 कृत्यं कें ) जे करवाने अयोग्य कार्य तेने ( न कें )  
 न जाए डे. अर्थात् कृत्याकृत्यविवेकने जाए नहिं.  
 वबी ( निपुणं कें ) चातुर्थ जेम रुडे प्रकारें होय  
 तेमज ( हितं कें ) पोतानुं हित जे सुख तेनुं का-  
 रण, तेने ( न कें ) नहिं जाए डे. तथा ( अहि-  
 तमपि कें ) अशुन्ननुं जे कारण तेने पण ( न कें )  
 नहिं जाए डे. अर्थात् ते खोको जिनवचन श्रवण  
 विना शुन्नाशुन्नना अंतरने जाणता नथी. इहांवि-  
 लोकंते ए क्रियापद सर्वं नकारनी साथें लगाडबुं.  
 माटें हे नव्यजीव ! ए प्रकारें जाणीने श्रीजिन-  
 प्रणीत सिद्धांतोनुं श्रवण करबुं. जिनवचन श्रवण कर-  
 ता एवा सुजनने जे पुण्य। इत्यादि पूर्ववत् जाणबुं ॥५७॥

**टीका:-** अथ चतुर्भिर्वृत्तैर्जिनमतस्य जिनोक्तसि-

इत्यात्म्य च माहात्म्यमाह ॥ न देवमिति ॥ लोकाः  
 जिनवचनमेव चक्षुर्नेत्रं तेन रहिताः संतः एतानि  
 वस्तूनि न विलोक्यते । न पश्यन्ति । न जानन्तीत्यर्थः ॥  
 किं किं न विलोक्यते । ते देवं सर्वज्ञो जितरागादि-  
 रित्यादिलक्षणोपेतं न विलोक्यते । पुनः श्रद्धेवं कु-  
 देवं ये स्त्री शस्त्राक्षसूत्रादतिलक्षणोपेतं कुदेवं न  
 विलोक्यते । पुनः शुञ्जयुरुं सुयुरुं शुर्ङ्गं प्ररूपकं युरुं न  
 जानन्ति । पुनः कुयुरुं पंचाचाररहितं उत्सूत्रप्ररूपकं  
 न जानन्ति । पुनः धर्मं अधर्मं च न जानन्ति । ध-  
 माधर्मयोरंतरं न विदंतीत्यर्थः ॥ पुनः गुणपरिणम्बं  
 गुणैः परिपूर्णं गुणवंतं न जानन्ति ॥ पुनर्विगुणं गुण-  
 रहितं निर्गुणं च न जानन्ति । गुणवंतं निर्गुणं च  
 सदृशमेव पश्यन्ति । पुनः कृत्यं करणीयं कर्तुं योग्यं  
 वस्तु न जानन्ति । पुनः अकृत्यं कर्तुमनुचितं अ-  
 योग्यं च न जानन्ति । कृत्याऽकृत्य विवेकं न जान-  
 तीत्यर्थः ॥ पुनर्विगुणं सचातुर्यं च सम्यग् यथा-  
 स्यात्तथा आत्मनोहितं सुखकारणमपि न जानन्ति ।  
 पुनः अहितं च अशुञ्जकारणं च न जानन्ति । जि-  
 नवचनश्रवणं विना शुञ्जाऽशुञ्जयोरंतरं न जानन्ति ॥

यतः ॥ सुच्चा जाणश कह्वाणं, सुच्चा जाणश पावगं ॥  
उन्नयंपि जाणश सुच्चा, जं सेयं तं समायरे ॥ १ ॥ जो  
जन्म्यप्राणिन् ! एवं इत्यात्वा श्रीजिनप्रणीतसिद्धांतानां  
श्रवणं कर्त्तव्यं । कुर्वतां च सतां यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पु-  
ण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरमांगलिक्यमाला विस्तरंतु ॥ २७ ॥

जाषाकाव्यः—कुंकुलियाठंद ॥ देव अदेवहि नहीं  
खखैं, सुगुरु कुगुरु नहिं सूज ॥ धर्म अधर्म गिनैं  
नहीं, कर्म अकर्म न बूज ॥ कर्म अकर्म न बूज  
गूज, गुन अगुन न जानहि ॥ हित अनहित न  
सदहै, निपुन मूरख नहि मानहि ॥ कहत बनार-  
सि इन, दृष्टि नहि अंध अवेवहि ॥ जैन बचन  
दृग हीन, खखैं नहि देव अदेवहि ॥ २७ ॥

॥ शार्दूलविक्रीमितवृत्ताष्टकम् ॥ मानुष्यं  
विफलं वदंति हृदयं व्यर्थं वृथा श्रोत्रयो,  
निर्माणं गुणदोषनेदकल्पनां तेषामसंज्ञा-  
विनीम् ॥ छर्वारं नरकांधकूपपतनं मुक्तिं  
बुधा उर्ध्वज्ञाम्, सार्वज्ञ समयोदयारसमयो  
येषांन कर्णातिथिः ॥ २८ ॥

अर्थः—( सार्वज्ञः केष ) सर्वज्ञदेवप्रणीत अर्थात्

श्रीवीतरागदेवे कहेको एवो ( समयः के० ) आगम, ( येषां के० ) जे पुरुषोने ( कर्णातिथिः के० ) कर्ण-गोचर ( न के० ) नथी आतो, अर्थात् जेणे जिनागम श्रवण कर्यो नथी, हवे ते कहेवो जिनागम ढे ? तो के ( दयारसमयः के० ) कृपा जे तेज ढे रस जेमां एवो ढे. हवे ते जिनागमश्रवण न करनारा जे पुरुषो ( तेषां के० ) ते पुरुषोनुं ( मानुष्यं के० ) मनुष्यजन्म जे ढे तेने ( बुधाः के० ) जे पंक्तिं तो ढे, ते ( विफलं के० ) निःफल ( वदंति के० ) कहे ढे. अर्थात् पंक्तिं ते पुरुषोने मनुष्यजन्म प्राप्त थयुं, तो पण न थया जेबुं कहे ढे. तथा ते पुरुषोनुं ( हृदयं के० ) चित्त तेने ( व्यर्थं के० ) निरर्थक अर्थात् शून्य कहे ढे. वली ते पुरुषोने ( श्रोत्रयोः के० ) बेहु काननुं ( निर्माणं के० ) निर्माण जे करबुं तेने ( वृथा के० ) निःफल कहे ढे. तथा तेमने ( गुण के० ) गुणो तथा ( दोष के० ) दोषो तेनो जे ( भ्रेद के० ) भ्रेद तेनी ( कलनां के० ) विचारणा जे ढे तेने ( असंज्ञाविनीं के० ) दुर्लभ एवी कहे ढे, तथा ते पुरुषोनुं ( नरकांधकूप के० ) नरक तेज अंधकूप एटक्के घांस थने वेखाउये आडादित

कूप तेने विषे ( पतनं केण ) पड़बुं, ते ( डुर्वारं केण ) वारवाने अशक्य कहे ठे. अनेते पुरुषोने ( मुक्ति केण ) मुक्ति ते ( डुर्बज्जां केण ) डुर्बज्ज कहे ठे. अर्थात् जिनागम श्रवण विना जीवो मोक्षने पामता नथी. ए कारण माटें सर्वजनोये जिनागमनुं श्रवण करबुं. कदाचित् ज्ञाव न होय तोपण जिनागमश्रवण हितने माटें आय ठे. आ श्लोकमां वदंति ए क्रियापद सर्वे पदोने जोडबुं. ए प्रकारे जाणीने जिनवचन श्रवण करबुं. करनार एवा जे सुजनो तेमने जे पुण्य । इत्यादिक पूर्ववत् जाणबुं ॥ २७ ॥

टीका:-मानुष्यमिति । ज्ञो ज्ञव्यप्राणिन् ! सर्वज्ञः सर्वज्ञप्रणीतः श्रीवीतरागदेवेन ज्ञाषितः समय आगमो येषां पुरुषाणां कर्णातिथिः कर्णगोचरो न जातो यैर्न श्रुतः । किंविशिष्टः समयः दयारसमयः कृपा एव रसः स्वरूपं यस्य । बुधाः पंमितास्तेषां मनुष्याणां मनुष्यं मनुष्यजन्म विफलं निःफलं वदंति । लब्ध मप्यलब्धं कथयन्ति । तेषां हृदयं चित्तं व्यर्थं निरर्थकं शून्यं वदंति । पुनस्तेषां श्रोत्रयोः कर्णयोर्निर्माणं करणं वृथा निःफलं वदंति । पुनस्तेषां गुणानां दोषाणां च योज्जेदोः अंतरं तस्य कलनां विचारणां

असंज्ञाविनीं अर्थात् उद्द्वेजां वर्दति । पुनः नरकमेव  
 अंधकूपस्तृणवद्वीवितानाङ्गादितः कूपस्तत्र पतनं उ-  
 द्वेरं वारयितुमशक्यं कथयन्ति । पुनस्तेषां मुक्तिं उ-  
 द्वेजां कथयन्ति । जिनागमश्रवणं विना मुक्तिं मोक्षं  
 न प्राप्नुवन्ति । अतः श्रीजिनागमश्रवणमेव कर्त्तव्यं ।  
 जावं विनाऽपि श्रुतं हिताय ज्ञवति ॥यथा॥ देषेऽपि  
 बोधकवचः श्रवणं विधाय, स्याङ्गौहिणेय इव जंतुरु-  
 दारखाज्ञः ॥ काथोऽप्रियोपि सरुजां सुखदो रविर्वा,  
 संतापकोऽपि जगदंगनृतां हिताय ॥१॥ किं तद्वचः?  
 यतः ॥ अणिमिस नयणामण क, ऊ साहणाः पु-  
 एकदाम अमिक्षाणा ॥ चउरंगुलेण नूमिं, न ठिबंति  
 सुरा जिणा बिंती ॥ १ ॥ इति ज्ञात्वा जिनवचनस्य  
 श्रवणं कर्त्तव्यं । कुर्वतां च सतां यत् पुण्यमुत्पद्यते तत्पु-  
 ण्यप्रसादात् उत्तरोत्तरमांगलिक्यमाला विस्तरंतु ॥२७॥

ज्ञाषाकाव्यः—मात्रात्मककविता ॥ ताको मनुज  
 जनम सब निःफल, निःफल मन निःफल जुग कान ॥  
 गुन अरु दोष विचार ज्ञेद विधि, तांहि महा उ-  
 द्वेज यह ज्ञान ॥ ताकों सुगम नरक उःख संकट,  
 आगम पंथ पदइ निरवान ॥ जिनमत बचन दया  
 रस गर्जित, जे नहि सुनत सिद्धांत बखान ॥ २७ ॥

कथा:- एनी उपर रोहणीया चोरनो दृष्टांत कहे डेः— राजगृही नगरीने पाखती वैज्ञारगिरि पर्वतनी गुफामांहे लोहखुरो चोर वसे डे, ते सर्वदा पापक-मीनो करनार, नगरमांहे चोरी करे, सात व्यसन सेवे, चोरीनो विधि संपूर्ण जाणे, धर्म उपर लगारमात्र वांडा नही, तेने रोहिणीनक्षत्रने योगे पुत्र थयो, तेनुं नाम रोहणीयो एवुं स्थाप्युं. अनुक्रमें यौवनावस्था पास्यो. तेवारें अनेक विद्यार्थिनो अच्छास कीधो. सर्व कलार्थमां निपुण थयो. एकदा तेना पिताने मरणनुं कष्ट आव्युं, तेवारें पुत्रने कहेवा लाग्यो के हे वत्स ! तुं महारुं वचन अंगीकार कर, तो हुं मरुं ! जे माटे तुं केवारें पण श्री महावीर देवनी वाणी सांजदीश मां. रोहणीये तेमज कबूल करुं. तेवारें लोहखुरो मरण पास्यो तेना मृत-कार्य करी नगरमां चोरी करतो फस्या करे.

हवे एकदा श्रीमाहावीरस्वामी विहार करता तिहां समोसस्या, देवतायें समोसरणनी रचना करी, ते समोसरणमां बेशी जगवान् देशना देवा लाग्या, ते समयें रोहणीयो पण पर्वतमांशी निकली राजगृही नगरी तरफ जातां मार्गमां समोसरण देखी चिंत-

ववा लाग्यो जे ए मार्गे जतां महाराष्ट्री वीरवचन  
जरूर संजलाशे, तो पितानी आळानो जंग थाशे?  
अने बीजे मार्गे जाइश तो वखत घणे लागेशे. तेम  
गयाविना पण चालक्षे नहीं. तेथी बे कानमां आं-  
गदी घाली बेहु पगरखां हाथमां लश एकदम दोऱ्यो  
अने समोसरण नजीक आव्यो, तेवारें पगमां कांटो  
लागो, तेने काहाडवा माटे कानमांथी आंगदीका-  
ढीने नीचो नम्यो, ते वखत सर्व संदेहनी हरनारी  
अभृततद्य एवी श्रीवीरनी वाणी श्रवणे सांचदी.  
ते वाणीमां देवताना स्वरूपनु वर्णन ते समये आवेलुं  
हतुं), ते जेम के:- ॥ गाथा ॥ केसड्हि मंस नह रो,  
म रुहिर वस चम्म मुत्त पुरिसेहिं ॥ रहिया (नि-  
म्मल देहा, सुगंध नीसास) गयबेवा ॥ १ ॥ अंतमु-  
हुत्तेणंचिय, पज्ञाता तरुणपुरिस संकासा ॥ (सद्वंग  
जूसण धरा) अजरा निरुया समा देवा ॥ २ ॥ (अ-  
णिमिस नयणा) मण क, जा साहणा पुष्फ दाम अ-  
मिलाणा ॥ चउरंगुदेण जूमिं, न द्विबंति सुरा जिणा  
बिंति ॥ ३ ॥ कांटो काहाडतां ए गाथाडे सांचदीने  
ते वचनने घणांए वीसारवा भांड्यां, पण कोइ रीतें  
वीसरे नही पडी गाममां जश चोरी करी लोकोने

संतापीने चोर स्वस्थानके गयो. एकदा तिहांनी सर्व प्रजायें राजानी आगल विनति करी के स्वामी ! आ गाममां चोरनी आगल अमाराशी रही शकाय नही ? ते सांचली राजायें सेवकोने बोलावी कहुं के अरे ! तमें चोरनो नियह केम नथी करता !!! ते सांचली सेवको बोल्या के स्वामी ! अमें तो घणाय प्रपञ्च कस्या, परंतु ए चोर हणमां देखाय अने हणमां न देखाय, तेथी अमारा हाथमांज आवतो नथी. तेवारें राजायें ~~अन्नयकुमारने~~ कहुं. अन्नयकुमारें कोटवालने कहुं के नगरना दरवाजामां कोइ नवीन माणस प्रवेश करे, अथवा बाहिर नीकबे, तो उलखीने जवा देजो. कोटवालें पण गुप्तपणें दरवाजे रही चोकसी करतां एकदा रात्रिने वखते रोहणीयाने नगरमां प्रवेश करतां अंगित आकारें चोर जाणीने पकड्यो. बांधीने राजा आगल आएयो. राजायें अन्नयकुमारने पूब्युं के एने कहेवी शिक्षा करीयें ! तेवारें कुमरें कहुं के चोरेली वस्तु हाथ लाग्या विना शिक्षा अइ शके नही, राजायें चोरने पूब्युं के तुं क्या गामनो रहेवासी गो अने तहारुं नाम शुं डे ? तथा धंधो शुं डे ? ते कहे. चोर बोद्यो

महारुं नाम द्वुर्गचंक ठे जातें कुरुंबी दुं अने शालियाममां रहुं दुं, कोश कामविशेषें आर्हीं आव्यो दुं. आवतां असुर थश तेथी तबारें मने पकड्यो. ते सांचल्ली राजायें प्रठन्नपणे ते वातनो निश्चय करवा माटे शाळीग्रामें माणस मोकद्यो, पण चोरें ते ग्रामना सर्व माणसो सार्थे प्रथमथी संकेत करेलो हतो माटे तिहांना रहेवासीयें तेमज तेनुं नाम ग्राम सर्व ते माणसने कही संचलाव्युं. तेवारें माणसे फरी आवी राजा आगल सर्व समाचार कह्या, ते सांचल्ली अन्नयकुमारें विचाखुं जे ए चोर ठे पण महाकपटी ठे. पर्बी तेने दिलासो आपि पोताती पासें राख्यो.

जेवारें अन्नयकुमार सामायिक पोसह प्रमुख करे, तेवारें ते पण तेमज अन्नयकुमारनी सार्थे श्रावकनी करणी करे, तेना मनोगत ज्ञाव कोश जाणे नही ॥ यतः ॥ रामउवाच ॥ पश्य लङ्घण पंपायां, बकः परमधार्मिकः ॥ शनैश्च मुंचते पादौ, जीवानामनुकं पया ॥ १ ॥ मत्स्यउवाच ॥ सहवास्येव जानाति, सहवासि विचेष्टितम् ॥ प्रशंस्यते च रामेण, तेनाहं नकुलीकृतः ॥ २ ॥ मुखथी मिष्ठवचन बोद्धे अने संसारमां तो मिष्ठवचन वद्वन्न लागे तेथी कोयलानी

पेरें श्रवणुण ढंकाइ जाय ॥यतः॥ पिकस्तावत् कृष्णः,  
परमरुणया पश्यति दृशा ॥ परापत्यद्वेषी स्वसुतम-  
पिनो, पालयति यः तथाऽप्येषोऽमीषां, सकलजगतां  
वद्वन्नतमो॥न दोषागण्यते, मधुरवचनानांकचिदपि १

इवे अन्नयकुमारें एक आवास कराव्यो, तेमां  
विचित्र चित्रामण कराव्यां, नानाप्रकारना चंदुवा  
बंधाव्या, आवासनी उपर अत्यंत सुंदर ध्वजार्ते बं-  
धावी मांहे सेलारस, अगरचंदनहेपन कराव्यां,  
धूपपरिमल विस्तार्या, छारमां तोरण बंधाव्यां,  
अपूर्व शय्या पथरावी, फुल पगर न्नराव्या, तथा  
शोलवर्षना वयवादी अत्यंत रूपवंत एवी आठ ग-  
णिकार्तने शोल शणगार करावीने तेना हाथमां मृ-  
दंग आपी तिहां उन्नी राखीयो. पठी ते आवासमां  
अन्नयकुमारें ते चोरने साधर्मीन्नाइना नातार्थी ज-  
मवा बोलाव्यो. जमाडतां जमाडतां वचमां चंद्र-  
हास्य मदिरानुं पान कराव्युं, तेथी विव्हल थयो.  
तेवारें ते आवासनी शय्या उपर तेने सुवाडी मूक्यो.  
चार घडी वीत्या पठी सचेतन थयो. तेवारें ते गणि-  
कार्ते “ जयजयनंदा जयजयन्नहा ” एवा शब्दो बो-  
लती थकी बत्रीशब्द नाटक करवा लागी. अने ते

चोरने पूछ्युं के तमें शी पुण्याइ कीधी के जेथकी अमारा स्वामी थया ? अने देवदोकनी पदवी पास्या ? ते वखते तिहाँ रोहणीयो चोर विचारवा लाग्यो जे आ ते शी वात ! जे में तो जन्मांतरने विषे कांइ पण पुण्य कस्युं नशी, तो हुं देवता शी रीते थयो ! वदी विचाल्युं जे वीरवचन तो एबुं रे के देवताहोय तेने तो 'अणिमिसनयणा' इत्यादि चिन्ह होय, ते तो ए देवांगनाऽर्जमां देखातां नशी. माटें देव श्यो ! आ सर्व प्रपञ्च अन्नयकुमारें कस्यो हशे ! एम जाणी विचारे रे के हवे (आपणे पण इहाँ कपट जावज नजवो. कपटकथा करवी ! एम विचारीने कहेवा लाग्यो के हे स्त्रीयो ! में पाड़दे जवें दान, पुण्य, धर्म, सात व्यसनरहित थकां नियम, व्रत, जीर्णो-झारादि पुण्यकरणी करेदी रे तेथी तमारो स्वामी हुं थयो दुं ! तेवारें देवांगनाने रूपें वेश्याउ बोद्धी के मनुष्यजनवमां कांइ पाप कस्युं होय तो ते पण अमने कहो. तेवारें रोहणीयो बोद्ध्यो के में मनुष्यजनवें केवल धर्मज कीधो रे, पण पाप कर्म कोइ कीधुं नशी) ए वात सर्व प्रब्रह्मपणे सांजदीने अन्नयकुमारें जाएयु जे आ महोटो बुद्धिमान् रे. एना जेवा बुद्धिमान्

तो कोइ विरलाज हशे पर्डी श्रेणिकराजाने पूर्डीने अन्नयकुमारें ते चोरने विसर्जन कस्यो, रोहणीयो पण घेर जइ विचारवा लाग्यो के मरवानुं कष्ट म-होडुं हतुं तेथी हुं उगरत नही, परंतु में पगमांथी कांटा काढतां जे श्रीवीतरागनी थोडी शी वाणी सां-चद्दी ते पण मुने गुणकारी यश्छु~~अ~~णवांठतां थकां पण जिनवाणी में सांचद्दी ते मुने आडी आवी. माटें वीतरागने शरणे जबुं तेज उत्तम ठे)पर्डी ति-हांथकी श्रीवर्द्धमानस्वामी पासें आवी नमस्कार करी कहेवा लाग्यो के हे प्रज्ञो ! तमारी थोडी शी वाणी मने नासतां नासतां श्रवणे पडी, तेथी हुं उ-गस्यो. माटे हवे हे महाराज ! कृपा करी महारा बेहु जब सुधरे, तेवो उपाय कहो. तेवारें परमेश्वरें तेने धर्मोपदेश कस्यो, ते सांचद्दी चारित्र लेवा माटें सावधान थयो. पर्डी जगवाननें वीनव्यो के हे महाराज ! हुं श्रेणिकराजाने मद्दी आवीने पर्डी चारित्र लद्दश ! एम कही राजानी पासें आवी क-हेवा लाग्यो के हे स्वामी ! हुं रोहणीयो नामक चोर, महा पापी ठंड, परंतु श्रीवीरनां वचन सांच-द्दतां हुं उगस्यो दुं. हवे मुने चारित्र लेवानो ज्ञाव

छे, माटें वैज्ञारिकिनी गुफामांहे में चोरी लावेलुं धन राखेलुं छे, ते तमें महारी साथें तिहां पधारीने सर्व प्रजाने उलखावी उलखावीने जे जे धणीनुं होय ते ते धणीने तमें हवाके करो, राजायें पण तेमज कल्युं. सर्व प्रजाने जेनुं जेनुं धन हतुं तेने तेने उलखावी उलखावीने दीधुं. परी रोहणीये स्वकुटुंब प्रतिबोधी तेमनी आङ्गा पासी चारित्र दीधुं. अंत्यावस्थायें अ-एसण करी देवलोके देवता थयो. ए रोहणियानी पेरें जे जिनवचनने सहहे, ते सुखने पासे ॥ १७ ॥

पीयूषं विषवज्जालं ज्वलनवत्तेजस्तमः स्तो-  
मव, न्मित्रं शान्त्रववत् स्त्रजं त्रुजगवत् चिं-  
तामणि लोष्टवत् ॥ ज्योत्स्नां ग्रीष्मजघर्मव-  
त् स मनुते कारुण्यपण्यापणम्, जैनेंद्रं मत-  
मन्यदर्शनसमं योङ्गर्मतिर्मन्यते ॥ १८ ॥

अर्थः—( यः केण ) जे ( दुर्मतिः केण ) मूर्ख पु-  
रुष, ( जैनेंद्रं मतं केण ) जिनेंद्रशासन, तेने ( अ-  
न्यदर्शनसमं केण ) अन्यदर्शन जे बौद्ध, नैयायिक,  
सांख्य, वैशेषिक, जैमिनीवादिक दर्शनो तेनी समान  
जो ( मन्यते केण ) माने छे, तो ( सः केण ) ते मूर्ख

( १६७ )

पुरुष, केवुं माने डे ? तो के ( पीयूषं के० ) अमृत  
जे तेने ( विषवत् के० ) विष समान ( मनुते के० )  
माने डे. तथा ते मूर्ख पुरुष, ( जलं के० ) परम-  
शीतल जल जे तेने ( ज्वलनवत् के० ) अग्निसमान  
माने डे. तथा ते मूर्ख पुरुष, ( तेजः के० ) तेज जे  
तेने ( तमः स्तोमवत् के० ) अंधकार समूहनी ऐरें  
माने डे. तथा वली ते मूर्ख पुरुष ( मित्रं के० ) स-  
खाइने ( शात्रववत् के० ) वैरीसमान माने डे. वली  
ते मूर्ख पुरुष ( सृजं के० ) पुष्पमालाने ( चुजगवत्  
के० ) सर्पसमान माने डे, वली ते मूर्ख पुरुष, ( चिं-  
तामणि के० ) चिंतामणि रखने ( लोष्टवत् के० )  
पाषाण समान माने डे, वली ते मूर्ख पुरुष, ( ज्यो-  
त्स्नां के० ) चंद्रकांतिने ( श्रीष्मजघर्मवत् के० ) उ-  
षणकालना तडका जेवी माने डे. आ रेकाणे अमृ-  
तादि सरखुं जिनमत जाणबुं, अने विषादि समान  
अन्यदर्शन जाणवां. हवे ते जैनेंद्रमत कहेवुं डे ?  
तो के ( कारुण्य के० ) दयापणुं ते रूप ( पुण्य के० )  
वैचवाने लायक वस्तु तेनुं ( आपणं के० ) हाट डे.  
आहिं मनुते ए क्रियापद सर्व रेकाणे योजन करवुं.  
एवी रीतें मानीने श्रीजिन मत अंगीकार करवुं.

अंगीकार करनारने जे पुख्य । इत्यादि पूर्ववत् ॥१४॥

टीका:-पीयूषमिति ॥ योङ्गर्मितर्मूर्खः पुमान् जै-  
नेंद्रं मतं श्रीजिनशासनं अन्यदर्शनसमं । अन्यद-  
र्शनैबौद्ध नैयायिक सांख्य वैशेषिक जैमिनीयादि-  
ज्ञः समं सदृशं मन्यते गणयति स मूर्खः पीयूषं  
अमृतं विषवत् विषेण तुद्यं मनुते गणयति । पुन-  
र्जलं परमशीतलं पानीयं ज्वलनवत् अग्नितुद्यं ग-  
णयति । पुनः तेजः उद्योतं तमःस्तोमवत् अंधकार-  
पुंजवत् मनुते । पुनर्मित्रं सखायं शात्रववत् वैरिस-  
दृशं मनुते जानाति । पुनः सृजं पुष्पमालां चुजग-  
वत् सर्पतुल्यां गणयति । पुनः स चिंतामणिं लो-  
ष्टवत् पाषाणसदृशं गणयति । पुनः स ज्योत्स्नां कौ-  
मुदीं चंद्रकांति श्रीष्मजघर्मवत् उषणकाल आतप-  
वत् मनुते । अत्र पीयूषादिसमं जिनदर्शनं । विषा-  
दिसदृशान्यर्शनानीत्युपनयः । किं ज्ञूतं जैनेंद्रं मतं  
कारुण्यपण्यापणं । दयारूपक्रय्यस्य हट्टं ॥ एवं मत्वा  
श्रीजिनमतमेवांगीकर्त्तव्यं कुर्वतांच सतां यत् ।  
शेषं प्राग्वत् ॥ १४ ॥

ज्ञाषाकाद्यः—ठप्पय ॥ अमृत कहं विष कहैं,  
नीर कहं पावक मानैं ॥ तेज तिमिर सम गिनैं

मित्त कहं शत्रु बखानै ॥ पुहपमाद कहं नाग, र-  
तन पहर सम तुद्वै ॥ चंद्र किरन आतप सरूप,  
इह जांति जु जुद्वै ॥ करुना निधान अमदान युन,  
प्रगट बनारसि जैन मत ॥ पर मत समान जो मन  
धरत, सो अजान मूरख आपत ॥ १४ ॥

धर्म जागरयत्यधं विघटयत्युड्डापयत्युत्प-  
थम्, जिते मत्सरमुड्डिनत्ति कुनयं मथ्नाति  
मिथ्यामतिम् ॥ वैराग्यं वितनोति पुष्यति  
कृपां मुष्णाति तृष्णां च य, तज्जैनं मतम-  
र्चति प्रथयति ध्यायत्यधीते कृती ७० ॥

अर्थ-:( कृती केष्ट ) पंक्ति पुरुष ( यत् केष्ट ) जे  
( जैनमतं केष्ट ) जैनेंद्रमत जे जिनशासन, एटले  
जिनप्रवचन तेने ( अर्चति केष्ट ) पूजे ढे, ( प्रथय-  
ति केष्ट) विस्तारे ढे. वढी ( ध्यायति केष्ट ) ध्यान  
करे ढे. एटले चिंतवन करे ढे. वढी ( अधीते केष्ट )  
पठन करे ढे. ( तत् केष्ट ) तो ते पूर्वोक्तरीतें करे-  
छुं एवुं जिनशासन शुं करे ढे ? तो के ( धर्म केष्ट )  
धर्मने ( जागरयति केष्ट ) जागरण ढे उद्दीपन तेने  
करे ढे. वढी ( अघं केष्ट ) पापजे तेने ( विघटय

ति के० ) दूर करे डे. वली ( उत्पथं के० ) उन्मार्ग  
जे अनाचार तेने ( उड्डापयति के० ) निवारण करे  
डे. तथा ( मत्सरं के० ) गुणी पुरुषोने विषे द्वेषज्ञा-  
वने ( ज्ञिते के० ) नाश करे डे. वली ( कुनयं के० )  
कुत्सित नय जे अन्याय, तेने ( उष्णिनत्ति के० )  
उठेद करे डे. वली ( मिथ्यामतिं के० ) कूटबुद्धि जे  
तेने ( मथ्नाति के० ) सर्वथा दूर करे डे. वली  
( वैराग्यं के० ) वैराग्यने ( वितनोति के० ) विस्तार  
करे डे. वली ( कृपां के० ) दयाने ( पुष्यति के० )  
पोषण करे डे. ( च के० ) वली ( तृष्णां के० ) स्पृ-  
हा एट्के लोचने ( मुष्णाति के० ) टाके डे. अर्था-  
त् जेणे जिनमत आराधन कर्युं, तेणे पूर्वोक्त सर्व-  
वानां कर्यां, एम जाणबुं. ए प्रकारे जाणीने श्रीजिन-  
मत जे जिनप्रणीत सिद्धांत तेनुं आराधन करबुं. आ-  
राधन करनारने जे पुण्य आय। इत्यादि पूर्ववत् जा-  
णबुं ॥ २० ॥ ए त्रीजो जिनमत प्रक्रम थयो ॥ ३ ॥

टीका:-धर्ममिति ॥ कृती पंक्तिः जैनं मतं जैने-  
ङ्गमतं श्रीजिनशासनं जिनोक्तप्रवचनं अर्चति पूज-  
यति । पुन; प्रथयति विस्तारयति । पुनधर्यायति  
चिंतयति । पुनः अधीते पठति । तत् धर्मं जागर-

यति धर्मस्य जागरणं उद्दी पनं करोति । पुनः अधं  
 पापं विघटयति दूरिकरोति । पुनः उत्पर्थं उन्मार्गं  
 अनाचारं उड्डापयति निवारयति । पुनः मत्सरं गु-  
 णिषु द्वेषज्ञावं ज्ञिते ज्ञेदयति विनाशयति । पुनः  
 कुनयं कुत्सितनयं अन्यायं उड्डिनत्ति । पुनः मिथ्या-  
 मतिं मथनाति कूटबुद्धिं विलोच्य दूरीकरोति । पुनः  
 वैराग्यं वित्तनोति विस्तारयति । पुनः कृपां दयां पु-  
 ष्यति पोष्यति । पुनः तृष्णां स्पृहां लोचं मुष्णाति  
 निराकरोति । अर्थात् येन जिनमतमाराधितं तेन  
 एतानि वस्तूनि कृतानीत्यर्थः ॥ इति॑ङ्गात्वा श्रीजि-  
 नमतं जिनप्रणीत सिद्धांतश्च सम्यगाराधनीयः ॥ आ-  
 राधयतां च सतां यत्पुण्यं ॥१७॥ इति ॥ सिंदूरप्रकरा-  
 ख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिना ॥ विहितायां जिनमत,  
 प्रक्रमः पूर्णतामितः ॥३॥ इति तृतीय जिनमत प्रस्ताव३

ज्ञाषाकाव्यः ॥ महरं ठंद ॥ शुन्न धर्म विकासैं,  
 पाप विनासैं, कृपय उथापन हार ॥ मिथ्या मत  
 खंमैं, कुनय विहंमैं, मंमैं दया अपार ॥ तिल्ला मद  
 मारैं, राग विमारैं, यह जिन आगम सार ॥ जो  
 पूजैं ध्यावैं, पढैं पढावैं, सो जगमांहि उदार ॥१८॥

हवे चार श्लोकोयें करीने संघना महिमाने कहे डे.  
 रत्नानामिव रोहणक्षितिधरः खं तारकाणामि-  
 व, स्वर्गः कट्टपमहीरुद्धामिव सरः पंकेरुद्धाणा  
 मीव ॥ पाथोधिः पयसा मिवेऽमहसां (शशी  
 व महसां) स्थानं गुणानामसा, वित्याद्वोच्य-  
 विरच्यतां नगवतः संघस्य पूजाविधि ॥७१॥

अर्थः—हे जन्य जनो ! ( इति केण ) आ प्रकारें  
 ( आद्वोच्य केण ) जोइने अर्थात् विचार करीने  
 ( नगवतः केण ) पूजन करवा योग्य एवा ( संघस्य  
 केण ) संघ जे डे, तेनो ( पूजाविधिः केण ) पूजानो  
 विधि, ( विरच्यतां केण ) करीयें, अर्थात् करो. हवे  
 शा प्रकारें विचार करीने ? तो के, ( असौ केण ) आ  
साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकारूप चतुर्विधि संघ  
 जे डे, ते ( गुणानां केण ) ज्ञान, दर्शन, चारित्र अने  
 विनयादिक जे सर्व गुणो तेनुं ( स्थानं केण ) निवा-  
 सस्थानक डे, केनी पेरें ? तो के ( रत्नानां केण ) र-  
 लोनुं स्थानक ( रोहणक्षितिधरः केण ) रोहणाचब-  
 पर्वत ( इव केण ) जेम डे, तेम. तथा ( खं केण )  
 आकाश, ते ( तारकाणां केण ) ताराजेनुं निवासस्थान

( इव केऽ ) जेम ढे, तेम. तथा ( कद्यपमहीरुहां केऽ )  
 कद्यपवृद्धोनुं निवासस्थानक ( स्वर्गः केऽ ) स्वर्ग  
 ( इव केऽ ) जेम ढे, तेम. तथा ( पंकेरुहाणां केऽ )  
 कमलोनुं निवासस्थानक ( सरः केऽ ) तबाव ( इव  
 केऽ ) जेम ढे, तेम. वल्ली ( पाथोधिः केऽ ) समुद्र  
 जे ढे, ते ( पयसां केऽ ) जलोनुं निवासस्थानक  
 ( इव केऽ ) जेम ढे, तेम. हवे ते जल केहवां ढे ?  
 तो के ( इंद्रुमहसां केऽ ) चंद्रमा समान निर्मल  
 ढे. अथवा ( शशीव महसां केऽ ) शशीव महसां  
 एवो पाठ जो होय तो, ( महसां केऽ ) तेजनुं नि-  
 वासस्थानक ( शशी केऽ ) चंद्रमा ( इव केऽ ) जेम  
 होय, तेम. अर्थात् पूर्वोक्त वस्तुउ जेम बीजी कहेली  
 वस्तुउनुं निवासस्थानक ढे, तेम आ श्री चतुर्विध  
 संघ पण झान, दर्शन, चारित्रने रहेवानुं निवास-  
 स्थानक ढे. आ प्रकारें विचार करीने चतुर्विध सं-  
 घनुं पूजन करबुं. एज ज्ञावार्थ ढे. आहीं ( स्थानं )  
 ए पद, सर्वत्र योजन करबुं. माटें एम जाणीने श्री-  
 संघनी जक्कि करवा योग्य ढे. अने ते जक्कि करवानुं  
 जे पुण्य थाय । इत्यादि पूर्ववत् जाणबुं ॥ २१ ॥

टीका:-अथ चतुर्जिर्वृत्तैः संघस्य महिमानमाह ॥

रत्नानामिवेति ॥ चोच्चव्याः । इत्याखोच्य इति वि-  
 चार्यं चगवतः पूज्यस्य संघस्य पूजाविधिरच्यतां  
 क्रियतां । इतीति किं ? यतः असौसंघः साधु साध्वी  
 श्रावक श्राविका रूपश्चतुर्विधसंघः गुणानां ज्ञान द-  
 शीन चारित्र विनयादीनां स्थानं निवासः । कः केषा  
 मिव ? रोहणक्षितिधरः रोहणश्चासौ क्षितिधरश्च  
 पर्वतो रत्नानामिव । यथा रोहणाचलोरत्नानां स्थानं  
 तथेत्यर्थः । पुनः खं आकाशं तारकाणामिव । पुन-  
 र्यथा स्वर्गः कद्यपमहीरुहां कद्यपवृक्षाणां स्थानं तथे-  
 त्यर्थं पुनर्यथा सरस्तडागः पंक्तेरुहाणां कमलानां स्थानं  
 तथा । पुनर्यथा पाशोधिः समुद्रः पयसां पानीयानां  
 स्थानं तथा । किंच्चूतानां पयसां । इंद्रुमहसां इंद्रुव-  
 न्निर्मलानां । अथवा शशीव महसां इति पाठः ।  
 यथा शशी चंद्रो महसां तेजसां स्थानं तथाऽसौ  
 संघो गुणानां स्थानं । अथ वा किंच्चूतानां गुणानां  
 इंद्रुमहसां इंद्रुवत् महो एषां तानि इंद्रुमहांसि तेषां ।  
 एवं श्री चतुर्विधसंघः सर्वेगुणानां स्थानं । इति ज्ञात्वा  
 श्रीसंघस्य चक्षिः कार्या । कुर्बतां च सतां यत्पुण्यं ७२१  
 जाषाकाव्यः—कवित्त मात्रात्मक ॥ जैसे न च मं-  
 मुख तारागन, रोहन सिखर रतनकी खान ॥ ज्यौं

( १३५ )

सुरखोक नूरि कब्यपद्म, ज्यौं सुरवर श्रंबुज बन जान॥  
ज्यौं समुद्र पूरन जख मंमित, ज्यौं ससि डवि स-  
मूह सुखदानि ॥ तैसें संग सकल गुन मंदिर, से-  
वहुं जाव जगति मन आनि ॥ २१ ॥

यः संसारनिरासखालसमतिर्मुक्त्यर्थमुक्तिष्ठ-  
ते, यं तीर्थं कथयंति पावनतया येनाऽस्ति  
नाऽन्यःसमः ॥ यस्मै तीर्थपतिर्नमस्यति स-  
तां यस्माहुन्नं जायते, स्फूर्तिर्यस्य परावसं-  
ति च गुणा यस्मिन्स संघोऽच्यतां ॥ २२ ॥

अर्थः—हे जन्मव्यजनो ! तमोयें ( सः केण ) ते च-  
तुर्विध संघ ( अर्च्यतां केण ) पूजाय. अर्थात् तमें  
चतुर्विध संघने पूजो, ते कहेवो संघ ढे ? तो के(यः  
केण) जे संघ, ( संसार केण ) संसार तेनो ( निरा-  
स केण ) निराकरण एटखे त्याग तेने विषे ( खाल-  
समतिः केण ) इड्डावाली ढे बुद्धि जेनी एवो डतो  
( मुक्त्यर्थ केण ) मुक्तिना साधन माटे ( उक्तिष्ठते  
केण ) सावधान थाय ढे. तथा ( यं केण ) जे संघने  
( पावनतया केण ) पवित्रपणायें करीने ( तीर्थ केण )  
तीर्थनूत एवाने ( कथयंति केण ) कहे ढे. तथा

( येन केऽ ) जे संघनी संघातें ( समः केऽ ) समा-  
 न, ( अन्यः केऽ ) बीजो कोइ ( नास्ति केऽ ) नथी.  
 वद्धी ( यस्मै केऽ ) जे संघने ( तीर्थपतिः केऽ )  
 तीर्थकर पोतें ( नमस्यति केऽ ) नमस्कार करे डे.  
 एटद्वे व्याख्या नावसरने विषें “नमोतिद्वस्स ” एवुं  
 ज्ञणे डे. तथा ( यस्मात् केऽ ) जे संघयकी ( सतां  
 केऽ ) सज्जनोतुं ( शुञ्च केऽ ) कल्याण ( जायते केऽ )  
 उत्पन्न आय डे. ( च केऽ ) वद्धी ( यस्य केऽ ) जे  
 संघनी ( स्फूर्तिः केऽ ) महिमा ( परा केऽ ) उत्कृ-  
 ष्ट वर्त्ते डे. वद्धी ( यस्मिन् केऽ ) जे संघने विषे ( गु-  
 णाः केऽ ) गांजीर्य, धैर्य, औदार्यादिक मूलोत्तर गु-  
 णो ( वसंति केऽ ) वसे डे. आ श्लोकमां सात वि-  
 ज्ञकिनो अनुक्रमें समावेश करेलो डे. ते जेम के  
 आरंजमां ( यः ) ए पद लक्ष्ने ( यस्मिन् ) ए पद  
 पर्यंत जोइ लेबुं, माटे ए प्रमाणे जाणीने है जब्य-  
 प्राणीयो ! मनमां विवेक लावीने श्रीसंघनी पूजा  
 जक्कि करवी ते पूजा जक्कि करनारने जे पुण्य ।  
 इत्यादि पूर्ववत् जाणबुं ॥ २२ ॥

टीकाः—यःसंसारेति ॥ जो जब्याः ! जवङ्गिः सः  
 श्री चतुर्विधसंघो अर्च्यतां पूज्यतां । सः कः ? य संघ

संसारनिरासबालसमतिः सन् संसारस्य निरासे निराकरणे त्यागे बालसा इष्टा यस्यासा ईदृशी मति बुद्धि यस्य सई दृशः सन् मुक्तयर्थं मुक्तिसाधनार्थं उत्तिष्ठते सावधानोज्जवति । पुनर्यसंघं पावनतया पवित्रत्वेन तीर्थञ्चूतं कथयन्ति पुनर्येन शंघेन समः सहशोऽन्यः कोऽपि नास्ति । पुनर्यस्मै संघाय तीर्थपतिः तीर्थकरः स्वयं नमस्यति नमस्कारं करोति । व्याख्याना वसरे नमोतिष्ठस्सेतिन्नणनात् । पुनर्य स्मात् संघात् सतां सज्जनानां शुच्चं कल्पाणं जायते उत्पव्यते । पुनर्यस्य संघस्य स्फूर्तिर्महिमा परा उकृष्टा वर्तते । पुनर्यस्मिन् संघे युणा गांजिर्यधैर्यैदार्यादिः मूलगुणोन्नरगुणाश्च वसंति तिष्ठन्ति । एवं ज्ञात्वा जो जन्मव्यप्राणिन् ! मनसि विवेकमानीय श्रीसंघस्य पूजा जक्तिश्च प्रकर्त्तव्या । कुर्वतां च सतां० ॥ २२ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—वृत्त उपर प्रमाणे ॥ जे संसार जोग आसा तजी, छानत मुक्ति पंथकी दौर ॥ जाकी सेव करत सुख उपजत, जिन समान उत्तम नहि और ॥ इंद्रादिक जाके पद वंदत, जो जंगम तीरथ सुचि छौर ॥ जाने नित निवास सुख संपति, सो सिरि संघ जगत सिर मोर ॥ २२ ॥

लक्ष्मीस्तं स्वयमन्युपैति रजसा कीर्तिस्त-  
मालिंगति, प्रीतिस्तं: जजते मतिः प्रयतते तं  
लब्धुमुत्कंरया ॥ स्वश्रीस्तं परिब्धुमिडति  
मुहुर्मुक्तिस्तमाखोकते, यः संघं गुणराशिके-  
विसदनं श्रेयोरुचिः सेवते ॥ ४३ ॥

अर्थः—( यः केऽ ) जे पुरुष, ( श्रेयोरुचिः केऽ )  
श्रेय एटखे कव्याण तेने विषे वा धर्मने विषे ढे  
रुचि जेनी एवो भतो ( संघं केऽ ) चतुर्विध संघ जे  
तेने ( सेवते केऽ ) सेवन करे ढे, ( तं केऽ ) ते पु-  
रुषने ( लक्ष्मीः केऽ ) संपत्ति, ते ( रजसा केऽ ) वेगे  
करीने अर्थात् शीघ्रताशी ( स्वयं केऽ ) पोतानी मेल्खे  
( अन्युपैति केऽ ) सन्मुख आवे ढे. वली ( कीर्तिः  
केऽ ) कीर्ति जे ढे, ते ( तं केऽ ) ते पुरुषने ( आ-  
लिंगति केऽ ) आलिंगन दे ढे, अर्थात् कीर्ति प्रा-  
स थाय ढे. तथा वली ( प्रीतिः केऽ ) स्नेह जे ढे,  
ते ( तं केऽ ) ते पुरुषने ( जजते केऽ ) जजे ढे ए-  
टखे सेवे ढे. वली ( मतिः केऽ ) बुद्धि जे ढे, ते  
( उत्कंरया केऽ ) ( उत्सुकतायें करीने ( तं केऽ ) ते  
पुरुषने ( लब्धुं केऽ ) प्राप्त थवाने ( प्रयतते केऽ )

प्रयत्न करे डे. वक्ती ( स्वःश्रीः केऽ ) स्वर्गनी लक्ष्मी-  
 ( तं केऽ ) ते पुरुषने ( मुहुः केऽ ) वारंवार ( परि-  
 रब्धुं के ० ) आलिंगन देवाने ( इष्टति केऽ ) इष्टा  
 करे डे. वक्ता ( मुक्तिः केऽ ) मोक्ष, ( तं केऽ ) ते  
 पुरुषने ( आलोकते केऽ ) जुवे डे. हवे ते संघ के-  
 हवो डे ? तो के ( गुणराशि केऽ ) गुणनो जे समू-  
 ह तेनुं ( केलिसदनं केऽ ) क्रीडागृह डे. अर्थात् ते  
 सर्व गुणोने रमवानुं स्थानक डे. माटे एम जाणीने  
 मनने विषे विचार करीने चतुर्विध संघ जे डे ते  
 सेववा योग्य डे. ते सेवन करता सुजनोने जे पुण्य ।  
 इत्यादि पूर्ववत् जाणदुं ॥ २३ ॥

टीकाः—लक्ष्मीति ॥ यः पुमान् श्रेयोरुचिः सन्  
 श्रेयसि कल्याणे धर्मे वा रुचिरज्जिवाषोयस्य स श्रे-  
 योरुचिः । ईदृशः सन् श्रीसंघ सेवते । तं पुरुषं लक्ष्मीः  
 संपत् रज्जसा वेगेन स्वयमात्मना अन्नयुपैति सन्मुख-  
 मायाति । पुनः कीर्ति स्तं पुरुषं आलिंगति आलिंगनं  
 ददाति । पुनः प्रीतिः स्नेहस्तं जजते सेवते । पुनर्मति-  
 बुद्धिः उत्कंठया उत्सुकतया कृत्वा तं नरं लब्धुं प्राप्तुं  
 प्रयतते यत्नं करोति । पुनः स्वःश्रीः स्वर्गलक्ष्मीस्तं  
 मुहुवर्गं वारं परिरब्धुं आलिंगितुं इष्टति । मुक्ति-

( १४० )

मोऽक्षतं पुरुषं आखोकति पश्यति । किं विशिष्टं सं-  
घं ? गुणराशि केलिसदनं गुणसमूहस्य क्रीडागृहं ।  
एवं ज्ञात्वा संघः सेव्य शेषं पूर्ववत् ॥ २३ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—वृत्त उपर प्रमाणे ॥ ताकों आश मि-  
लै सुख संपति, कीरति रहै तिहूं जग डाई ॥ जिन-  
सौं प्रीति बढै ताके घट, दिन दिन धरम बुद्धि अ-  
धि काई ॥ ठिन ठिन ताहि लखै शिव सुंदरि, सुरग  
संपदा मिलै सुज्ञाई ॥ वानारसि गुनरासि संघकी, जो  
नर जगति करै मन लाई ॥ २३ ॥

कथा:- अयोध्या नगरीये जरतचक्रवर्ती अन्याय  
वर्जतो राज्य पाले छे. एकदा श्रीआदिनाथने केव-  
लज्ञान उपने थके चोराशी गणधर सहित विहार  
करता अयोध्याना उद्यानमां समोसस्या, उद्यानपा-  
लकें वधामणी दीधी, तेने साडीबार क्रोडनुं दान  
दीधुं. पठी जरतराजाये विचार्युं जे आज क्षज्ज-  
देव पधास्या छे, तेने सपरिकर जोजन करावुं ! एम  
चिंतवी घणां गाडां पक्कान्नादिकें जरी समोसरणे  
आवी जगवानने वांदीने विनति करी के महारा-  
ज ! आज सर्व कुदुंब सहित आप महारुं जोजन  
करो. तेवारे जगवान् बोख्या के हे जरत ! साधुने

राज्यपिंड अग्राह्य ढे. वक्ती आधाकर्मी तथा साहामो आण्यो ते पण अग्राह्य ढे. एवीं वाणी सांजद्वी जरत पश्चात्ताप करवा लाग्यो, तेवारें जगवान् बोल्या के हे राजेंद्र ! तुं असंतोष म कर, पहेलुं पात्र वीतराग, बीजुं पात्र साधु, त्रीजुं पात्र अणु ब्रतधारी अने चोशुं पात्र दर्शनधर, माटें तुं अणुब्रतधारी श्रावकनी जक्किकर, जेथकी संसाररूप समुद्र चुबूक समान थाय. एवुं सांजद्वी जरत राजा हर्ष पास्यो थको स्वस्थानके आव्यो. श्रावकमात्रने जमवा माटें नोतरां दीधां. निरंतर सर्वदोक जमवा आवे. केम के ते वखतें दोक सर्व रुजु जड हता. माटें हरहमेश आववा लाग्या, तेवारें रसोइ करनारायें राजाने विनव्यो के महाराज ! प्रजा सर्व उखटी पडी ढे, केहने जमाडीयें अने केहने न जमाडीयें ! तेवारें राजायें परीक्षा करी शुरू श्रावकने झान, दर्शन अने चारित्ररूप त्रण रेखा कांगणीरत्नशी कीधी. एम करी अवतार सफल करवा लाग्यो. तथा श्रीशत्रुंजयनो प्रथम उद्घार कस्यो, संघवीनी पदवी पास्यो. वक्ती अष्टापद पर्वत उपर कृष्णदेव प्रमुख आगामी काळें थनारा चोवीश ति-

र्थकरनां प्रासाद करी मानोपेत प्रतिमा जरावी. एरीतें श्रीसंघनी जक्कि करी अनुक्रमें आरीसाज्जवनमां रूप जोतां अनित्यज्ञावना ज्ञावतां मनमां वैराग्य वृद्धि करतां आ संसारमां सार ते एक धर्मज ढे. एम कहेतां कहेतां केवलज्ञान पास्या. तेनो देवतायें महोत्सव कस्यो. चोराशी लाख पूर्वीनुं आयु ज्ञोगवी मोहें गया. तेमनो पुत्र श्रीसूर्ययश थयो, तेणे पण जरतेश्वरनी पेरेंज श्रीसंघनी जक्कि करी. उर्वशी प्रमुख देवांगनायें परीक्षा कीधी पण चलायमान थयो नही. तेमने पण आरीसामां रूप जोतां केवलज्ञान उपन्युं अने मोहें गयो. तेमनो पुत्र महायश, तेमनो पुत्र अतिबल, तेमनो पुत्र बलजद, तेमनो पुत्र बलवीर्य, तेमनो पुत्र कृतवीर्य, तेमनो पुत्र जबवीर्य, तेमनो पुत्र आठमे पाटे दंमवीर्य. एसर्व त्रण खंकना जोक्का थया, चतुर्विध श्रीसंघनी जक्किना करनार थया. इहां जरतनी पारब ठ कोडी पूर्व वर्षे गयां, तेवारें सौधमेंद्रें अवधिज्ञानने प्रमाणें स्तवना करी पोतें अयोध्यामांहे आवी ज्ञानादिक गुण जणाववा माटे यज्ञोपवित धारी बार ब्रतनां बार तिलक कस्यां. ते अवसरें दंमवीर्य राजायें इ-

झने श्रावकरूपें दीर्घो, ते देखीने हर्षवंत थयो. परी जमवानी निमंत्रणा कीधी, रसोइयाने कहुं के साधर्मिकने रूडी रीतें जोजन करावो. इंझ पण श्रावकरूप धरतो घरमांहे आव्यो, पच्चखाण पारी श्रावकोनी पंक्तिमां जमवा बेठो. एक क्रोड श्रावकने अर्थे जेटबुं अन्न निपजाव्युं हतुं तेटबुं ते एकलो जम्यो. वद्दी रसोइयाने कहुं के हुं जुख्यो दुं, माटे अन्न आप. रसोइयायें राजानी आगल सर्व वात कही. राजा तिहां आव्यो, तेने श्रावकरूपधारक इंझें कहुं के ए रसोइ करनार सर्वने जूख्या राखे डे. राजायें वद्दी सो मूढा अन्न रंधावी पीरश्युं, ते तत्काल जमीने वद्दी कहेवा लाग्यो के महारी जूख गङ्ग नथी. ए रीतें राजानुं अपमान करवा लाग्यो के हुं तृप्त थातो नथी. तेवारें राजायें मनमां खेद कर्यो जे महाराथी संघनी पूर्ण जक्कि थाती नथी, माटें मुने धिक्कार डे. सेवक बोल्या महाराज ! ए कोइ देवस्वरूपी डे, तेवारें राजायें धूपादिकें संतोषी नमस्कार करी पूब्युं के हे स्वामी ! प्रसन्न थाउ. साधर्मीनी जक्कि महाराथी केम थङ शके ? एवुं सांजली इंझें पोतानुं प्रगट रूप कीधुं. दंकवीर्यनी प्र-

( १४४ )

शंसा करवा लाग्यो ने कहुँ के हे दंमवीर्य ! तें यु-  
गादि देवनो वंश उजाल्यो, धन्य ठे तुजने जे तुं  
आवी रीतें साधर्मीनी जक्कि करे ठे, उक्कं च ॥ ते  
पुत्राये पितुर्जक्का, स पिता यस्तु पोषकः ॥ तन्मत्रं  
यत्र विश्वासः, सा जार्या यत्र निर्वृतिः ॥ १ ॥ इ-  
त्यादि स्तवना करी इंद्र देवबोकें गयो. दंमवीर्य  
पण संघजक्कि करी जन्म सफल करी मोहें पहोतो.  
एम जाणी संघजक्कि करो. सात क्षेत्रें धन वावरी  
अवतार सफल करो ॥ २३ ॥

यज्ञक्तेः फलमर्हदादिपदवीमुख्यं कृषेः स-  
स्यवत्, चक्रित्वं त्रिदशेऽप्ततादि त्रणवत् प्रा-  
संगिकं गीयते ॥ शक्कि यन्म हिमस्तुतौ न  
दधते वाचोऽपिवाचस्पतेः, संघ सोऽघहरः  
पुनातु चरणन्यासै सतां मंदिरम् ॥ २४ ॥  
संघप्रक्रमः ॥ ४ ॥

अर्थः—( सः केऽ ) ते ( संघः केऽ ) चतुर्विध संघ  
( चरणन्यासैः केऽ ) पोताना पदस्थापने करीने  
( सतां केऽ ) जक्कियुक्त मनुष्योनुं ( मंदिरं केऽ )  
मंदिर जे घर तेने ( पुनातु केऽ ) पवित्र करो. ते

संघ केहवो डे ? तो के ( यज्ञक्तेः केण ) जे संघनी जक्तिनुं ( अर्हदादि केण ) तीर्थकरादि पदवी ( पदवी केण ) पदवी जे पदनी प्राप्ति तेज ( मुख्यं केण ) मुख्य एवुं ( फलं केण ) फल डे, ते केनी पेरें ? तो के ( कृषेः केण ) हेत्रादिना ( सस्यवत् केण ) धान्यनी पेरें अर्थात् जेम कृषि करनार मनुष्यने धान्यप्राप्तिरूप मुख्य फल डे तेम आहिं श्रीसंघनी जक्तिनुं मुख्य फल अर्हदादि पदवी ज डे, अने ( चक्रित्वं केण ) चक्रवर्तीपणुं तथा ( त्रिदशेऽङ्गतादि केण ) देवेऽङ्गादि पदपणुं तो ( प्रासंगिकं केण ) प्रसंगशीज आवयुं-एम ( गीयते केण ) कहेवाय डे. केनी पेरें ? तो के ( तृणवत् केण ) हेत्रना घासनी परें. अर्थात् जेम कृषि करनारने विना प्रयासें हेत्रशी घासनी प्राप्ति आय डे, तेम आहिं संघजक्तिकारक पुरुषने चक्रवर्त्तित्व देवेऽङ्गत्व पदवी ते विना प्रयासेंज प्राप्त आय डे. वली ( यन्महिमस्तुतौ केण ) जे संघना ब्रजावर्णनने विषे ( वाचस्पतेः केण ) बृहस्पतिनी ( वाचोऽपि केण ) वाणीयो पण ( शक्तिं केण ) सामर्थ्य जे तेने ( न दधते केण ) धारण करी शक्ती नशी. वली ए संघ केहवो डे ? तो के ( अघहरः केण )

पापने हरण करनारो डे. माटें ते संघ अघहर डे,  
एम जाणीने श्रीसंघने पोताने घेर आमंत्रण करीने  
पूजन करबुं अने तेनी पूजानुं जे पुण्य आय । इ-  
त्यादि पूर्ववत् जाणबुं ॥ ३४ ॥ आ चतुर्थ संघज-  
क्तिनो प्रस्ताव अयो ॥ ४ ॥

टीकाः—यङ्ककेरिति ॥ सः श्रीसंघश्चरणन्यासैः  
खपादस्थापनैः कृत्वा सतां सतपुरुषाणां साधुमनु-  
ज्याणां मंदिरं यहं पुनातु पवित्रयतु । सः कः ? य-  
ङ्ककेर्यस्य संघस्य नक्तेः अर्हदादिपदवी मुख्यं ती-  
र्थकरादिपदप्राप्तेर्मुख्यं फलं वर्तते ॥ किं वत् ? कृषेः क्षे-  
त्रादेः सस्यवत् धान्यवत् । चक्रित्वं त्रिदशेऽङ्गतादि । च-  
क्र वर्त्तित्वं इङ्गपदत्वादिकं च प्रासंगिकं प्रसंगादागतं  
फलं गीयते कथ्यते । किंवत् । कृषेस्तृणवत् पद्मा-  
दादिवत् । पुनर्यन्महिमस्तुतौ यस्य संघस्य प्रज्ञाव-  
वर्णने वाचस्पतेरपि वाचो वाण्यः शक्ति सामर्थ्यं न  
दधते न धारयन्ति । किंविशिष्टः संघः ? अघहरः  
अघं पापं हरति यः सः अघहरः । इति झात्वा श्री  
संघः खग्ने आहूय सम्यक् पूजनीयः । शेषं प्राग्-  
वत् ॥ ३४ ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्ष-  
कीर्तिना ॥ सूरिणा विहितायां तु, श्रीसंघप्रक्रमोऽज-

( १४७ )

नि ॥ ४ ॥ इति चतुर्थं संघनक्ति प्रस्तावः ॥ ४ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—वृत्तं उपर प्रमाणेण ॥ जाके ज्ञगत मुगति पदं पावत, इंद्रादिकं पदं गनत न कोई ॥ ज्यौं कृषि करत धानं फलं उपजत, सहजं प्रयासं धासं चुस होई ॥ जाके गुनं जसं संपन्नं कारन, सुरगुरुं थकित होत मदं खोइ ॥ सो सिरि संघं पुनीत बनारसि, छुरित हरन विचरत चुश्च लोइ ॥४॥

इवे हिंसाना निषेधेंकरीने सर्वं प्राणियोने

विषे स्वसुमानतानुं ध्यानं करो, ते कहेरे.

ऋडाज्ञः सुकृतस्य ऊःकृतरजःसंहारवात्या ज्ञवो, दन्वन्नोर्व्यसनाम्निष्ठेघपटबी संकेतदूतीश्रियाम् ॥ निःश्रेणिस्त्रिवौकसः प्रियसखी मुक्तेः कुगत्यर्गदा, सत्वेषु क्रियतां कृपैव ज्ञवतु क्लेशैरशेषैः परैः ॥ ४५ ॥

अर्थः— हे जन्यप्राणीयो ! ( सत्वेषु केण ) जीवोने विषे ( कृपैव केण ) कृपा जे दया तेज ( क्रियतां केण ) कराय. अर्थात् करो. वबी ते कृपा ( परैः केण ) बीजा ( अशेषैः केण ) समस्तं एवा ( क्लेशैः केण ) कायाना कष्टे करीने पण ( ज्ञवतु केण )

हो. अर्थात् पोताना देहने कष्ट आपीने पण जीव-  
दयापालवी ए जीवदया केहवी रे ? तो के ( सु-  
कृतस्य केण ) सुकृत जे तेनी ( क्रीडान्नः केण ) क्री-  
डानुं स्थानक रे. तथा वद्वी केवी रे ? तो के ( दुः-  
कृत केण ) पाप तेज ( रजः केण ) रज जे धूड, ते-  
ना ( संहार केण ) हरण करवामां ( वात्या केण )  
वायुना विंटोलीया समान रे. अर्थात् कर्मरजने  
उमाडवामां जीवदया विंटोलीया जेवी रे. पापने  
धूँडनी उपमा केम आपी ? तो के ते पापज कर्म-  
मलनुं कारण रे. वद्वी केवी रे ? तो के ( नवोदन्व-  
न् केण ) संसाररूप जे समुद्र तेमां ( नौः केण )  
नावसमान रे अर्थात् संसारसमुद्र तरवामां नाव-  
समान रे, वद्वी केहवी रे ? तो के ( व्यसनाग्नि  
केण ) कष्टरूप जे अग्नि तेने विषे ( मेघपटली केण )  
मेघघटातुव्य अर्थात् अग्निने बुजाववामां जेम  
मेघ रे, तेम दुःखाग्नि बुजाववामां जीवदया रे,  
माटे मेघसरखी कही. वद्वी केहवी रे ? तो के ( श्रि-  
यां केण ) संपन्नियोनी ( संकेतदूती केण ) संकेत-  
स्थानमां पोहोंचाडनारी दूतीसमान रे. वद्वी केह-  
वी रे ? तो के ( त्रिदिवौकसः केण ) स्वर्गरूप जे

घर तेनी उपर चडवानी ( निःश्रेणिः केऽ ) निसर-  
णी जेवी ढे, वद्वी ते केहवी ढे ? तो के(मुक्तेः केऽ) मुक्ति  
रूप स्त्रीनी ( प्रियसखी केऽ ) वाद्वी सखी ढे, वद्वी  
केहवी ढे ? तो के ( कुगत्यर्गला केऽ ) छुर्गतिना  
द्वारने आडी देवानी ज्ञोगल समान ढे, एम जा-  
णीने जीवोने विषे दया करवी ॥ २५ ॥

**टीका:-**—अथ हिंसानिषेधेन सर्वसत्त्वेषु दैव  
क्रियतामित्याह ॥ क्रीडाज्ञूरिति ॥ ज्ञो ज्ञव्याः ! स-  
त्त्वेषु जीवेषु रूपा एव दया एव क्रियतां । परैरन्यैर-  
शेषैः समस्तैः क्लैशैः कायकष्टकरणैः ज्ञवतु पूर्णतया  
क्रियतामित्यर्थः ॥ कथंज्ञूता रूपा ? सुकृतस्य पुण्य-  
स्य क्रीडाज्ञूः क्रीडास्थानं । पुनः कथंज्ञूता ? डुःकृ-  
तरजःसंहारवात्या । डुःकृतं पापं तदेव कर्ममल-  
हेतुत्वात् रज इव रजस्तस्य संहारे संहरणे वात्या  
वायुसमूहतुद्या । पुनः कथंज्ञूता ? ज्ञवोदन्वन्नौः  
ज्ञव एव संसारएव उदन्वानिव उदन्वान् समुद्धः तत्र  
नौः नौका । पुनः कथंज्ञूता ? व्यसनाग्निमेघपटद्वी व्य-  
सनानि कष्टान्येव तापहेतुत्वात् अग्नयो वन्हयः तत्र  
मेघपटद्वी मेघघटासमाना । पुनः किंज्ञूता ? श्रियां  
संपदां संकेतदूती संकेतस्थानप्रापका संकेतिका

दूती । पुनः कथं चूता ? त्रिदिवौकसः निःश्रेणिः ।  
 त्रिदिवं स्वर्गं एव उकोगहं तस्य सोपानपंक्तिः ।  
 पुनः कथं चूता ? मुक्तेः प्रियसखी वह्वज्ज वयस्या ।  
 पुनः कथं चूता ? कुगत्यर्गला कुगतेर्डुर्गतेः अर्गला  
 द्वारपरिघः । इति झात्वा जीवेषु कृपा क्रियतां ॥ २५ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—सवैय्या इकतीसा ॥ सुकृतकी खानी  
 इंद्र पुरीकी निसानी जानी, पाप रज खंमनकों पौनरा-  
 सि पेखियें ॥ नवद्वःख पावक बुजायवेकों मेघमाला,  
 कमला मिलायवेकों दूती ज्यौं विशेषियें ॥ मुगतिवधू-  
 सों प्रीति पालवेकों आखी सम, कुगतिके बार दिढ  
 आगलसी देखियें ॥ ऐसी दयाकीजैं चित्त तिहुं लोक  
 प्रानीहित, और करतूति काहु लेखेमें न लेखियें ॥

॥ शिखरिणीवृत्तम् ॥ यदि ग्रावा तोये तर-  
 ति तरणिर्यद्युदयति, प्रतीच्यां सप्तार्चिर्यदि  
 न्नजति शैत्यं कथमपि ॥ यदि हमापीठं  
 स्याङ्गपरि सकलस्याऽपि जगतः, प्रसूते स-  
 त्वानां तदपि न वधःकाऽपि सुकृतम् ॥ २६ ॥

अर्थः—( यदि कें ) जो ( ग्रावा कें ) पाषाण  
 ते ( तोये कें ) जलने विषे ( तरति कें ) तरे

ঢে, বল্বী (যদি কেৰ) জো ( তরণিঃ কেৰ ) সূর্য তে, ( প্রতীচ্যাং কেৰ ) পশ্চিম দিশানে বিষে ( উদ্যতি কেৰ ) উগে ঢে. বল্বী ( যদি কেৰ ) জো ( সস্তাৰ্চ্ছিঃ কেৰ ) অগ্নি, তে ( শৈত্যং কে ) শীতপণানে ( জ্ঞজতি কেৰ ) জ্ঞজে ঢে. বল্বী ( যদি কেৰ ) জো ( কথমপি কেৰ ) কোশ পণ রীতে ( হ্মাপীঁৰ কেৰ ) পৃথ্বীমংকল, তে ( সকলস্যাপি কেৰ ) সমগ্র এবুঁ পণ ( জগতঃ কেৰ ) জগত জে তেনা ( উপরি কেৰ ) উপরনে বিষে ( স্যাতু কেৰ ) আয, ( তদপি কেৰ ) তো পণ ( স-ত্বানাং কেৰ ) জীবনো ( বধঃ কেৰ ) নাশরূপ জে হিং-সা তে ( ক্রাপি কেৰ ) ঋচ্য, হেত্র, কালাদিকনে বি-ষে কাঁশ পণ ( সুকৃতং কেৰ ) পুষ্যনে ( ন প্রসূতে কেৰ ) উত্পন্ন করতুঁ নথী. অর্থাৎ তে পূর্বোক্ত সর্ব অঘটি-ত ঘটনা কদাচিত্ আয, তোপণ জীবহিংসা কোশ রীতে পুষ্যকারক আয নহীঁ. মাটে হে জ্বয়জনো ! সর্ব জনোয়ে জীবহিংসানো ল্যাগ করবো ॥ ২৬ ॥

টীকা:—যদি গ্রা঵েতি ॥ যদি গ্রাবা পাষাণঃ তোয়ে জল্বে তরতি। পুনর্যদি তরণিঃ সূর্যঃ প্রতীচ্যাং পশ্চিমায়াং দিশি উদ্যতি । পুনর্যদি সস্তাৰ্চ্ছিঃ অগ্নিঃ শৈত্যং শী-তলত্বং জ্ঞজতি পুনর্যদি কথমপি হ্মাপীঁৰ পৃথ্বীমংকলং

सकलस्यांपि जगतो विश्वस्य उपरि ज्ञवेत् ॥ तदपि  
सत्त्वानां वधः हिंसा कापि इव्यक्तेनकालादौ सुकृतं  
युण्णं न प्रसूते न जनयति । शेषं प्राग्वत् ॥ २६ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—आज्ञानक ठंद ॥ जो पश्चिम रवि उ-  
ग्नै, तिरै पाषान जल ॥ जो उबटें जुश्र लोक, होइ  
शीतल अनल ॥ जो सुमेरु मगमगै, सिङ्ग कहं लग-  
नमल ॥ तबहूं हिंसा करत, न उपजै पुन्न फल ॥२६॥

॥ मालिनीवृतम् ॥ स कमलवनमभ्वर्वासरं  
ज्ञास्वदस्ता, दमृतमुरगवक्रात्साधुवादं वि-  
वादात् ॥ रुगपगममजीर्णजीवितं कालकूटा,  
दञ्जिलषतिवधाद्यः प्राणिनां धर्ममिहेत् ॥२७॥

अर्थः—( यः केण ) जे पुरुष, ( प्राणिनां केण )  
जीवोना ( वधात् केण ) वध जे हिंसा तेथकी ( धर्म  
केण ) धर्मने ( इहेत् केण ) इहे ढे, अर्थात् माने  
ढे, ( सः केण ) ते पुरुष, शुं इहे ढे ? तो के ( अम्बः  
केण ) अग्निथकी ( कमलवनं केण ) कमलोनां व-  
नने ( अञ्जिलषति केण ) अञ्जिलाष करे ढे. अ-  
र्थात् ते पुरुष, अग्निमांथी कमलवनने जोवानी इहा  
करे ढे. तथा ( ज्ञास्वदस्तात् केण ) सूर्य अस्त थया

पठी ( वासरं केऽ ) प्रज्ञातने इष्टे डे. वक्षी ते ( उ-  
रगवक्रात् केऽ ) सर्पना मुखशकी ( अमृतं केऽ )  
अमृतने इष्टे डे, तथा ते पुरुष, ( विवादात् केऽ )  
कलह थकी ( साधुवादं केऽ ) कीर्ति ने इष्टे डे. वक्षी  
ते पुरुष, ( अजीर्णात् केऽ ) अजीर्ण थकी ( रुगप-  
गमं केऽ ) रोगना नाशनी इष्टा करे डे. वक्षी  
ते पुरुष, ( कालकूटात् केऽ ) विष थकी ( जीवितं  
केऽ ) जीवितव्यने इष्टे डे. अर्थात् जे पुरुष, जीव-  
हिंसा थकी धर्म माने डे, ते पुरुष, आ श्लोकमां  
कहेखा अग्नि वगेरे पदार्थोथकी कमलवन वगेरे  
पदार्थोने इष्टे डे, एम जाणवुं. एटखे ते पुरुष अ-  
ज्ञानी जाणवो. आ श्लोकमां अन्निक्षिप्ति, ए क्रिया-  
पद डे, ते इष्टे डे एवा अर्थमां सर्वत्र योजन करवुं.

टीकाः—सकमलेति ॥ यः पुमान् प्राणिनां वधा-  
त् धर्मं इष्टेत् सः अग्नेः सकाशात् कमलवनं अन्नि-  
क्षिप्ति वांछति । तथा ज्ञास्वदस्तात् सूर्यास्तगमना-  
त् वासरं अन्निक्षिप्ति । तथा उरगवक्रात् सर्पमु-  
खात् अमृतं पीयूषं अन्निक्षिप्ति । पुनः विवादात्  
कलहात् साधुवादं कीर्ति अन्निक्षिप्ति ॥ तथा अ-  
जीर्णात् रुगपगमं रोगस्य अपगमं विनाशं अन्निक्ष-

षति । पुनः कालकूटात् विषात् जीवितं प्राणधारणं  
अन्निक्षेपति । शेषं पूर्ववत् ॥ २७ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—सौवैयया इकतीसा ॥ अग्निमें जैसे  
अरविंद न विदोक्तियत, सूर अथमत जैसे वासर न  
मानियें ॥ सापके वदन जैसे अमृत न उपजत, का-  
लकूट खाये जैसे जीवन न जानियें ॥ कदह करत  
नहि पाइयें सुजस जैसे, बाढत रसांस रोग नास न  
बखानियें ॥ प्रानी वधमांहि तैसे धर्मकी निसानी  
नांही, याहीतें बनारसि विवेक मन आनीयें ॥२७॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्तद्वयम् ॥ आयुर्दीर्घतरं  
वपुर्वरतरं गोत्रं गरीयस्तरम्, वित्तं ज्ञूरि-  
तरं बलं बहुतरं स्वामित्वमुच्चैस्तरम् ॥ आ-  
रोग्यं विगतांतरं त्रिजगतः श्वाष्यत्वमध्ये-  
तरम्, संसारांबुनिधिं करोति सुतरं चेतः  
कृपार्जीतरम् ॥ २८ ॥ इत्यहिंसाप्रक्रमः ॥ ५ ॥

अर्थः—( कृपा केऽ ) जीवदया तेणे करीने (आ-  
र्जु केऽ ) जीनोरे ( अंतरं केऽ ) मध्यज्ञाग जेनो एवुं  
मनुष्यनुं ( चेतः केऽ ) चित्त जे रे, ते शुं करे रे ?  
तो के ( आयुः केऽ ) जीवितने ( दीर्घतरं केऽ )

अधिकाधिक ( करोति के० ) करे डे. तथा वद्वी ते  
 चित्त, ( वपुः के० ) शरीरने ( वरतरं के० ) अति-  
 श्रेष्ठ एवाने करे डे. तथा ते चित्त, ( गोत्रं के० )  
 नाम अने कुल तेने ( गरीयस्तरं के० ) अत्यंत ग-  
 रिष्ट ते उच्चगोत्ररूप एवाने करे डे. तथा वद्वी ते  
 चित्त, ( वित्तं के० ) धनने ( ज्ञूरितरं के० ) अत्यंत  
 वृद्धिंगतने करे डे, वद्वी ते चित्त, ( बद्वं के० ) ब-  
 लने ( बहुतरं के० ) अत्यंतात्यंत एवाने करे डे,  
 तथा वद्वी ते चित्त, ( स्वामित्वं के० ) प्रज्ञुत्व, तेने  
 ( उच्चस्तरं के० ) अत्यंत उत्कृष्ट एटबे सर्वोत्कृष्ट  
 एवाने करे डे. वद्वी ते चित्त, ( आरोग्यं के० ) नी-  
 रोगपणाने ( विगतांतरं के० ) अंतररहित एवाने  
 करे डे, अर्थात् कोइ दिवस रोग न आवे, एवी  
 रीतें करे डे. तथा वद्वी ते चित्त, ( त्रिजगतः के० )  
 त्रण जगतने एटबे त्रिज्ञवनने ( श्वाद्यत्वं के० )  
 वखाणवापणाने ( अद्वेतरं के० ) घणुंज करे डे.  
 तथा वद्वी ते चित्त, ( संसारांबुनिधिं के० ) संसार-  
 रूप समुद्रने ( सुतरं के० ) सुखशी तरवाने शक्ति-  
 मान् करे डे. अर्थात् जे पुरुषनुं चित्त, हिंसा विर-  
 हित डे, ते पुरुषने सर्वं पदार्थं प्राप्त आय डे, ( क-

रोति ) ए क्रियापद जे डे ते करे डे, एवा अर्थमां सर्वत्र योजन करवुं. आ रेकाणे मेघरथ राजानो, अने हरिवल पाराधिनो दृष्टांत ग्रहण करवो ॥७॥ आ पांचमो अहिंसाप्रक्रम संपूर्ण थयो ॥ ५ ॥

**टीका:-**आयुर्दीर्घतरमिति ॥ कृपया आर्द्ध अंतरं मध्यं यस्य ईदृशं चेतः आयुर्जीवितं दीर्घतरं अधिकं करोति । तथा वपुः शरीरं वरतरं अतिप्रधानं करोति । तथा गोत्रं नाम कुलं वा गरीयस्तरं अति गरिष्ठं उच्चैर्गोत्रं रूपं करोति । तथा वित्तं धनं चूरितरं अतिप्रचुरं करोति । तथा बद्धं बहुतरं प्राज्यं करोति । तथा स्वामित्वं प्रज्ञुत्वं उच्चैस्तरं सर्वोत्कृष्टं करोति । तथा आरोग्यं नीरोगत्वं विगतांतरं अंतरहितं करोति । तथा त्रिजगतः त्रिज्ञुवनस्य शक्ताध्यत्वं शक्ताधनीयत्वं अद्येतरं प्रचुरं करोति । तथा संसारांबुनिधिं ज्ञवसमुद्धं सुतरं सुखेन उत्तरितुं शक्यं करोति ॥ अत्र मेघरथराङ्गः हरिवलधीवरस्य च दृष्टांतः ॥७॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्तिना सूरिणा विहितायां तु, हिंसायाः प्रक्रमोऽजनि ॥ ५ ॥ ईति अहिंसाप्रस्तावः ॥ ५ ॥

**ज्ञापाकाव्यः-**कवित्त मात्रात्मक ढंद ॥ दीरघ आ

उ नाम कुल उत्तम, युन संपति आनंद निवास ॥  
 उन्नत विचौ सुगम ज्ञव सागर, तीन चुवन महिमा  
 परगास ॥ चुज बलवंत अनंतरूप डवि, रोगरहित  
 नित ज्ञोग विलास ॥ जिनके चित्त दया तिन्हके  
 रुख, सब सुख होत बनारसि दास ॥ २७ ॥

कथा:- एज ज्ञरतकेत्रमां गजपुरनगरें सुनंद एवे  
 नामें कुखपुत्र रहे थे. तिहाँ धर्मवंत प्राणी जिनदा-  
 सनी साथें तेने महा प्रीति थे. एकदा ते बेहु मित्र  
 वनमां गया, तिहाँ सुराचार्य समान धर्मचार्यने दे-  
 खी नमस्कार कर्यो, तेणे दयामूल धर्मनो उपदेश  
 दीधो, ते उपदेश सांजली युरुने कह्युं के हु मांस-  
 जहणनुं पच्चखाण तो करुं पण माहाराशी महारो  
 कुखाचार केम मूकाशे ? युरुयें कह्युं के धर्मचार  
 खरो समजवो. धर्मनी वेदायें कांश आबंबन न क-  
 रबुं. ते सांजली सुनंदे तरत जीवदयात्रत आदखुं.  
 मांसजहणनो नियम दीधो, सर्व जीव पोताना आ-  
 त्मा सरखा जाणतो डतो सुखें ब्रत पाखे थे. एम  
 करतां घणो काल थयो. एकदा छुर्जिह पड्युं, स-  
 वंत्र धान्य मोघुं थयुं. ते अवसरें सुनंदनी खी क-  
 हेवा लागी के हे स्वामी ! स्वकुटुंब पाखवा माटें

माडबां पकड़ी लश्च आबो. तेने सुनदें कह्युं के हे  
 ज़र्मी ! महारी आगल एवी वातज करवी नही. गमे तेबुं कष्ट प्राप्त थशे, तो पण हुं हिंसा आद-  
 रीश नही, तेनी स्त्रीयें कह्युं के तुं महानिर्दयी गो, कुटुंबने कष्ट करवाशी लोकमां अपयश थशे. एम  
 कही तेनो साक्षो बलात्कारशी तेने माडबां पक-  
 डवा माटें लश्च गयो. तिहां जाल नाखी तेमां मा-  
 डबां आव्यां, पण ब्रत साचववा माटें ते पाडां पा-  
 णीमां नाखी दीधां, घरे खादी हाश्यें आव्यो. वली  
 बीजे दिवसें स्त्रीनी प्रेरणाशी गयो, ते दिवसें पण  
 तेमज माडबां मेल्ही घेर आव्यो, त्रीजे दिवसें स्त्री-  
 नी प्रेरणाशी गयो पण तिहां माडबां पकडतां मा-  
 डबानी पांख जांगी, तेथी त्रास पास्यो. पठी सगां-  
 ने कही अनशन करी मरण पामी राजगृही नग-  
 रीयें नरवर्मराजा राज्य करे ठे, तिहां मणीयार ना-  
 मा शेरनी सुयशा नामें जार्या तेनी कूखें आवी सु-  
 नंदनो जीव पुत्रपणे उपनो. तेनुं दामन्नक एवुं नाम  
 पाढ्युं. ते आठ वर्षनो थयो, तेवारें शेरने घेर मा-  
 हामारीनो उपद्रव थयो, तेथी घरना माणस सर्व  
 मरण पास्यां. आयुने योगे एक दामन्नक जीवतो

रह्यो. राजायें तेने घेर चोकी राखी, दामन्नक कुंधातुर थको घर घर नीख मागवा लाग्यो. एकदा सागरपोत नामा व्यवहारीयाने तिहाँ नीख मागवा माटे आव्यो, एवामाँ ते व्यवहारीयाने घेर साधु वहोरवा आव्या, तेमाँ एक बडेरायें सामुद्रिक लक्षण जोइने कहुँ के आ नीखारी ए शेरना घरनो मालीक आशे ? एवी रीतनी वाणी सागरशेरें जींतने अंतरे सांजली छुःखाक्रांत शइने विचास्युं जे शुं महारा घरनो ए धणी आशे ? तो हवे हुं कोइक उपाय करीने एने मारी नखावुं. एटदें महारी लक्ष्मी महारा पुत्र पौत्रादिक ज्ञोगवे ? एम विचारी कोइक चांमालने घणुं झव्य आपवुं कबूल करीने कहुँ के दामन्नकने मारी नाखजे.

ते चंमाल पण मोदकनी बालच देखाडी छगीने दामन्नकने बाहेर जंगलमाँ लइ गयो, पण तिहाँ ते मुग्ध बालने देखीने चंमाल मनमाँ चिंतववा लाग्यो के अरे आ बालके केवो शेषनो अपराध कस्यो भे के जेथकी शेष्ठे मने शाने मारवानो आदेश दीधो ! अथवा महारा जेवो बीजो महा पापी पण कोण हशे जे झव्यनी बालचे आवा बच्चाने मारवानी

कबुलात आपे. तो हवे ए काम करबुं महारे युक्त  
नथी ! एवो निश्चय करी बालकने कहुं के है मू-  
र्ख ! तुं इहांथी नाशी जा. जो इहां रहीश तो  
तुजने सागरपोत मारी नाखरो ! एवो जय देखा-  
छ्यो, तेथी दामन्नक नाशी गयो, केम के संसारमां  
जीवितव्य सर्वने बद्धन रे ॥ यतः ॥ मरणसमं न छि  
जयं, दारिह समो परिज्ञवो न छि ॥ पंथसमा न छि  
जरा, खुहा समा वेयणा न छि ॥ १ ॥ चंकालें दा-  
मन्नकनी आंगली कापी नीसानी लेइ शेरने आवी  
दीधी. दामन्नक पण लोहीयें जरती आंगली लश्व  
तिहांथी नागो, ते सागरपोताना गोकुलमांहे गयो.  
कर्मयोगें तिहां नंदगोकुलपति अपुत्रीयो हतो, तेणे  
तेने पोताने घरे पुत्र करी राख्यो. दामन्नक अनु-  
क्रमें यौवनावस्था पाभ्यो, शूरवीर थयो.

एकदा प्रस्तावें ते सागरश्रेष्ठी खगोकुलमांहे आ-  
व्यो, तिहां दामन्नकने दीरो, नंदगोकुलीयाने पूब्युं  
के ए कोण रे ? ते जेटबुं वृत्तांत दामन्नकनुं जाण-  
तो हतो तेटबुं तेणे सर्व कहुं; ते सांचली शेर वि-  
चारवा लाग्यो के रखेने साधु वचन अन्यथा न  
आय ! एम चिंतवी जेवो आव्यो तेवोज पागो धेर

जरणी जवा लाग्यो, तेवारें नंद बोल्यो के तमें शीघ्र-  
पणे केम जाउ ढो ? शेरें कहुँ घरे काम ढे, नंद-  
गोवालीयायें कहुँ के महारा पुत्रने घेर मोकबो, ते  
तमारुं कार्य करी आवशे, ते सांचली शेरें कागल  
लखी आप्यो ने कहुँ के ए कागल महारा पुत्रने  
आपजे. दामन्नक पण कागल लेइ चाल्यो. वाटें आ-  
वतां थाकी गयो, तेवारें गाम नजीक कामदेवना दे-  
हरामां जइ सूतो. एवामां तेज शेरनी विषा एवे  
नामें पुत्री ढे, ते पण तिहांज कामदेवनी पूजा क-  
रवा आवी ढे. तेणें दामन्नक सूतेलो दीरो, अने  
तेना अंगरखानी कसें कागल बांधेलो दीरो, ते ल-  
झने वांचवा मांम्यो. तेमां स्वस्ति श्री गोकुलात् समु-  
ददत्तयोग्यं सानंदं विख्युते. ए दामन्नकने अपीत  
पाणीयें शीघ्र विष देजो एमां कांइ विमासण कर-  
शो नही. एवो कागल वांची कन्यायें विचालुं जे  
महारो पिता कागल लखतां निश्चेंशी एक कानो  
चूकी गयो ढे, केम के विषा महारुं नाम ढे ते स्था-  
नकें विष देजो, एवुं जूलथी लखाइ गयुं ढे. पठी  
आंखनुं काजल काढी सखीयें करी कानो दइ वि-  
षने स्थानकें विषा करी पाडो कागल तेनी कसमां

बांधीने कन्या पोताने घरे आवीः पाठ्वाली दाम-  
न्नक पण जाग्यो, ते चालतो चालतो अनुक्रमें शे-  
रने घरे आव्यो, पुत्रने कागद दीधो, तेणं कागद  
वांची तत्काल महोत्सव पूर्वक पोतानी बहेन विषा  
तेने परणावी दीधी) केटखेकदिवसें सागरदत्त पण  
गोकुलशी घेर आव्यो. वात सांजदी मनमां विषाद  
उपन्यो अने चिंतववा लाग्यो जे में शुं विचासुं  
अने इहां शुं नीपनुं ॥ यतः ॥ अन्नं चिंतिङ्गश्च अन्नं  
हुश्च, अन्नं विद्वश्च अन्नं खाश्च ॥ ऊचालु ते थिर थ-  
या, थिरवासो ते जाश्च ॥ १ ॥ में लाज्जने माटे मूळ  
पण खोयो ! तथापि हज्जी कांश उपाय तो करुं के  
जेम ए विपत्ति पामे ? एम चिंतवी शेर वली चां-  
मालने धेर गयो, अने कहुं के अरे पापी चांमाल !  
आते तें शुं कसुं ? जे तें दामन्नकने जीवतो मूळयो ?  
पण अद्यापि जो आटलुं काम करे तो जेटलुं झव्य  
तुं माग, तेटलुं हुं आपुं. तेवारें चांमाल बोख्यो के  
हे स्वामी ! तमें देखाडो, तेने हणुं. तमारी इष्टा  
सफल करुं ? शेरें संकेत कीधो के संध्यानी वेलायें  
हुं जेने मातरने देहरे मोकलुं, तेने हणजे. एम क-  
ही धेर आवी शेर कहेवा लाग्यो के अरे मूर्खों !

हज्जी सुधी तमें मारतनी पूजा नथी कीधी ? काम तो पूजाथी सराडे चडे. ते सांचली पुष्पादिके भाव जरी मातर पूजवा माटें संध्या समयें जमाइने मोक्खो. तेने मार्गे जातां रस्तामां सालो मछ्यो, तेणे पोताना बनेवीने तिहांज उन्नो राख्यो, अने पोतें मातर पूजवा तेनी पासेंथी भाव लइने गयो. ते जेट्टेके देहरामांहे प्रवेश करे ढे तेट्टेके जे खंगिकें तेने खड़ें करी मारी नाख्यो, ते वखतें महोटो कोबाह-हल थयो. लोकें उल्लख्यो जे आ शेरनो पुत्र ढे. ते वात शेरें सांचली शेरने हृदयस्फाट झुःख थयुं. तेथी मरण पाम्यो. पठी राजाना आदेशथी दामन्नक घरनो धणी थयो. पुण्यानुसारें लक्ष्मीवान् थयो, साते क्षेत्रें धन वावरवा लाग्यो, अने त्रिवर्ग साधन करतो सुखमां रहे ढे.

एकदा कोइ एक जाटें आवीने दामन्नक आगल गाथा कही ते आ प्रमाणेः— तस्स न हवइ छुरुं, कयावि जस्सद्वि निम्मलं पुष्टं ॥ अस्तुघरठं द्वं, चुंजइ असो जणो जेण ॥ १ ॥ इति ॥ ए गाथा सांचली दामन्नकें ते जाटने त्रण लक्ष झव्य आप्युं, ते देखी लोकोने महोटो द्वेष उपज्यो. तारें

( १६४ )

राजायें तेढी पूँछुं के ऐटलुं महोडुं दान तें केम  
दीधुं ? तेवारें राजा आगल सर्व पोतानी वातनी  
उत्पत्ति कही। ते सांजली राजायें दामन्नकने नगर-  
शेर कस्यो। अनुक्रमें दामन्नक दयाधर्म आराधी  
देवलोकें गयो, माटें हे जन्मजीवो ! तमें दामन्नक-  
नी पेरें दया दान थो, जेम सुखश्रेय पामो ॥ २७ ॥  
इति जीवदया उपर दामन्नक कथा ॥

हवे चार श्लोकें करीने सत्यबोलवाना  
प्रजावने कहे छे.

विश्वासायतनं विपत्तिदखनं देवैः कृताराध-  
नम्, मुक्तेः पथ्यदनं जखान्निशमनं व्याघ्रो-  
रगस्तंजनम् ॥ श्रेयःसंवननं समृद्धिजननं  
सौजन्यसंजीवनम्, कीर्तेः केलिवनं प्रजाव-  
ननं सत्यं वचः पावनम् ॥ २८ ॥

अर्थः—हे जन्म जीवो ! तमो ( सत्यं केण ) स-  
त्य एवुं अने प्रियकारी तथा हितकारी एवुं ( वचः  
केण ) वचनने बोलो। ए सत्यवचन केहवुं छे ? तो  
के ( विश्वासायतनं के ) विश्वासनुं आयतन एटले  
घर छे। अर्थात् जे पुरुष सत्यवचन बोले छे, ते ज-

गतमां विश्वासपात्र आय ढे, वद्दी केहबुं ढे ? तो के ( विपत्तिदलनं के० ) आपत्तिने नाश करनारुं ढे, अर्थात् जे पुरुष सत्य वक्ता होय, ते आपत्तिने पामे नहिं. वद्दी ते केहबुं ढे ? तो के ( देवैः के० ) देवताउयें ( कृताराधनं के० ) कस्युं ढे आराधन एटबे सेवन जेनुं एबुं ढे, अर्थात् सत्यवक्ता पुरुषनुं देवताउ पण सेवन करे ढे. तथा ते सत्यवचन केहबुं ढे ? तो के ( मुक्तेः के ) मुक्ति जे सिद्धि तेना ( पथि के० ) मार्गने विषे ( श्रद्धनं के० ) संबल ढे, अर्थात् जेम कोइ पुरुष, आमांतरें जाय, तेने रस्तामां जातुं वगैरे संबल जोइयें तेम मुक्तिमार्गमां जनारने सत्यवाक्य तेज संबल समान जाणबुं. एटबे जे सत्यवक्ता आय, तेने मुक्तिप्राप्ति आय. वद्दी ते सत्यवचन केहबुं ढे ? तो के ( जलाभिशमनं के० ) जल अने अग्नि तेने उपशमन करनारुं ढे, अर्थात् सत्यवक्ता पुरुषने जल अग्निनो जय मटे ढे. वद्दी ते सत्यवचन केहबुं ढे ? तो के ( व्याघ्रोरगस्तंजनं के०) व्याघ्रजे सिंह तथा उरगजे सर्प तेने ( स्तंजनं के० ) स्तंजन करनारुं ढे, अर्थात् सत्यवक्ता पुरुष, सिंह अने सर्प तेनो स्तंजनकारक आय ढे- तथा वद्दी ते स-

( १६६ )

सत्यवाक्य केहबुं डे ? तो के ( श्रेयः केऽ ) कल्याण जे मोहू तेनुं ( संवननं केऽ ) वशीकरण डे. अर्थात् सत्यबोलनार पुरुषने मोहू जे डे, ते वश आय डे. वली ते सत्यवचन केहबुं डे ? तो के ( समृद्धिजननं केऽ ) संपत्तिने उत्पन्न करनारुं डे, अर्थात् सत्यवाणीवालाने संपत्ति खतः प्राप्त आय डे. वली ते सत्यवचन केहबुं डे ? तो के ( सौजन्य केऽ ) सुजनपणानुं ( संजीवनं के ) उत्पन्न करनारुं डे, अर्थात् सत्यवक्ता पुरुषने सुजनता प्राप्त आय डे, वली ते सत्यवचन केहबुं डे ? तो के ( कीर्त्तेः केऽ ) यशनुं ( केलिवनं केऽ ) क्रीडा करवानुं बन डे. अर्थात् सत्यवक्ता पुरुष जे डे, ते यशस्वी आय डे. वली ते सत्यवचन केहबुं डे ? तो के ( प्रज्ञावज्ञवनं केऽ ) प्रज्ञाव जे महिमा तेनुं यह डे. अर्थात् सत्यवक्ता पुरुषनो महिमा पण अधिक होय डे, वली ते सत्यवचन केहबुं डे ? तो के ( पावनं केऽ ) पवित्र करनारुं डे. अर्थात् सत्यवक्ता पुरुष निरंतर पवित्रजगणाय डे. माटें ए सत्यवचन सर्वथा सर्व मनुष्योये बोलबुं ॥ ४४ ॥

टीका:- अथ सत्यवचनस्य प्रज्ञावं कथयति ॥

विश्वासायतनमित्यादि ॥ ज्ञो ज्ञव्याः सत्यं वचो हि-  
 तं प्रियं वचनं वदंत्विति शेषः ॥ कथं चूतं सत्यं व-  
 चः ? विश्वासायतनं विश्वासस्य आयतनं स्थानं ।  
 पुनः कथं चूतं सत्यं वचः विपत्तिदलनं । विपत्तीनां  
 आपदानां फेटकं । पुनः कथं देवैः सुरैः कृताराध-  
 नं । कृतं आराधनं सेवनं यस्य तत् । पुनः मुक्तेः  
 सिद्धेः पथि मार्गे अदनं संबद्धं । तथा जलाम्निशम-  
 नं । जलाम्न्योउपशामकं । पुनः व्याघ्रोरगस्तंजनं व्या-  
 ग्राणं सिंहानां उरगाणं सर्पणां च स्तंजनकारकं ।  
 पुनः श्रेयसो मोहस्य कल्याणस्य वा संवननं वशी-  
 करणं । पुनः समृद्धिजननं समृद्धीनां संपदां संपा-  
 दकं । पुनः सौजन्यसंजीवनं सुजनतायाः संजीवनं  
 समुत्पादकं । तथा कीर्त्तर्थशसः केलिवनं क्रीडारामं ।  
 पुनः प्रज्ञातज्ञवनं प्रज्ञावस्य महिम्नो गृहं । पुनः  
 पावनं पवित्रकारकमित्यर्थः ॥ ४४ ॥

ज्ञाषाकाढ्यः—ठप्पय ठंद ॥ गुननिवास विश्वास,  
 वास दारिद ऊख खंमन ॥ देव आराधन जोग,  
 मुगति मारग मुख मंमन ॥ सुजस केलि आराम,  
 धाम सज्जन मन रंजन ॥ नाग वाघ वसिकरन, नी-  
 र पावक जय जंजन ॥ महिमा निधान संपति सद-

न, मंगल नीति पुनीत मग ॥ सुख रासि बनारसि  
दास ज्ञनि, सत्य वचन जयवंत जग ॥ ४४ ॥

॥ शिखरिणीदृत्तम् ॥ यशो यस्मान्नस्मीज्ञव-  
ति वनवह्नेश्चिव वनम्, निदानं छःखानां यदव-  
निरुहाणां जखमिव ॥ न यत्र स्याङ्गायात-  
प इव तपःसंयमकथा, कथंचित्तन्मिथ्याव-  
चनमन्निधत्ते न मतिमान् ॥ ३० ॥

अर्थः—( मतिमान् केऽ ) बुद्धिमान् पुरुष, ( कथं-  
चित् केऽ ) कोइ वखत कष आवे ठते पण ( तन्मि-  
थ्यावचनं केऽ ) ते मिथ्यावचन एटले असत्य व-  
चन तेने ( न अन्निधत्ते केऽ ) नहिं बोद्ध्यो डे ते  
केम नशी बोलता ? तो के ( यस्मात् केऽ ) जे मि-  
थ्यावचनथकी ( यशः केऽ ) कीर्ति, ते ( जस्मीज्ञ-  
वति केऽ ) जस्म थाय डे, अर्थात् नाश पामे डे. के-  
नी परें ? तोके ( वनवन्हेः केऽ ) दावाग्निथकी  
( वनमिव केऽ ) वनज जेम. अर्थात् वनाग्नि थकी  
जेम वन दाह पामे डे तेम मिथ्यावचनथकी की-  
र्ति नाश पामे डे. वढी ते मतिमान् पुरुष क्यारें प-  
ण केम मिथ्या वाक्य नशी बोलता ? तो के ( यत्

केऽ) जे मिथ्यावचन ( डुःखानां केऽ ) डुखोनुं ( निदानं केऽ ) कारण ढे, केनी पेरें ? तोके ( अवनिरुहाणां केऽ ) वृक्षोनुं ( जलमिव केऽ ) जल जेम कारण ढे. अर्थात् जेम वृक्षोनुं कारण जलढे तेम डुःखोनुं कारण असत्यज ढे. वद्वी ते मतिमान् पुरुष क्यारें पण केम मिथ्यावाक्य नशी बोक्ता ? तो के ( यत्र केऽ ) जे मिथ्यावचनने विषे ( तपःसंयमकथा केऽ ) तपनी अने चारित्रिनी कथा पण ( न केऽ ) नहि ( स्यात् केऽ ) होय. केनी पेरें ? तो के ( आतपे केऽ ) सूर्यना तडकाने विषे ( ग्रायाश्व केऽ ) भाया जे ढे तेम अर्थात् असत्यवाक्यथकी आ श्लोकमां कहेलां कीर्त्यादिकनो नाश आय ढे केनी पेरें ? तो के आ श्लोकमां कहेला वनामि वगेरेनी पेरें जाणबुं. माटें हे जन्मयजनो ! सत्यज बोक्तुं, परंतु असत्य नज बोक्तुं ॥ ३० ॥

**टीकाः—**यशो यस्मादिति ॥ मतिमान् बुद्धिमान् पुमान् कथंचित् कष्टेऽपि सति तत् मिथ्यावचनं असत्यवचनं न अन्निधत्ते न जद्वपति । तत् किं ? यस्मान्मिथ्यावचनाद्यशः कीर्त्तिर्जस्मीन्नवति विनश्यति । कस्मात् किमिव ? वनवन्हेदर्दावाग्रेर्वनमिव यथा दा-

वानबात् वनं चस्मीच्चवति । तथा पुनर्यन्मिथ्या  
वचनं दुःखानां निदानं कारणं । केषां किमिव ?  
अवनिरुहाणां वृक्षाणां कारणं जबमिव । यथा जदं  
वृक्षाणां कारणं तथा पुनर्यत्र मिथ्यावचने तपः  
संयमकथा तपश्चारित्रयोर्वार्ताऽपि न । कस्मिन्  
केव ? आतपे सूर्यातपे छाया इव यथाऽतपे छाया  
न स्यात् तथा ॥ ३० ॥

ज्ञाषाकाव्यः—कवित्त मात्रा० ॥ जोज समान करै  
निज कीरति, ज्यौं वन अगनि दहै वन सोइ ॥ जा-  
के संग अनेक दुःख उपजत, बढे विरख ज्यौं सी-  
चत तोइ ॥ जामें धरमकथा नहिं सुनियत, ज्यौं र-  
विबीच गांह नहिं होइ ॥ सो मिथ्यात वचन वा-  
नारसि, गहत न तांहि विचहन कोइ ॥ ३० ॥

वंशस्थवृत्तम् ॥ असत्यमप्रत्ययमूलकार-  
णम्, कुवासनासद्भ समृष्टिवारणम् ॥ वि-  
पन्निदानं परवंचनोर्जितम्, कृतापराधं कृति-  
न्निर्विवर्जितम् ॥ ३१ ॥

अर्थः—( कृतिन्निः केण ) पंक्तितो जे तेमणे ( अ-  
सत्यं केण ) असत्य बोलबुं ते ( विवर्जितं केण )

त्याग करेखुं रे. ते शा माटें त्याग करेखुं रे ? तो के ते असत्य वाक्य जे रे ते ( अपत्यय केण ) अविश्वास तेनुं ( मूलकारणं केण ) मूलकारण रे. वली केहबुं रे ? तो के ( कुवासना केण ) माठी वासना जे पापबुद्धि तेनुं ( सद्ग्रह केण ) घर रे. वली केहबुं रे ? तो के ( समृद्धि केण ) लक्ष्मी तेने ( वारणं केण ) वारनारुं रे. वली केहबुं रे ? तो के ते ( विपन्निदानं केण ) कष्टनुं करनारुं रे. वली केहबुं रे ? तो के ( परवंचनोर्जितं केण ) अन्यजनने ठगवासां अति बलवान् रे. वली केहबुंरे ? तो के ( कृतापराधं केण ) कख्यो रे अपराध जेणे एवुं रे ? ते माटे सुझजनोये अति निंद्य एवुं आसत्य वाक्य बोलबुं नहिं ॥३१॥

टीका:-पुनरसत्यवचनस्य दोषानाह ॥ असत्य-मिति ॥ इति कारणात् कृतिज्ञः पंक्तितैः असत्यं कूटं विशेषेण वर्जितं परिहृतं । यतोऽसत्यं अप्रत्ययमूलकारणं अविश्वासस्य मूलके हेतुः । पुनः कुवासनायाः पापबुद्धेः सद्ग्रह यहं । पुनः समृद्धिवारणं समृद्धेलव्याः वारणं निराकरणं । पुनर्विपन्निदानं विपदां कष्टानां निदानं कारणं । पुनः परवंचनोर्जितं परेषां वंचने विप्रतारणे ऊर्जितं बिक्षुषं । पुनः

( १७८ )

कृतापराधं कृतागसं कृतोऽपराधो येन असत्येन त-  
कृतापराधं श्रात् एव असत्यवचनं कृतिज्ञः पंक्ति  
तैर्न वक्तव्यं ॥ ३१ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—रोडकब्बंद ॥ कुमति कुरीति निवा-  
स, प्रीति परतीति निवारन ॥ रिङ्कि सिङ्कि सुख-  
हरन, विपति दारिङ्कि डुःख कारन ॥ परवंचनि  
उतपत्ति, सहज अपराध कुब्बन ॥ सो यह मिथ्यात  
वचन, नहिं आदरत विच्छन ॥ ३१ ॥

वद्वी पण सत्यवचननो प्रज्ञाव कहे डे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ तस्याऽग्निर्जलम  
र्णवः स्थलमर्मित्रं सुराः किंकराः, कांतारं  
नगरं गिरिर्गृहमहिर्माल्यं मृगार्मिर्गः ॥ पा-  
तालं बिलमस्त्रमुत्पलदलं व्यालः शृगालो  
विषम्, पीयूषं विषमं समं च वचनं सत्यां-  
चितं वक्ति यः ॥ ३२ ॥ अनृतप्रक्रमः ॥ ६ ॥

अर्थः— ( यः कें ) जे पुरुष, (सत्यांचितं कें)  
सत्ययुक्त एवुं (वचनं कें) वचन जे तेने (वक्ति कें)  
बोले डे, ( तस्य कें ) ते पुरुषने ( अग्नि कें )  
अग्नि जे डे, ते ( जलं कें ) जल सरखो थाय डे.

( १७३ )

वली ते पुरुषने ( अर्णवः केण ) समुद्र, ते ( स्थलं केण ) द्वीप आय डे. वली ते पुरुषने ( अरिः केण ) शत्रु ते ( मित्रं केण ) मित्रतुल्य आय डे. तथा ते पुरुषने ( सुराः केण ) देवताऽर्ज ते ( किंकराः केण ) किंकरतुल्य आय डे. वली ते पुरुषने ( कांतारं केण ) वन ते ( नगरं केण ) नगर तुल्य आयडे वली ते पुरुषने ( गिरि केण ) पर्वत, ते ( घृहं केण ) घर समान आय. डे. वली तें पुरुषने ( अहिः केण ) सर्प, ( माद्यं केण ) पुष्पमाला तुल्य आय डे. वली ते पुरुषने ( मृगारिः केण ) मृगनो अरि जे सिंह ते ( मृगः केण ) हरिण समान आय डे. तथा ते पुरुषने ( पातालं केण ) रसातल, ते ( विलं केण ) ठिक्क तुल्य आय डे. वली ते पुरुषने ( अस्त्रं केण ) अस्त्र ते, ( उत्पलदलं केण ) कमलपत्र समान आय डे. वली ते पुरुषने ( व्यालः केण ) मदोन्मत्त हस्ती ते ( शृगालः केण ) शीयाल जेवो आय डे. वली ते पुरुषने ( विषं केण ) विष ते ( पीयूषं केण ) अमृततुल्य आय डे. तथा ते पुरुषने ( विषमं केण ) विषम स्थानक ते ( समं केण ) सरखुं आय डे. ( च केण ) चकार पादपूर्णार्थ डे. एट्टेआ श्लोकमां ज्ञाव एट्टेओज डे के सत्यवक्ता

पुरषने सर्वं सुखरूपं शाय डे, माटे सत्यज बोलबुं  
॥ ३२ ॥ आ रहुं मिथ्यावचन प्रकरण संपूर्ण अयुं॥

टीका:-अथ सत्यप्रज्ञावं दर्शयति ॥ तस्याग्नि-  
रिति ॥ यः पुमान् सत्यांचितं सत्ययुक्तं वचो वचनं  
वक्ति ब्रूते । तस्य पुंसोऽग्निर्वन्धिः सत्यप्रज्ञावाङ्कालं ।  
तथाऽर्णवः समुद्रः स्थलं स्यात् । तथा अरिः शत्रु-  
र्मित्रं स्यात् । पुनः सुराः देवाः किंकराः सेवका आ-  
देशकारिणः स्युः । पुनः कांतारमरणं नगरं स्यात् ।  
तथा गिरिः पर्वतो यहं स्यात् । पुनरहिः सप्तो माछ्यं  
स्त्रक्षं स्यात् । तथा मृगारिः सिंहो मृगो हरिण इव  
स्यात् । तथा पाताळं रसाताळं बिलं बिलरूपं स्या-  
त् । तथाऽस्त्रं शस्त्रं उत्पलदलं कमलपत्रसदृशं स्यात् ।  
तथा व्याखो दुष्टगजः शृगाल इव स्यात् । पुनर्विषं  
हालाहलं पीयूषं अमृतं स्यात् । तथा विषमं संक-  
टं स्थानं संपद्मूपं स्यात् सत्यप्रज्ञावतः । अतः सत्यं  
वक्तव्यं अत्र वसुराज्ञः हीरकदंबकोपाध्यायपुत्रपर्व-  
तकरनारदयोर्दृष्टांतः सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां  
हर्षकीर्तिना ॥ सूरिणा विहितायां तु, मिथ्यावचन-  
प्रक्रमः ॥ ३२ ॥ इति षष्ठो मिथ्यावचनप्रक्रमः ॥६॥

ज्ञाषाकाव्यः—सवैया इकतीसा ॥ पावकते जल

होइ वारिधितें थल होइ, शस्त्रतें कमल होइ ग्राम  
होइ बनतें ॥ कांतार नगर होइ पर्वततें घर होइ,  
वासवतें दास होइ हेतू छुरजनतें ॥ सिंहतें कुरंग  
होइ व्याल स्याल अंग होइ, विषतें पियूष होइ  
माला अहि फनतें ॥ विषमतें समहोइ संकट न  
व्यापै कोइ, एते गुन होइ सत्यवादी दरसनतें ॥३८॥

कथा:- शुक्किमनी नगरीये अज्जिचंद्र नामा रा-  
जा तेनो वसु नामे पुत्र डे, ते न्हानपणथी सत्यव-  
चननो बोलनार डे, ते नगरीमाँ कीरकदंबक उपा-  
ध्याय सर्व शास्त्रनो जाण डे, तेनो पुत्र पर्वतक नामे  
डे, ते स्वज्ञावें कुटिलाशयवालो डे, (एक पर्वतक बी-  
जो वसुराजा अने एक त्रीजो नारद ए त्रणे की-  
रकदंबक उपाध्याय पासें जणे डे) अन्यदा ते त्रणे  
शिष्य अगासीमाँ सूता डे उपाध्याय अगासीमाँ  
बेरो जागे एवामाँ आकाशमार्गे बे चारण मुनियो  
वातो करता चाह्या जाय डे, तेमांथी एक मुनि  
बोह्यो के आ त्रणमाँ बे तो नरकगामी डे, अने  
एक स्वर्गगामी डे. ए वाणी सांचली उपाध्याय उ-  
द्धेग पास्या. पठी कोण स्वर्गगामी अने कोण नर-  
कगामी डे ? तेनी परीक्षा करवा माटें जूदा जूदा

लोटना त्रण कुर्कुट बनावीने त्रणे शिष्यने दीधा, अने कहुं के जिहां कोइ देखे नहिं, तिहां एने हणी आवजो. तेमां वसुराजा अने पर्वतक ए बे जण तो जंगलमां जइ कोइ एकांत जग्यायें कुकडानो विनाश करीने आव्या, अने नारदें तो घणां स्थानक जोयां पण क्यांहि कोइ न देखे एबुं स्थानक दीरुं नहिं. तेवारें कुकडाने पाठो आण्यो. उपाध्यायें पूळ्युं के केम पाठो लाव्यो ? तेवारें नारद बोढ्यो के देव, दानव, निगोद अथवा ज्ञानी जिहां तिहां देखी रह्या डे तेमज महारो आत्मा पण देखतो हतो, माटें शी रीतें तमारी आज्ञानो जंग करी एनो विनाश करुं ! ते सांचद्वी उपाध्यायें चिंतव्युं के ए स्वर्गगामी डे अने पहेला बे नरकगामी डे. अनुकर्में उपाध्याय आयुष्य पूर्ण करी देवदोके गया. पठी तेने पाटे पर्वतक बेठो अने वसुने राज्य मढ्युं, नारद पोताने घेर गयो.

एकदा एक आहेडीयें वनमां जइ कोइ मृगनी उपर बाण नास्यो, आगल जइ जोयुं तो मृगने स्थानके स्फाटिकनी शिखा दिरी, तेणे राजाने आवी कहुं के तरत राजायें ते शिखा ढानी मगावी,

पीरिका मंकावी, उपर सिंहासन आपी पोतें बेस-  
वा माँझ्युं, लोक सर्वे जाणवा दाख्याके वसुराजा  
सत्यवचनने बखें करी अधर बेसे ढे, तेथी सिमाडी-  
या राजा प्रमुख सेवामां रह्या, महोटो प्रतिष्ठावंत  
सत्यवादी एवो वसुराजा कहेवाणो.

एकदा पर्वतकने मलवा माटें नारद कोश ग्रामांत-  
रथी तिहां आव्यो, पोतपोतामां मद्दीने बेगा, ते स-  
मयें शिष्यने जणावतां अज शब्दनो अर्थ डागनो  
होम करवो एवो पर्वतें कह्यो, तेवारें नारद बोख्यो  
के गुरुयें तो आपणने जणावतां अज शब्दनो अर्थ  
त्रण वर्षनी जूनी ब्रीहि कही ढे. तो तमें अज शब्द-  
नोअर्थ डाग केम कहो ढो? पर्वतें ना कही. एम पोत-  
पोतामां विवाद करतां जे खोटो ररे, तेनी जीज्ज ढे-  
दी नाखवी. एवी प्रतिज्ञा करी. ते वखत पर्वतकनी  
मातायें जाण्युं जे नारद कहे ढे, ते वात खरी ढे  
माटे हुं जश वसुराजानी पासेंथी पुत्रज्ञिहा मागी  
बेडं. कारण के साही दाखल बे जण वसुराजा पा-  
सें जवाना ढे, एबुं विचारी वसुराजा पासें जश्ने  
कालावाला कीधा, अनुक्रमें ते बेहु जण वाद कर-  
तां वसुराजा पासें अर्थ पूठवा आव्या. राजायें पण

मिश्र वचन बोक्षीने कह्युं के अज शब्दनो अर्थ  
बोकडो पण आय डे, अने नेदांतरें त्रीहि पण आय  
डे. एवुं सांजखतांज तत्क्षण देवतायें पादुप्रहारें  
करी वसुराजाने सिंहासनथी नीचें पाडी मारी ना-  
रुयो, विपत्ति पामी मरीने नरकें गयो. पाठ्य पर्वत  
पण आयु पूर्ण थये नरकें गयो. नारद शीष पाक्षी  
सत्यवचनना प्रजावें देवताओंके गयो. ए सत्यवचन  
उपर वसुराजानो दृष्टांत कह्यो ॥ ३२ ॥

हवे अदत्तादान ब्रत कहे डे.

मालिनीवृत्तम् ॥ तमन्निलषति सिद्धिस्तं दृ-  
णिते समृद्धि, स्तमन्निसरति कीर्तिमुच्यते तं  
नवार्तिः ॥ स्पृहयतिसुगतिस्तं नेद्रतेषुर्गति-  
स्तम्, परिहरति विपत्तं योनगृह्णात्यदत्तम् ॥ ३३ ॥

अर्थः—(यः केऽ) जे पुरुष, ( अदत्तं केऽ) नदीधे-  
बुं एवुं जे पारकुं वित्त तेने ( नगृह्णाति केऽ ) न ग्र-  
हण करे डे, ( तं केऽ ) ते पुरुषने ( सिद्धिः केऽ )  
मुक्ति, ( अन्निलषति केऽ ) इड्डा करे डे. वक्षी ( तं-  
केऽ ) ते पुरुषने ( समृद्धिः केऽ ) चक्रित्वादि संप-  
त्ति ते ( वृणीते केऽ ) वरे डे. तथा ( तं केऽ ) ते

पुरुषप्रत्यें ( कीर्तिः केण ) यश ते ( अन्निसरति केऽ )  
आवे डे. तथा वक्षी ( तं केण ) ते पुरुषने ( ज्ञवा-  
र्त्तिः के ) संसारव्यथा ( मुच्यते केण ) मूके डे. ए-  
टद्वे त्याग करे डे. तथा ( सुगतिः केण ) देवमनु-  
ष्यरूपगति, ते ( तं केण ) ते पुरुषने ( स्पृहयति  
केण ) स्पृहा करे डे. एटद्वे वांडा करे डे. तथा ( ऊ-  
र्गतिः केण ) नरकतिर्यगादिक गति ( तं केण ) ते  
पुरुषने ( नेहते केण ) नशी जोती. तथा ( विपत्  
केण ) आपत्ति ते ( तं केण ) ते पुरुषने ( परिहरति  
केण ) त्याग करे डे. अर्थात् अदत्त वस्तुने जे जीव  
ग्रहण करतो नशी, तेने सर्वसुख प्राप्तयायडे ॥ ३३ ॥

**टीका:**—अथादत्तादानब्रतमाह ॥ तमन्त्रीति ॥ यः  
पुमान् अदत्तं अवितीर्णप्रस्तावात् परवित्तं किंचिद्भ-  
स्तु वा न यद्वाति तं पुरुषं सिद्धिमुक्तिरन्निलषति  
वांडति । पुनस्तं समृद्धिशक्रित्वादि संपत् वृणीते ।  
तथा कीर्तिर्यशस्तं अन्निसरति प्रत्यागच्छति । ज्ञवा-  
र्त्तिः संसारपीडा तं मुच्यते त्यजति । तथा सुगति-  
देवमनुष्यरूपा तं स्पृहयति वांडति । तथा ऊर्गतिर्नर-  
कतिर्यग्रूपा तं पुरुषं नेहते न पश्यतिडं विपद्व्यापद् तं  
परिहरति त्यजति ॥ तं कं ? यो अदत्तं न यद्वाति ॥ ३३ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—रोडकरंद ॥ ताहि रिद्धि अनुसरे,  
सिद्धि अज्जिलाष धरे मन ॥ विपति संग परिहरे,  
जगतविस्तरे सुजसधन ॥ ज्ञव आरति तिहिं तज्जै,  
कुगति वंडे न एकठिन ॥ सो सुरसंपति लहै, गहै  
नहिं जो अदत्त धन ॥ ३३ ॥

वद्धी पण अदत्तादानना परम गुणो कहे डे.

शिखरिणीवृत्तम् ॥ अदत्तं नादते कृतसुकृत-  
कामः किमपि यः, शुन्नश्रेणिस्तस्मिन् वस-  
ति कलहंसीव कमले ॥ विपत्तस्माहूरं ब्रज-  
ति रजनीवांबरमणे, विनीतं विद्येव त्रिदि-  
वशिवलद्मीर्जजति तम् ॥ ३४ ॥

अर्थः— ( यः के० ) जे पुरुष, ( कृतसुकृतकामः  
के० ) कस्यो डे सुकृत विषे अज्जिलाष जेणे एवो  
भतो ( किमपि के० ) काँहींपण ( अदत्तं के० ) न  
हीधेला एवा पदार्थने ( नादते के० ) न ग्रहण क-  
रे डे, ( तस्मिन् के० ) ते पुरुषने विषे ( शुन्नश्रेणि:  
के०) कव्याणनी पंक्ति ( वसति के० ) वसे डे, केनी  
येरें ? तो के (कमले के०) कमलने विषे (कलहंसीव  
के० ) राजहंसीनी येरें रहे डे. वद्धी ( तस्मात् के० )

ते पुरुषथकी ( विपत् केण ) विपत्तियो ते ( दुरं केण )  
दूरने विषे ( ब्रजति केण ) जाय डे केनी पेरें ? तो  
के ( अंबरमणेः केण ) सूर्यथकी ( रजनीव केण )  
रात्रिज जेम नाश पामे डे तेम. अर्थात् जेम रात्रि  
सूर्यथकी नाश पामे डे तेम जाणबुं तथा ( तं केण )  
ते पुरुषने ( त्रिदिवशिवलक्ष्मीः केण ) स्वर्गापवर्गनी  
लक्ष्मी जे डे, ते ( चजति केण ) सेवे डे. केनी पेरें ?  
तो के ( विनीतं केण ) नम्रपुरुषने ( विद्येव केण )  
विद्याज जेम आवे डे, अर्थात् विद्या जेम विनय-  
संपन्न पुरुषने प्राप्त थाय डे, तेम स्वर्गापवर्गनी लक्ष्मी  
पण ते पुरुषने प्राप्त थाय डे ॥ ३४ ॥

**टीका:-**—नूयोप्यऽदत्तादानस्य परमगुणानाह ॥ अ-  
दत्तमिति ॥ यः पुमान् कृतः सुकृते पुण्येऽनिकाषो  
येन ईदृशः सन् अदत्तं परकीयं किमपि वस्तु न  
आदत्ते न गृह्णाति तस्मिन् पुंसि शुचश्रेणिः कद्या-  
णपरंपरा वसति निवासं करोति । कस्मिन् केव ?  
कमले कलहंसीव । यथा कमले राजहंसी वसति  
तथा । पुनस्तस्मात् पुरुषात् विपत् कष्टं दूरं ब्रजति  
द्वूरे याति कस्मात् केव ? अंबरमणेः सूर्यात् रजनी-  
व । यथा सूर्यङ्गात्रिद्वूरे ब्रजति तथा । पुनस्त्रिदि-

( ३७ )

वशिवयोः स्वर्गपत्रगयोर्लक्ष्मीः श्रीस्तं नजति सेवते ।  
कं केव ? विनीतं विद्येव यथा विद्या विनीतं विन-  
यान्वितं पुरुषं नजति विद्या आगडति तथा ॥ ३४ ॥

नाषाकाव्यः— कवित्त मात्रा० ॥ ताकों मिलैँ दे-  
वपद शिवपद, ज्यौं विद्याधन लहै विनीत ॥ तामें  
आश रहै शुच पंकति, ज्यौं कबहंस कमल सोची-  
त ॥ तांहि विद्योकि छुरै छुख दारिद, ज्यौं रवि आ-  
गम रथनि वितीत ॥ जो अदत्त धन तजत बनार-  
सि, पुन्नवंत सो पुरुष पुनीत ॥ ३४ ॥

इवे जे बुद्धिमान् पुरुष अदत्तनो त्याग करे  
ठे, तेपण कहे ठे.

॥ शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ यन्निर्वर्त्तितकी-  
र्तिधर्मनिधनं सर्वागसां साधनम्, प्रोन्मील-  
द्धधबंधनं विरचित क्षिष्टाशयोद्घोधनम् ॥ दौ-  
र्गत्यैकनिबंधनं कृतसुगत्याश्लेषसंरोधनम्,  
प्रोत्सर्पत्प्रधनं जिघृदति न तर्षीमान-  
दत्तं धनम् ॥ ३५ ॥

अर्थः— ( धीमान् केण ) विद्यान् पुरुष, ( तत्  
केण ) ते ( अदत्तं केण ) परकीय ( धनं केण ) वस्तु

जे तेने ( नजिघृक्षति के० ) ग्रहण करवाने इष्टता  
नथी. ते केबुं अदत्त रे ? तो के ( यत् के०) जे (नि-  
र्वर्त्तित के० ) कस्युं रे कीर्त्तिधर्म ( निधनं के०) की-  
र्त्ति, अने धर्मनो नाश जेणे एबुं रे. वक्षी ( सर्वांग-  
सां के० ) सर्व अपराधोनुं ( साधनं के० ) साधन  
एट्के हेतुरूप रे. वक्षी ( प्रोन्मीलत् के० ) प्रगट  
रे ( वधबंधनं के० ) वध जे लाकडी वगेरेशी ताडन  
तथा बंधन जे रज्ज्वादिकथी बंधन ते जेनेविषे. व-  
क्षी केबुं रे? तो के ( विरचित के० ) कस्युं रे ( क्लि-  
ष्टाशय के० ) दुष्ट अंतःकरणनुं ( उद्धोधनं के० )  
प्रगटपणुं जेणे अर्थात् दुष्टविचारनुं करवावाल्लुं रे.  
वक्षी ते केहबुं रे? तो के ( दौर्गत्य के० ) दुर्गतिप-  
णुं तेनुं ( एकनिबंधनं के० ) अद्वितीय कारणज्ञूत  
रे. वक्षी केहबुं रे ? तो के ( कृत के० ) करेल्लुं रे  
( सुगति के०) सारी गति तेनुं जे ( आश्वेष के० )  
मखबुं तेनुं ( संरोधनं के० ) निवारण जेणे एबुं रे.  
वक्षी केहबुं रे? तो के ( प्रोत्सर्पत् के० ) प्रसरतुं रे ( प्र-  
धनं के० ) मरण जे थकी एबुं रे. अर्थात् एतावश दुः  
खकारि जे अदत्त तेनी पंमितो इष्टा करता नथी ॥३५॥

टीका:- व्यतिरेकेणाह ॥ यन्निर्वर्त्तितेति ॥ धी-

मान् विद्वान् पुमान् तत् अदत्तं धनं परकीयं वस्तु  
 न जिघृक्षति ग्रहीतुं नेष्टति । तत् किं ? यत् अदत्तं  
 निर्वर्त्तिकीर्तिधर्मनिधनं स्यात् निर्वर्त्तितं कृतं कीर्तिध  
 र्मयोर्निधनं विनाशो येन तत् । तथा सव्वागसां साधनं  
 सर्वाणि च तानि आगांसिच सर्वागांसि तेषां सव्वा-  
 पराधानां साधनं हेतु स्यात् । पुनः प्रोन्मीलद्वधबंधनं  
 वधो लकुटादिताडनं बंधनं रज्जवादिना बंधनं प्रो-  
 न्मीलंति प्रकटीज्ञवंति वधबंधनानि यत्र तं । पुन-  
 र्विरचितक्षिष्ठाशयस्य डुष्टान्निप्रायस्य उद्वोधनं प्र-  
 कटनं येन तत् । पुनर्दौर्गत्यैकनिबंधनं दौर्गत्यस्य दा-  
 रिङ्गस्य एकं अद्वितीयं निबंधनं कारणं । पुनः कृ-  
 तसुगत्याश्लेषसरोधनं कृतं सुगतेराश्लेषस्य आलिं-  
 गनस्य संरोधनं निवारणं येन तत् । पुनः प्रोत्सर्पत्  
 प्रधनं प्रोत्सर्पत् प्रसरत् प्रधनं मरणं यस्मात् तत्था ।  
 ईदृशं अदत्तं धीमान् न जिघृक्षति ॥ ३५ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—मरहृषा छंद ॥ जो कीरति गोपै,  
 धरम विलोपै, करै महा अपराध ॥ जो शुन्न गति  
 तोरै, डुरगति खोरै, जोरै युद्ध उपाधि ॥ जो संकट  
 आनै, डुरमति ठानै, वध बंधनको गेह ॥ सब उ-  
 गुन मन्मित, गहै न पन्मित, सो अदत्त धन एह ॥ ३५ ॥

वक्षी पण अदत्तना दोषो कहे डे.

॥ हरिणीवृत्तम् ॥ परजनमनःपीडाक्रीडावनं  
वधन्नावना, ज्ञवनमवनिव्यापिव्यापद्वताघ-  
नमंमलम् ॥ कुगतिगमने मार्गः स्वर्गापवर्ग-  
पुरार्गलम्, नियतमनुपादेयं स्तेयं नृणां हि-  
तकांक्षिणाम् ॥ ३६ ॥ इतिस्तेयप्रक्रमः ॥ ७ ॥

अर्थः— ( नियतं केऽ ) निश्चये ( हितकांक्षि-  
णां केऽ ) हितनी वांगाना करनारा एवा ( नृणां  
केऽ ) पुरुषोने ( स्तेयं केऽ ) चौर्य एटकी चोरीनुं  
कर्म ते ( अनुपादेयं केऽ ) ग्रहण करवा योग्य नशी.  
ते अदत्त केहबुं डे ? तो के ( परजनमनः केऽ ) अ-  
न्यजनोनां मन जे चित्त तेमनी ( पीडा केऽ ) बाधा  
तेमनुं ( क्रीडावनं केऽ ) रमण करवानुं उद्यान डे.  
वक्षी ( वधन्नावना केऽ ) हिंसानी जे ज्ञावना एटके  
चिंतवन तेनुं ( ज्ञवनं केऽ ) घर डे. वक्षी ( अवनि  
केऽ ) पृथ्वी तेने विषे ( व्यापि केऽ ) व्यापी रहेक्षी  
एवी जे ( व्यापत् केऽ ) आपत्तियो तेज ( लता केऽ )  
लतार्जे जे वह्वीयो, तेनुं ( घनमंडकं केऽ ) मेघमं-  
डबरूप डे. वक्षी ( कुगतिगमने केऽ ) मारी गतिने

विषे गमन करवानो ( मार्गः केऽ ) मार्ग डे. वली  
 ( स्वर्गापवर्गपुर केऽ ) स्वर्ग अने मोक्ष ते रूप जे  
 नगर तेने ( अर्गबं केऽ ) ज्ञोगल सरखुं डे. माटे  
 आश्लोकनो ज्ञावार्थ ए डे जे दुःखदायक एवुं जे  
 चौर्य तेनो सर्वथा सर्व जनोयें त्याग करवो ॥ ३६ ॥  
 आ सातमो चौर्यप्रक्रम थयो ॥ ७ ॥

टीका:- पुनरदत्तदोषमाह ॥ परजनेति ॥ निय-  
 तं निश्चितं हितकांक्षिणां हितवांभितां नृणां पुरु-  
 षाणां स्तेयं चौर्यं अनुपादेयं अग्राह्यं जवति अद-  
 त्तं अग्रहणीयं स्यात् । किंचूतं अदत्तं ? परे च ते-  
 जनाश्च तेषां मनांसि चित्तानि तेषां पीडा बाधात-  
 स्याः क्रीडावनं रमणायोद्यानं । पुनः वधज्ञावनाज-  
 वनं वधस्य हिंसायाः ज्ञावना चिंतनं तस्याः यहं ।  
 पुनः श्रवनिव्यापिव्यापद्विताघनमंमुद्दं अवन्यां व्या-  
 पिनी प्रसरणशीला या व्यापत् आपत् सैव लता  
 वह्नी तस्याः घनमंमुद्दं मेघपटलं । पुनः कुमतिग-  
 मने मार्गे अध्वा । पुनः स्वर्गापवर्गपुराग्निं स्वर्गा-  
 पवर्गविव देवलोकमोक्षावेव पुरं नगरं तत्र अर्ग-  
 ला परिधः ॥ ईदृशं स्तेयं हितकांक्षिणां नृणां अ-  
 ग्राह्यं स्यात् ॥ ३६ ॥ सिंदूरप्रकरारूपस्य, टीकायां

हर्षकीर्तिन्जिः ॥ सूरिन्जिर्विहितायां तु, संपूर्णः स्ते-  
यप्रक्रमः ॥ ७ ॥ इति सप्तम स्तेयप्रक्रमः ॥ ७ ॥

नाषाकाव्यः—कवित्त मात्रात्मक ॥ जो परजन  
संताप केलिवन, जो वध बंध कुबुद्धि निवास ॥ जो  
जग विपति वेदि घनमंख, जो डुरगति मारग  
परगास ॥ जो सुरखोक बार दिढ अर्गेख, जो अ-  
पहरन मुगति मुखवास ॥ जो अदत्त धन तजत  
साधु जन, निज हित हेत बनारसि दास ॥ ३६ ॥

कथा:- एज जरतकेत्रमांहे वाणारसी नगरीये  
माहाविख्यात पराक्रमनो धणी जितशत्रु राजा रा-  
ज्य ज्ञोगवे ठे, तिहां एक धनदत्तनामे व्यवहारी  
अत्यंत धनवंत रहे ठे. तेनी धनश्री नामें स्त्री ठे,  
तेनो पुत्र नागदत्त करीने ठे, ते गुणरूप रत्ननो चं-  
कार ठे, तेना हृदयरूप सरोवरमांहे राजहंसनीपेरें  
दया रमे ठे. हवे ते नगरमां बीजो कोइ प्रियमित्र  
एवे नामें व्यवहारीयो वसे ठे, ते सौनाग्यसुंदर  
चातुर्यकलासागर ठे, तेने नागवसु एवे नामें पुत्री  
ठे. एकदा नागदत्त देवगृहमांहे देव वांदतो हतो,  
तेने नागवसु कन्यायें दीर्घो, तेवारें विचाल्यु जे पु-  
रंदर समान ए पुरुष कोण हशे ? एवा कंदप्पर्वा

तार जर्त्तार विना स्त्रीनुं यौवन बकरीना गलाना  
 स्तननी पेरें निःफल जाणबुं, माटें महारे तो आ  
 जवें एहज जर्त्तार करवो, नहीं का चारित्र बेदुं,  
 पण बीजो जर्त्तार न करवो ! एम चिंतवी नागवसु  
 कन्या पोताने घेर आवी पण कोइ स्थानके रति  
 पामे नहीं. जोजन निढा मूकीने रात्रि दिवस ना-  
 गदत्तनुंज ध्यान कस्या करे. एवी पुत्रीनी अवस्था  
 जोइने तेनां माता पितायें बलात्कारथी वारंवार  
 पूछ्युं, तेवारें तेनी सज्जन सखीयें कह्युं जे ए ना-  
 गदत्तनी प्रार्थना करे डे. पितायें पुत्रीनो जाव जा-  
 णी नागदत्तने घेर जइ विवाह मेलववानी वात क-  
 रीने कह्युं के सरखे सरखी जोडी डे माटें बेहु ज-  
 न्म सफल करे, ए युक्त डे. नागदत्तना पितायें मा-  
 न्युं, परंतु नागदत्तें ते वात सांजद्वीने पिताने वास्यो  
 अने कह्युं के स्वामी ! महारुं सगपण करशो नहीं, हुं  
 तो चारित्र लश्शा. ए संसार असार डे माटे विषय-  
 सुखथी सख्युं ! कन्यायें तेवचन सांजद्वयुं अने ते कन्या  
 तो मन वचनथी एनी उपरज मोहित थयेद्वी डे ॥  
 यतः ॥ संसारे ते नरा धन्या, ये मोहे नैव मोहिताः ॥  
 मोहमोहितचित्तानां न जने न वने रतिः ॥ १ ॥

एकदा ते कन्याने मार्गे जाती कोटवालें देखीने तेना पिता पासेथी मागणी करी. तेवारें पितायें क-  
सुं के, ए कन्या नागदत्त उपर रागिणी ढे माटे तेने दीधी ढे. ते सांचली नगरनो कोटवाल, नागद-  
त्तनां डिङ्ग जोवा लाग्यो. प्रायः पापी जे होय ढे, ते पोताना स्वार्थ माटें सज्जननां डिङ्ग जोतोज रहे  
ढे ॥ यतः ॥ मृगमीनसज्जनानां, तृणजलसंतोषवि-  
हितवृत्तीनाम् ॥ लुब्धकधीवरपिशुना, निःकारणवै-  
रिणोजगति ॥ २ ॥

एवा समयमां राजानुं रखजडित कुँडल गयुं, ते वखतें नागदत्तने पोषध शालामां आवश्यक करतां कोटवालें दीठो, अने रक्षके मार्गमां कुँडल पञ्चुं पण दीरुं, ते उपाडी पोतानी पासें राख्युं. पठी ठल करीने रात्रीने समयें कोटवालें ते कुँडल लावी नागदत्तना कानमां घाट्युं. प्रज्ञातें नागदत्तने पकडी राजा आगल लइ गया. कुँडलनी चोरीनुं आल दीधुं. राजायें तत्काल मारवानी आङ्गा दीधी, तेने कोटवालें मुख कालुं करी रासन उपर चढावी अनेक जातिनी विटंबना करी नगरमां फेरवी शूला-  
रोपणने स्थानके ( मसाणे ) आएयो. ते वात नाय-

वसु स्त्रीयें सांजद्वी, तेवारें महाङ्गुःख धरती थकी  
 तेनुं कष्ट निवारण करवा माटें शासनदेवीनुं स्मरण  
 करी काउस्सग्ग कस्यो अने विचाखुं के जेवारें ए  
 नागदत्त मूकाशे, तेवारें हुं काउस्सग्ग पारीश ! एम  
 निश्चियें दीधो के शूद्री जांगी पडी, पण नागदत्तने  
 अंगें न लागी, तेवारें कोटवालना आदेशथी नाग-  
 दत्तने खड़ें करी हण्यो, ते खड़ पण फूलमाला जेबुं  
 तेने लाग्युं, तेवारें राजपुरुषें विस्मय पामी ते वात  
 राजा आगद्व कही. राजा पोतें तिहाँ आव्यो ते  
 विचार प्रत्यक्ष देखी नागदत्तने सर्व विचार खरेखरो  
 पूठवाथी नागदत्तें यथास्थित वात कही. ते सांजद्वी  
 राजा महोटा महोत्सवपूर्वक नागदत्तने नगरमां लइ  
 आव्यो अने पोतानो अपराध खमावी कोटवालाने  
 देश बाहेर काढ्यो, तेना घरनुं सर्वख लइ लीधुं. जे-  
 माटें अति उग्र पुण्य पापनां फब तत्काल प्राप्त थाय  
 रे ॥ यतः ॥ त्रिज्ञिर्वैस्त्रिज्ञिर्मासै, स्त्रिज्ञःपहौस्त्रिज्ञि-  
 दिनैः ॥ अत्युग्रपुण्यपापाना, मिहैवलज्जते फलम् ॥३॥

पडी नागदत्तें नागवसुना काउस्सग्गनुं सर्व वृ-  
 तांत सांजद्वी तेनो घणोज पोतानी उपर स्त्रेह जा-

णीने ते कन्यानुं पाणिग्रहण कर्णुं. अने चिरकाल तेनी साथें विषयसुख जोगवी बृद्धावस्थायें वैराग्य पामी दृढचित्तं चारित्र लङ् देवलोके पहोतो. माटें जे ज्ञान्यवंत पुरुष अदत्तवस्तु न लीये, ते नागदत्तनी खेरें इहलोके परलोके मनोवांडित फलने पामे ॥३६॥

हवे मैथुनब्रत आश्रय करीने उपदेश कहे डे.

॥ शार्दूलिकीडितदृत्तद्वयम् ॥ कामार्त्तस्त्य-  
जति प्रबोधयतिवा स्वस्त्रीं परस्त्रीं न यो, द-  
त्तस्तेन जगत्यकीर्तिपटहोगोत्रे मषीकूर्चकः ॥  
चारित्रस्य जलांजलिर्गुणगणारामस्य दा-  
वानलः, संकेतः सकलापदां शिवपुरद्वारे क-  
पाटोदृढः ॥ पाठांतरं ॥ शीलं येन निजं वि-  
दुष्मखिलं त्रैलोक्यचिंतामणिः ॥ ३७ ॥

अर्थः—( यः केऽ) जे पुरुष, ( कामार्त्तः केऽ ) का-  
मे में करी पीडितथको ( स्वस्त्रीं केऽ ) पोतानी स्त्रीने  
( नप्रबोधयति केऽ ) न बोलावे डे ( वा केऽ ) अ-  
ने ( परस्त्रीं केऽ ) पारकी स्त्रीने ( नत्यजति केऽ )  
न त्याग करे डे. अर्थात् पोतानी स्त्री डतां परस्त्री-  
नो संग करे डे, परंतु परस्त्रीनो त्याग करतो नशी,

( तेन के० ) ते पुरुषें ( जगति के० ) विश्वने विषे  
 ( अकीर्तिपटहः के० ) पोतानी अपकीर्तिरूप ढो-  
 ल, ( दत्तः के० ) दीधो एटले वजाड्यो. अर्थात् तेनी  
 विश्वमां अपकीर्तिज आय. वली ते पुरुषें निर्मल एवा  
 पोताना ( गोत्रे के० ) गोत्रने विषे ( मषीकूर्चकः के० )  
 मशनो कूचो दीधो. अर्थात् पोताना निष्कदंक कुल-  
 ने लांडन लगाड्युं. वली ते पुरुषें ( चारित्रस्य के० )  
 देशविरति सर्वविरतिरूप संयमने ( जबांजलिः  
 के० ) जबनो अंजलि दीधो, अर्थात् तेणे चारित्र-  
 नो पण नाश कीधो. वली ते पुरुषें ( गुणगणाराम-  
 स्य के० ) गुणना गण जे समूह ते रूप आराम जे  
 बगीचो तेने ( दावानबः के० ) वनामि दीधो. अ-  
 र्थात् तेणे गुणोने पण नाश कस्या, वली ( सकबा-  
 पदां के० ) समग्रआपत्तियोने ( संकेतः के० ) मब-  
 वाने स्थानक दीधुं. अर्थात् तेणे आपत्तियोने आ-  
 ववानो मार्ग पूरतो कस्यो. वली ते पुरुषें ( शिव-  
 पुरद्वारे के० ) मोहपुरना द्वारने विषे ( दृढः के० )  
 मजबूत अतिकरीन ( कपाटः के० ) कमाड दीधां.  
 अर्थात् ते जीवें मोहमां जवानो रस्तो अत्यंत बंध  
 कीधो, वली पाठांतरमां ( येन के० ) जे पुरुषें ( त्रै-

खोक्यचिंतामणिः केऽ ) त्रणखोकने विषे चिंताम-  
णिरूप एवुं ( निजं केऽ ) पोतानुं ( शीकं केऽ )  
ब्रह्मचर्य, ते ( अखिलं केऽ ) संपूर्ण ( विद्वुसं केऽ )  
लोप्युं डे, तो ते पुरुषें पूर्वोक्त सर्वे वस्तु करी. ए-  
टद्वे आ श्लोकमां ज्ञाव ए डे जे शील रहित पुरु-  
षनुं जे कांश कर्म, ते सर्वे व्यर्थ थाय डे ॥ ३७ ॥

टीका:-अथ मैथुनब्रतमाश्रित्योपदेशमाह ॥ द-  
त्त इति ॥ यः पुमान् कामार्त्तः कामपीडितः स्वस्त्रीं  
न प्रबोधयति वा इति तर्के परस्त्रीं परनारीं न त्य-  
जति तेन पुंसा जगति विश्वे अकीर्तिपटहो दत्तः  
वादितः । निर्मले गोत्रे स्वकीये वंशे मषीकूर्च्चकोद-  
त्तः । पुनः चारित्रस्य देशविरति सर्वविरतिरूपसं-  
यमस्य जलांजविर्दत्तः । गुणानां गणः समूहः सएव  
आरामस्तस्य दावानदो वनदवः वनदवाग्निर्दत्तः ।  
पुनस्तेन सकलापदां समस्तकष्टानां संकेतोदत्तः ।  
मद्बीनस्थानं चन्थितं । पुनस्तेन शिवपुरद्वारे मुक्ति-  
नगरद्वारे दृढः कपाटो दत्तः । शीलरहितस्य मुक्तिग-  
मना योगात् ॥ पाठांतरे तु ॥ शीलं येन निजं विद्वु-  
समखिलंत्रैलोक्यचिंतामणिः । येन त्रैलोक्यचिंतामणिः  
निजं शीलं विद्वुसं तेन एतानि वस्तूनि कृतानि ॥३७॥

ज्ञाषाकाव्यः—अथ शीलको अधिकार ॥ सो अ-  
पजसको डंक बजावत, लावत कुलकलंक परधान ॥ सो  
चारितकौं देत जलांजलि, गुनवनकां दावानल दान ॥  
सोशिवपंथके बार बनावत, आपत विपति मिलनको  
स्थान ॥ चिंतामनिसमान जग जो नर, सीखरतन  
निज करत मलान ॥ ३७ ॥

बली पण शीलना गुणो कहे डे.

व्याघ्रव्यालजलानलादिविपदस्तेषां ब्रजंति  
क्षयम्, कब्याणानि समुद्ध्रसंति विबुधाः सा-  
न्निध्यमध्यासते ॥ कीर्तिः स्फूर्तिं मियर्तिं या-  
त्युपचयं धर्मः प्रणश्यत्यघम्, स्वर्निर्वाणसु-  
खानि संनिदधते ये शीलमाविच्छ्रते ॥ ३८ ॥

अर्थः— ( ये केण ) जे मनुष्योने ( शीलं केण ) ब्र-  
ह्मचर्यने ( आविच्छ्रते केण ) धारण करे डे. ( तेषां  
केण ) ते मनुष्योने ( व्याघ्र केण ) वाघ, ( व्याल केण )  
झुष्टगज वा सर्प, ( जल केण ) नदी समुद्रादि, ( अ-  
नलादि केण ) अग्नि आदिक जे ( विपदः केण )  
विपत्तियो डे ते ( क्षयं केण ) क्षय प्रत्यें ( ब्रजंति  
केण ) पासे डे. बली ते पुरुषोने ( कब्याणानि केण )

कद्याणो ( समुद्वसंति के० ) रुडे प्रकारें प्राप्त आय डे. वली ते पुरुषोने ( विबुधाः के० ) देवतार्ज ( सान्निध्यं के० ) संनिधिपणाप्रत्यें ( अध्यासते के० ) प्राप्त आय डे, एटले तेनी देवता सहाय करे डे. वली ते पुरुषोनी ( कीर्त्तिः के० ) कीर्त्ति ते ( स्फुर्तिः के० ) विस्तारने ( इयर्त्ति के० ) पामे डे. वली ते पुरुषोनी ( धर्मः के० ) धर्म ते ( उपचयं के० ) पोषणने ( याति के० ) पामे डे. वली ते पुरुषोनुं ( अघं के० ) पाप ते ( प्रणश्यति के० ) नाशने पामे डे. वली ते पुरुषोने ( स्वर्निर्वाणसुखानि के० ) स्वर्गमोहनां सुखो ( सन्निदधते के० ) समीप आवे डे. अर्थात् जे शीखने धारण करे डे, तेमने एटलां वानां आय डे ॥

टीकाः—शीखगुणानाह ॥ व्याघ्रेति ॥ ये नराः शीखं ब्रह्मचर्यं आविच्चते धरंति तेषां पुंसां व्याघ्र-व्यालजलानलादिविपदः क्षयं यांति व्याघ्रः प्रसिद्धः । व्याखो दुष्टगजः सर्पोवा । जलं पानीयं । नदी समुद्रादि । अनखो वन्हिस्तेषां विपदः कष्टानि । तैः कृताविपदः क्षयं ब्रजंति क्षयं यांति । पुनः कल्याणानि श्रेयांसि समुद्वसंति वृद्धिं प्राप्नुवंति पु-

( १४६ )

नस्तेषां विबुधा देवाः सान्निध्यं अध्यासते साहाय्यं  
कुर्वति । पुनस्तेषां कीर्तिः स्फूर्तिं इयर्ति विस्तारं या-  
ति । पुनस्तेषां धर्मो दानादिविधिरुपचयं पोषं या-  
ति । पुनस्तेषां अघं पापं प्रणश्यति नाशं याति । पुन-  
स्तेषां स्वर्निर्वाणसुखानि स्वर्गाऽपवर्गसुखानि संनिद-  
धते समीपमायांति । ये शीक्षं आविच्छ्रते तेषां ए-  
तानि ज्ञवंति ॥ ३७ ॥

ज्ञाषाकाव्यं:-रोडकब्लंद ॥ कुख कलंक दख मिटै,  
पापदख पंक पखारै ॥ दारुन संकट हरै, जगत म-  
हिमा विस्तारै ॥ सरग मुगति पद रचै, सुकृत सं-  
चै करुनारसि ॥ सुर यून वंदहि चरन, शील युन  
कहत बनारसी ॥ ३७ ॥

॥ मालिनीवृत्तम् ॥ हरति कुखकलंकं लुंपते  
पापपंकम्, सुकृतमुपचिनोति श्लाघ्यतामा-  
तनोति ॥ नमयति सुरवर्गं हंति झर्गोपसर्गम्,  
रचयति शुचिशीलं स्वर्गमोक्षो सखीलम् ॥ ३८ ॥

अर्थः-(शुचिशीलं के०) निर्मल एवं ब्रह्मव्रत ते  
( कुखकलंकं के० ) कुखनुं कलंक जे मलिनता तेने  
( हरति के० ) नाश करे डे. वली ( पापपंकं के० )

बोपि केण ) दुष्ट गज पण ( अश्वति केण ) अश्व-  
 तुद्य आय डे. तथा ( पर्वतोऽपि केण ) पर्वत पण  
 ( उपलति केण ) पड्डरसद्वश आय डे. अने ( द्वे-  
 डोपि केण ) विष पण ( पीयूषति केण ) अमृत-  
 तुद्य आय डे. तथा ( विन्नोऽपि केण ) अंतराय पण  
 एटखे आपत्तियो पण ( उत्सवति केण ) उत्सव  
 तुद्य आय डे तथा ( अरिरपि केण ) शत्रु पण ( प्रि-  
 यति केण ) प्रियसमान आय डे. तथा ( अपांना-  
 थोपि केण ) समुद्र पण ( क्रीडातडागति केण )  
 क्रीडाना तखावनी तुद्य आय डे. ( अटव्यपि केण )  
 अरण्य पण ( स्वगृहति केण ) पोताना घरसमान  
 आय डे. अर्थात् मनुष्यने शीलप्रज्ञावथकी पूर्वोक्त  
 दुःख सर्व सुखरूप आय डे ॥ ४७ ॥ आ ठेकाणे  
 दृष्टांतमां सुदर्शनश्रेष्ठीनी तथा वंकचूलनी तथा रा-  
 वणनी कथा जाणवी ते प्रसिद्ध डे माटें आहिं लखी न-  
 शी. आ आरम्भे शीलनो प्रक्रम संपूर्ण थयो ॥४॥इति॥

टीका:-पुनः शीलप्रज्ञावात् इह खोकेपि कष्टानि  
 यांतीत्याह ॥ तोयत्यभिरिति ॥ नृणां मनुष्याणां  
 ध्रुवं निश्चितं शीलप्रज्ञावात् अभिरपि तोयति तो-  
 यमिवाचरति जलवत् शीतदं स्यात् । तथा अहिर-

पि सप्तोऽपि स्त्रजति । स्त्रक् इव पुष्पमालेव आचर-  
ति । पुनः शीलप्रज्ञावात् व्याघ्रोऽपि सिंहोऽपि सा-  
रंगति सारंग इव हरिण इवाचरति । पुनर्व्याघ्रोऽ-  
पि डुष्टग जोपि अश्वति अश्व इवाचरति । विषमः  
पर्वतोऽपि उपलति उपलइवाचरति सामान्यपाषाण-  
इवाचरति द्वेष्ठोपि विषमपि पीयूषति अमृतं जव-  
ति । विष्वोप्यंतरायोपि आपदपि उत्सवति उत्सव  
इवाचरति । विष्वोप्युत्सव एव जवति । तथा अस्ति-  
रपि शत्रुरपि प्रियति प्रियइवाचरति । शत्रुरपि प्रि-  
य एव जवति । तथा अपांनाथोऽपि समुद्रोऽपि क्री-  
डातडागति क्रीडातडागइवाचरति खेल नसरोवर-  
मिवाचरति । अटव्यपि अरण्यमपि स्वगृहति स्वगृ-  
हमिवाचरति । नृणां शीलप्रज्ञावादेतानि वस्तूनि  
जवंति ॥ अत्र सुदर्शन श्रेष्ठिकथा ३ वंक चूलकथा १  
रावणकथा ३ ॥ ४० ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्या-  
यां हर्षे कीर्त्तिनिः ॥ सूरिज्ञिर्विहितायांतु, शिखस्य  
प्रक्रमोङ्गनि ॥ ८ ॥ इत्यब्रह्मप्रक्रमः ॥ ८ ॥

जाषाकाव्यः—ठप्पयष्ट्वंद ॥ अगनि नीर सम हो-  
इ, माल सम होइ चुअंगम ॥ नाहर मृग सम हो-  
इ, कुटिल गज होइ तुरंगम ॥ विषपीयूष सम हो-

( २०३ )

इ, सिखर पाषान खंड मित ॥ विघ्न उखटि आनं-  
द, होइ रिपु पखटि होइ हित ॥ लीला तखाव स-  
म उदधि जख, यह अटवी विकट ॥ इह विध श-  
नेक डुख होइ सुख, शीलवंत नरके निकट ॥ ४० ॥

हवे परिग्रहना दोषो कहे डे.

कालुष्यं जनयन् जडस्य रचयन् धर्मजुमो-  
न्मूलनम्, क्षिण्यन्नीतीकृपाहमाकमलिनीखो-  
जांबुधिं वर्धयन् ॥ मर्यादातटमुजुजन् शुभ-  
मनोहंसप्रवासं दिशन्, किंन क्षेशकरः परि-  
ग्रहनदीपूरः प्रवृद्धिं गतः ॥ ४१ ॥

अर्थः—( परिग्रह केण ) धन, केत्र, यह, रूप्य,  
सुवर्ण, कूप्य, छिपद, चतुःपद, ए नवविध परिग्रह-  
रूप जे ( नदीपूरः केण ) नदीनो प्रवाह, ते ( प्रवृ-  
द्धिंगतः केण ) अति वृद्धिने पामतो उतो ( किं केण )  
शुं ( क्षेशकरः केण ) क्षेशने करवावालो ( न केण )  
नथी आतो ? अर्थात् आयज डे. हवे परिग्रहने न-  
दीना पूरनी साहश्यता कहे डे. ते परिग्रहरूप नदी-  
पूर शुं करतो उतो वृद्धिंगत आय डे ? तो के ( ज-  
डस्य केण ) जडपुरुषोना ( कालुष्यं केण ) क्षिण्य

अध्यवसायने ( जनयन् के० ) उत्पन्न करतो डतो वृद्धिंगत थाय डे. अने नदीनो पूर पण ( जडस्य के० ) जलन ( कादुष्यं के० ) कदुषित पणाने ( जनयन् के० ) उत्पन्न करे डे. “जडस्य” ए पदमां डकार डे, तेथी जल एवो अर्थ न थाय, परंतु व्याकरणने नियमें करी डकारने लकारनुं ऐक्य डे तेथी थाय. वळी ( धर्म छुमोन्मूलनं के० ) धर्मरूप वृक्षनुं जे उन्मूलन तेने ( रचयन् के० ) करतो डतो वृद्धिंगत थाय डे अने नदीपूर पण पृथ्वीगत वृक्षोने उखेडी नाखतो डतो वृद्धिने पामे डे. वळी ( नीतिकृपाहमा के० ) न्याय, दया, अने हांति ते रूप ( कमलिनीः के० ) कमलिनी जे तेने ( क्लिशयन् के० ) क्लेश पमाडतो डतो वृद्धि पामे डे. अने नदीनो पूर पण कमलिनीने पीडा पमाडे डे. वळी ( लोचांबुधिं के० ) लोचरूप समुद्रने ( वर्झयन् के० ) वधारतो डतो वृद्धि पामे डे, अने नदीनो पूर पण समुद्रने वधारनारो डे. वळी ( मर्यादातटं के० ) धर्मरूप मर्यादानुं तट जे चारित्रादिक तेने ( उद्गुजन् के० ) पीडा पमाडतो डतो वृद्धि पामे डे, अने नदीनो पूर

पण वृद्धि पामतो डतो नदीना तटने पाडी नाखे डे. तथा ( शुन्नमनोहंसप्रवासं केऽ ) धर्म ध्यानयुक्त जे मन, तेरूप हंस तेने परदेशगमनप्रत्यें ( दिशन् केऽ ) देतो डतो वृद्धिपणाने पामे डे. अनेन नदीनोपूर पण हंसोने उमाडतो थको वृद्धिने पामे डे. माटें मूँ छारूप परिग्रह जे डे, तेनो सर्वजीवें त्याग करवो ॥४१॥

टीका:—अथ परिग्रहदोषमाह ॥ कालुष्यमिति । परिग्रहो धन धान्य केत्र यह रूप्य कुप्य द्विपद चतुःपदानां संग्रहो मूर्ढा स एव नदीपूरः । सरित्प्रवाहः प्रवृद्धिंगतः उपचयं प्राप्तः सन् किं क्लेशकरः कष्टदायी न स्यात् ? अपि तु स्यादेव । किं कुर्वन् जडस्य परिग्रहं संग्रहं कर्तुं मूर्खजनस्य कालुष्यं क्लिष्टाध्यवसायत्वं जनयन् उत्पादयन् । अन्योऽपि नदीपूरो वृद्धः सन् जलस्य पानीयस्य कालुष्यं जनयति । उलयोरैक्यं जडस्य जलस्य । पुनः किं कुर्वन् ? धर्म एव झुमो वृक्षस्तस्योन्मूलनं उत्पाटनं रचयन् कुर्वन् अन्योऽपि नदीपूरः प्रवृद्धो वृक्षाणां उत्पाटनं करोति । पुनः किं कुर्वन् ? नीतीकृपाद्माकमलिनीः । नीतिन्यायः । कृपा दया । दमा दांतिः ।

ता एव कमलिन्यः ताः क्षिश्यन् पीडयन् । अन्यो-  
पि नदीपूरः कमलिनीः पीडयति । पुनः किं कुर्व-  
न् ? लोकां बुधिं वर्जयन् । लोकाएव अंबुधिः समुद्र-  
स्तष्टव्यन् वृद्धिनयन् ॥ जहा लाहो तहा लोहो,  
लाहाह्वोहो पवर्है ॥ दोमासा कण्यं कव्यं, कोडि-  
एवि न नियद्वीयं ॥ १ ॥ इति ॥ पुनः किं कुर्वन् ?  
धर्मस्य मर्यादा एव तटं चरणविधिरूपं तटं उद्गु-  
जन् पीडयन् चंजयन् । अन्योऽपि नदीपूरः प्रवृद्धः  
सन् तटं पातयति । पुनः किं कुर्वन् ? शुचमनोहंस-  
प्रवासं दिशन् । शुचं धर्मध्यानसहितं यन्मनस्तदेव  
हंसस्तस्य प्रवासं परदेशगमनं दिशन् आदिशन् ।  
अन्योऽपि नदीपूरो हंसान् उक्तापयति । ईदशो मूर्ढाप-  
रिग्रहः क्लेशकरः स्यात् ॥ ४१ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—कवित्त मात्राण ॥ अंतर मलिन  
होश नीज जीवन, विनसै धरम तरुवर मूल ॥ कि-  
सलयलता नीतिनलिनीवन, धरै लोक सागर तन  
थूल ॥ उरै वाद मरजाद मिटै सब, सुजन हंस  
नहिं पावहिं कूल ॥ बढत पूर पूरे ऊख संकट, यह  
परिग्रह समता सम तूल ॥ ४१ ॥

( २०५ )

वद्वी पण परिग्रहना दोषो कहे डे.

मालिनीवृत्तम् ॥ कलहकलज्जविध्यः क्रोधगृ-  
धश्मशानम्, व्यसनञ्जुजगरंध्रं द्वेषदस्युप्र-  
दोषः ॥ सुकृतवनदवामिर्मार्द्वांजोदवायु,  
र्नयनलिनतुषारोऽत्यर्थमर्थानुरागः ॥ ४७ ॥

अर्थः—( अत्यर्थ के० ) अत्यंत ( अर्थानुरागः के० )  
धननो अज्ञिकाष जे डे, ते केहवो डे ? तो के ( क-  
लहकलज्जविध्यः के० ) क्लेशरूप जे बालहस्ती तेने  
रहेवाने माटें विध्याचल जेवो डे. अर्थात् जेम बा-  
लहस्तीने क्रीडा करवानुं स्थानक विध्याचल डे, ते-  
म क्लेशने क्रीडा करवानुं स्थानक अर्थानुराग डे.  
वद्वी कहेवो डे ? तो के ( क्रोधगृधश्मशानं के० )  
क्रोधरूप जे गिझ पहीयो तेने रहेवाने श्मशानतु-  
द्व्य, अर्थात् गिझ पहीयो जेम श्मशानमां रहे डे,  
तेम क्रोध पण अर्थानुरागमां रहे डे. वद्वी ( व्यस-  
नञ्जुजगरंध्रं के० ) व्यसन जे कष्ट ते रूप जे सर्प  
तेना राफडा सरखो डे, अर्थात् जेम सर्पने रहेवानुं  
स्थानक राफडो डे, तेम कष्टने रहेवानुं स्थानक ऊ-

व्यांनुराग डे. वद्वी ( देषदस्युप्रदोषः केण ) देषरूप चोरने चोरी माटे संध्यासमयसमान डे, अर्थात् जेम चोरनुं जोर संध्या समयमां वधे डे, तेम ज्यां अर्थानुराग होय त्यां देषरूप चोरनूं जोर वधे डे. तथा ( सुकृतवनदवाग्निः केण ) सुकृत एटखे पुण्य ते रूप जे वन, तेने वनवा अग्निसमान, अर्थात् जेम वननो अग्नि वनने बाले डे तेम ए अर्थानुराग पण सुकृतने बाली नाखे डे, वद्वी ( मार्दवांजोदवायुः केण ) मृ-दुपणारूप जे मेघ तेनेविषे वायुसमान डे अर्था-त् वायुथकी जेम मेघ नाश पामे डे, तेम अर्थानुरा-गथकी मृदुत्व जे विनयपणुं ते नाश पामे डे. वद्वी ( नयनलिनतुषारः केण ) न्यायरूप जे कमल तेने हिमसमान डे. अर्थात् कमलनो जेम हिम नाश करे डे, तेम न्यायनो नाश अर्थानुराग करे डे. माटें सर्व जीवें अत्यंत अर्थ एटखे ऊव्य तेनी उपर अनु-रागनो त्याग करवो ॥ ४२ ॥

टीकाः—न्नयोपि परिग्रहदोषानाह ॥ कलहेति ॥  
 अत्यर्थं अर्थानुरागः । परिग्रहोपरि मूर्ढारागः ईद्ध-  
 शोऽस्ति । कथं न्नूतः ? कलहएव कलज्ञो बालहस्ती

तस्य विंध्यो विंध्याचलः । यथा विंध्याचले कलज्ञः क्रीडति तथाऽत्यर्थं अर्थानुरागे ऊव्यरागे कलहो ज्ञवति । तथा क्रोधगृध्रश्मशानं क्रोध एव गृधः पक्षिविशेषस्तस्य श्मशानं प्रेतवनं । गृधः श्मशाने रमते तथात्र क्रोधः । पुनः व्यसनमेव कष्टमेव ज्ञुजगः सर्पस्तस्य बिलं । पुनर्द्वेष एव दस्युश्चौरस्तस्य प्रदोषः संध्यासमयः प्रदोषे चौराणां बिलं ज्ञवति तथा । पुनः सुकृतमेव पुण्यमेव वनं तस्य दावाभिर्दावानलः । पुनर्माईवांचोदवायुः मार्दवं मृदुत्वं कोमलत्वं तदेव अंचोदो मेघस्तत्र वायुः । पुनर्नयो न्याय एव न खिनं कमलं तत्र तुषारश्व तुषारो हिमं । अत्यर्थं ऊव्यानुरागो लोक्यः इहशोऽस्ति । अतो न कर्त्तव्यः ॥४२॥

**ज्ञाषाकाव्यः—सवैया इकतीसा ॥** कलह गयंद उपजायवेको विंधगिरि, कोप गिधके अघायवेकों सुमसान है ॥ संकट ज्ञुजंगके निवास करवेकों बिल, वैरज्ञाव चोरकों महानिसा समान है ॥ कोमल सुगुन घन खंड वेकों महा पौन, पुन्नवन दाहवेकों दावानल दान है ॥ नीति नय नीरज नसायवेकों हिमरासि, ऐसो परिग्रह राग ऊःखको निधान है ॥४२॥

वद्वी पण परिग्रहना दोषो कहे डे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तत्रयम् ॥ प्रत्यर्थी प्रश-  
मस्य मित्रमधृतेर्मोहस्य विश्रामन्नुः, पापानां  
खनिरापदां पदमसभ्यानस्य लीलावनम् ॥  
व्यादेपस्य निधिर्मदस्य सच्चिवः शोकस्य  
हेतुः कलेः, केलीवेशम् परिग्रहः परिहते-  
योग्योविविक्ता त्मनाम् ॥ ४३ ॥

अर्थः—( विविक्तात्मनां केण ) विवेकवान् पुरुषोने  
( परिग्रहः केण ) परिग्रह जे डे, ते ( परिहतेः केण )  
परिहार करवाने ( योग्यः केण ) योग्य डे. अर्थात्  
विवेकी जनोयें परिग्रहनो त्याग करवो. ते परिग्रह  
केहवो डे ? तो के ( प्रशमस्य केण ) उपशमने ( प्र-  
त्यर्थी केण ) शत्रुसमान डे. वद्वी ( अधृतेः केण )  
असंतोषने ( मित्रं केण ) मित्र समान डे. वद्वी ( मो-  
हस्य केण ) मूढनुं एटले मोहनीयकर्मनु ( विश्राम-  
न्नुः केण ) विश्रांति स्थानक एटले मोहने रहेवानुं  
विश्रामस्थानक डे. तथा वद्वी ( पापानां केण ) अ-  
शुज्जकर्मोनी ( खनीः केण ) खाण डे. वद्वी ( आपदां  
केण ) आपत्तियोनुं ( पदं केण ) स्थानक डे. वद्वी

(श्रसद्व्यानस्य केऽ) आर्तरौद्रध्याननुं (खीबावनं केऽ) क्रीडावन डे. वली (व्याहेपस्य केऽ) व्याकुलपणानो (निधिः केऽ) चंमार डे. वली (मदस्य केऽ) अहंका रनो (सचिवः केऽ) मंत्री डे. वली (शोकस्य केऽ) शोकनुं (हेतुः केऽ) कारण डे. वली (कल्पेः केऽ) कलह जे डे तेनुं (केलीवेशम केऽ) क्रीडागृह डे. मा-टें परिग्रहनो त्याग करवो ॥ ४२ ॥

**टीका:**—पुनः परिग्रहदोषमाह ॥ ज्ञो ज्ञव्याः ! अयं परिग्रंहो मूर्ढाधिक्यं विविक्तात्मनां विवेकवतां पुंसां परित्तदतेः परिहारस्य योग्यः । परिग्रहः कीदृ-शः ? प्रशमस्योपशमस्य प्रत्यर्थी शत्रुः । पुनः अधृ-तेः असंतोषस्य मित्रं सुहृत् । पुन र्माहस्य मूढस्य मोहनीयकर्मस्यैव विश्रामस्थानं । पुनः पापानां अ-शुचकर्मणां खनिः खानिः । पुनरापदां कष्टानां पदं आस्पदं । पुनरसद्व्यानस्य आर्तरौद्रध्यानस्य दी-बावनं क्रीडावनं । पुनव्याहेपस्य व्याकुलत्वस्य निधिर्निधानं । पुनर्मदस्याऽहंकारस्य सचिवो मंत्री । पुनः शोकस्य हेतुः कारणं । पुनः कल्पेः कलहस्य केलीवेशम क्रीडगृहमित्यर्थः ॥ ४२ ॥

**ज्ञाषाकाव्यः**—वृत्त ऊपरप्रमाणे ॥ प्रसमको अहित

अधीरजको बाल मित्त, माहामोहराजकी प्रसिद्ध राजधानी है ॥ त्रमको निधान छुरध्यानको विद्वासवन, विपत्तिको आन अन्निमानकीनिसानी है ॥ छुरितको खेत रोग सोग उतपति हेत, कलह निकेत छुरगतिको निदानी है ॥ ऐसो परिग्रह ज्ञोग सबनको त्याग जोग, आतमगवेषी लोग याकी जांति जानी है ॥ ४३ ॥

वली पण परिग्रहना त्यागने कहे ढे.

वन्धिस्तृप्यति नेंधनैरिह यथा नांज्ञोन्निरंज्ञो-  
निधि, स्तष्टन्मोहघनो घनैरपि धनैर्जंतुर्न सं-  
तुष्यति ॥ न त्वेवं मनुते विमुच्य विज्ञवं निः  
शेषमन्यं ज्ञवम्, यात्यात्मा तदहं मुधैव वि-  
दधाम्येनांसि ज्ञायांसि किम् ॥ ४४ ॥

अर्थः—( वन्धिः केण ) अन्नि, ( इह केण ) आ-  
लोकने विषे ( यथा केण ) जेम ( घनैरपि केण ) घ-  
णा एवां पण ( इंधनैः केण ) काष्ठोयें करीने ( न  
केण ) नहि ( तृप्यति केण ) तृप्ति पामे ढे. वली  
( अंज्ञोन्निः केण ) जलोयें करीने ( अंज्ञोनिधिः केण )  
समुद्र जेम ( न केण ) नथी तृप्ति पामतो ( तद्व-

त् केऽ ) तेनी पेरें ( जंतुः केऽ ) जीव, ( घनैरपि केऽ ) घणा एवा पण ( धनैः केऽ ) धनें करीने ( न केऽ ) नहि ( संतुष्यति केऽ ) संतुष्ट आयडे. ते प्राणी केहवो डे ? तो के ( मोहघनः केऽ ) मोहें करी व्याप्त डे. ( तु केऽ ) वली ते जीव ( एवं केऽ ) ए प्रकारें ( नमनुते केऽ ) नथी मानतो के ( आत्मा केऽ ) जे जीव डे, ते ( निःशेषं केऽ ) समस्त ( विज्ञवं केऽ ) इव्यने ( विमुच्य केऽ ) मूकीने ( अन्यं केऽ ) बी-जा ( ज्ञवं केऽ ) जन्मने ( याति केऽ ) पामे डे ( तत् केऽ ) ते कारणमाटे ( अहं केऽ ) हुं ( मु-धैव केऽ ) वृथाज ( ज्ञ्यांसि केऽ ) घणांक ( एनां-सि केऽ ) पापोने ( किं केऽ ) शामाटें ( विदधामि केऽ ) करुं दुं ? एम प्राणी जाणतो नथी, माटें प-रिग्रहनो त्याग करवो. अहिंनंदराजा तथा सुम्म-णनी कथानो दृष्टांत जाणवो ॥ ४४ ॥

टीका:-वन्धिरिति ॥ यथा वन्धिरग्निः घनैरपि इधनैः समिक्षिन्त तृप्यति न तृप्तिं याति । पुनर्यथा अंजोनिधिः समुद्रः अंजोन्निर्जब्दः कृत्वा न तृप्यति । तद्भूत् यो जंतुः प्राणी कदाचित् घनैरपि बहु-निर्धनैर्द्वयैः कृत्वा न संतुष्यति कथं ज्ञूतो जंतुः ?

मोहेन घनो निबिडः । तु पुनः जंतुः एवं न मनुते  
न जानाति । यद्यं आत्मा जीवो निःशेषं समस्तं  
विज्ञवं द्रव्यं विमुच्य त्यजत्वा अन्यं ज्ञवं अपरं ज-  
न्म परज्ञवं याति । तत्समात् कारणात् श्रहं मुधैव  
वृथैव ज्ञायांसि प्रचुराणि एनांसि पापानि किमर्थं  
विदधामि करोमि ? एवं न जानाति ॥ ४४ ॥ सिं-  
दूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्तिज्ञिः ॥ सूरि-  
जिर्विहितायां तु, प्रक्रमोयं परिग्रहे ॥ ५ ॥ इति  
परिग्रहप्रक्रमः ॥ ५ ॥ श्रव्यं नंदराज ममणकथा ॥

ज्ञाषाकाव्यः—ठप्पय छंद ॥ ज्यौं नहिं अगनि  
अघाय, पाय ईधन अनेक विधि ॥ ज्यौं सरिता घ-  
ननीर. तृपति नहिं होय नीरनिधि ॥ त्यों असंख  
धन बढत, मूढ संतोष न मानै ॥ पाप करत नहिं  
मरहिं, बंध कारन मन आनै ॥ परतख विलोकी ज-  
नम मरन, अथिर रूप संसार क्रम ॥ समुज्जै न पाप  
परताप गुन, प्रगट बनारसि मोहन्नम ॥ ४४ ॥

कथा:- मगधदेशो राजगृहीनगरीमां श्रेणिकराजा  
रे तेनी चेलणा नामें राणी रे. एकदा प्रस्तावें जा-  
दपद मासें चेलणा राणी राजानी साथें गोखमां  
बेरां थकां वैज्ञारगिरि साहामुं जोवा खाग्यां. ति-

हां अनेक निर्जरणां वहे थे, गम गम दर्ढुर स्वर  
 यश रह्या थे, बप्पैया बोक्की रह्या थे, मोर नृत्य करे  
 थे, पाणीना प्रवाह वहेता नदीमां समाता नथी. ए  
 अवसरें कोश एक पुरुषने नदीप्रवाहनी मांहेश्वी  
 महोटी महेनतें काष्ठ काढतां चेलणायें दीर्घे, तेथी  
 मनमां विषाद करती राजा प्रत्यें बोक्की के हे स्वा-  
 मी ॥ जरियाने सहु को जरे, वूरां वरसे मेह ॥  
 सधन सनेहा सहु करे, निर्धन दाखे थेह ॥ १ ॥ ए  
 उखाणे जे जगमां कहेवाय थे, ते साचो थे. राजा-  
 यें पूळ्युं के केम ? तेवारें राणीयें कह्युं के हे स्वामी !  
 ए एक दिरिडी पुरुष थे तेने उदर जरवं दोहेलुं थे.  
 एणे परजवें पुण्य कर्त्तुं नथी माटे तमें सर्वने दान  
 आपो थे पण एवा डुःखीने कां देता नथी ? ते-  
 वारें राजायें सेवक मोक्की तेने तेडाव्यो, ते पण  
 आवी नमस्कार करी उज्जो रह्यो. राजायें कह्युं के  
 हे पुरुष ! तुं डुःखित थको काष्ठ कापे थे, माटें  
 डुःख नही जोगव. तुजने जोश्यें ते हुं आपुं. तेणे  
 कह्युं के स्वामी ! हुं मम्मणनामें वाणीयो हुं, मुज-  
 ने वे बलद जोश्यें थैयें. तेमां एक तो मेलव्यो थे  
 पण बीजाने मेलववा माटें उथम करुं हुं. राजायें

कह्युं के अमारे घरे हजारो बखद रे, तेमां जे सारो होय, ते तुं ले. वणिक बोल्यो के महारा बखदीया अन्य जातिना रे, तमारा तेहवा नथी. (अने मने तो महारा बखद जेवोज बखद जोइयें ! ते सोंजली तेना बखदने जोवा माटे राजा ते वणिकने घेर आव्यो, घरमां अत्यंत कङ्कि दीरी, तथा सुवर्णमय रत्ने जडित एक बखद पण दीरो.) ते जोइ राजा विस्यने पाम्यो अने ते सर्व समाचार राणीने जइ कह्या. चिछ्णा पण तिहां बखद जोवा सारु आवी, बखद देखीने मम्मण प्रत्यें बोली. एवा लाकडां कापवाशी तहारे एवो वृषन्न केम प्राप्त थाशे ? ते बोल्यो के एवा वृषन्नने अर्थे में समुद्र मांहे प्रवहण पूर्खां रे, ते परदेशमां ए लाकडां वेचीने तेनां नाणानां रत्न लइ आवशे. तेवारें वृषन्न नीपजशे. ए काष्ठ जे रे, ते बावनाचंदन रे, एनो मर्म जे परीक्षक होय, तेज जाणे. हुं पण बीजा कोइने शीखवतो नथी. पठी राजा राणी तेना लोननो विचार देखी विषाद धरतां पाडां घेर आव्यां. हवे ते मम्मण शेर अतिबोजना वशथकी आर्तध्यान धरतो विपत्ति पामतो अपूर्ण मनोरथेंज मरण पासी तिर्यचादिकने विषे

घणा घणा ज्ञव पर्यंत जम्यो. एम जाणी ज्ञविक-  
जीवें परिग्रहनी विरति करवी ॥ इति परिग्रहविषे  
मस्मण कथा समाप्ता ॥ ४४ ॥

हवे क्रोधजयने माटें उपदेश कहे डे.

यो मित्रं मधुनो विकारकरणे संत्राससंपादने,  
सर्पस्य प्रतिबिंबमंगदहने सप्तार्चिषः सो-  
दरः ॥ चैतन्यस्य निषूदने विषतरोः सब्र-  
ह्मचारी चिरं, स, क्रोधः कुशलान्निलाषकुश-  
लैः प्रोन्मूखमुन्मूख्यताम् ॥ ४५ ॥

अर्थः— हे दोको ! ( कुशलान्निलाषकुशलैः के० )  
पोताना जीवना श्रेयनी वांगमां चतुर एवा पुरु-  
षोयं ( सः के० ) ते ( क्रोधः के० ) क्रोध, ( प्रोन्मूलं  
के० ) समूलथीज जेम होय तेम ( उन्मूख्यतां के० )  
उष्ठेदन करवो, ते क्रोध केहवो डे ? तो के ( यः  
के० ) जे क्रोध, ( विकारकरणे के० ) चित्तादिने वि-  
कारना करवामां ( मधुनः के० ) मद्यनो ( मित्रं के० )  
मित्रडे. वलीजे क्रोध, ( संत्राससंपादने के० ) संत्रास  
मेलववामां एट्ले ज्ञय उत्पन्न करवामां ( सर्पस्य के० )  
सर्पनो ( प्रतिबिंबं के० ) प्रतिबिंबरूप अथवा

सर्पसमान डे. वबी जे क्रोध, ( अंगदहने के० ) श-  
रीर दहनमां ( सप्तार्चिषः के० ) अग्निनो ( सोदरः  
के० ) त्राता डे. वबी जे क्रोध, ( चैतन्यस्य के० )  
ज्ञानना ( निषूदने के० ) नाश करवामां ( चिरं  
के० ) अतिशयपणायें करी ( विषतरोः के० ) विष-  
वृक्षनो ( सब्रह्मचारी के० ) साधर्मिक डे. अर्थात्  
ज्ञानना नाश करवाने विषे विष समान डे. माटें  
ते क्रोधनो त्याग करवो ॥ ४५ ॥

टीकाः—अथक्रोधजयार्थमुपदेशमाह ॥ योमित्र-  
मिति ॥ जो लोकाः ! कुशब्दा निखाषकुशलैः आ-  
त्मनः श्रेयोवांडाचतुर्नरैः सः क्रोधः कोपोनिर्मूलं स-  
मूलं यथास्यात्तथा उन्मूद्यतां उष्णियतां । सः कः ?  
यः क्रोधः विकारकरणे चित्ता दिविकारविधाने म-  
धुनो मद्यस्य मित्रं सुहृत् । पुनर्यः क्रोधः संत्राससं-  
पादने जय जनने सर्पस्य प्रतिबिंबं सर्पसदृशं ।  
पुनर्यः क्रोधोऽगदहने शरीरप्रज्वालने सप्तार्चिषोग्नेः  
सोदरः अग्नेत्रीता । पुनर्यः क्रोधश्चैतन्यस्य ज्ञानस्य  
निषूदने नाशने विषतरोर्विषवृक्षस्य चिरमतिशयेन  
सब्रह्मचारी सार्थी ॥ ४५ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—गीताढंद ॥ मात्रा ढवीश ॥ जो

सुजन चित्त विकार कारन, मनहुं मदिरा पान ॥  
 जो जरम जय चिंता बढावन, असित सरप स-  
 मान ॥ जो जंतुजीवन हरन, विषसम, जग दहन  
 दवदान ॥ सो कोपरासि विनासि जवि जन, ल-  
 हत शिवसुख थान ॥ ४५ ॥

वद्वी पण क्रोधजयने माटें कहे डे.

॥ हरिणीवृत्तम् ॥ फलति कलितश्रेयः श्रे-  
 णिप्रसूनपरंपरः, प्रशमपयसा सिक्तो मुक्ति  
 तपश्चरणद्गुमः ॥ यदि पुनरसौ प्रत्यासत्ति  
 प्रकोपहविर्जुजो, जजति लज्जते जस्मीन्नावं  
 तदा विफलोदयः ॥ ४६ ॥

अर्थः—( तपश्चरणद्गुमः केण ) तप चारित्ररूप  
 जे वृक्ष ते ( मुक्ति केण ) मोक्षने ( फलति केण )  
 निष्पादन करेडे. ते केहवो वृक्ष डे? तो के ( कलित  
 श्रेयः श्रेणिप्रसूनपरंपरः केण ) उत्पन्न करी डे जाए  
 कव्याणनीज पंक्ति होय नहीं तेम पुष्पनी पंक्ति  
 जेणे. वद्वी ते वृक्ष केहवो डे ? तो के ( प्रशम-  
 यसा केण ) उपशमरूपजलें करी ( सिक्तः केण )  
 सिंचेखो डे. तो पण ( पुनः केण ) वद्वी ( असौ केण )

( ४१७ )

एवृक्षः ( यदि के० ) जो ( प्रकोपहविर्जुजः के० ) प्र-  
कोपाग्निनी ( प्रत्यासत्तिं के० ) समीपताने ( चजति  
के० ) आश्रय करे डे. ( तदा के० ) तो ( चस्मी-  
ज्ञावं के० ) चस्मज्ञावने ( खजते के० ) प्राप्त थाय  
डे. ते केहवो उत्तो प्राप्त थाय डे? तो के ( विफलो  
दयः के० ) गयो डे फलनो उदय जे थकी अर्थात्  
फलोदय रहित उत्तो चस्म ज्ञावने प्राप्त थाय डे.  
माटें क्रोधनो त्याग करवो ॥ ४६ ॥

**टीका:-**—फलतीति ॥ तपश्चारित्ररूप एव झुमो वृ-  
क्षः मुक्तिं मोक्षं फलति निष्पादयति । कथंचूतः ?  
कलिताश्रेयःश्रेणिप्रसूनपरंपरः । कलिता उत्पादिता  
श्रेयसां पुण्यानां कद्याणानां श्रेणिः राजिरेव प्रसू-  
नानां पुण्याणां परंपरा पंक्तिर्येन सः । पुनः कथंचू-  
तः ? प्रशमपयसा उपशम एव जबं तेन सिक्तः सेकं  
प्रापितः यदि पुनः परंतु असौ तपश्चरणझुमः प्रको-  
पहविर्जुजः क्रोधवन्द्वेः प्रत्यासत्तिं समीपं चजति  
आश्रयति, तदा चस्मीज्ञावं चस्मरूपतां खजते प्रा-  
भोति । कथं चूतः ? विफलोदयः । विगतः फलस्य  
उदयो यस्मात् फलोदयरहितः ॥ ४६ ॥

**चाषाकाव्यः—** कवित्त मात्राण् ॥ जब मुनि कोइ

बोश्तप तरुवर, उपसम जख सींचत चित्त खेत ॥ उ-  
दित ज्ञान साखा गुन पञ्चव, मंगल पुहप मुगति  
फल हेत ॥ तव तहिं कोप दावानल उपजत, महा  
मोह दख पवन समेत ॥ सो जसमंत करत रिन  
अंतर, दाहत विरख सहित मुनिचेत ॥ ४६ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्तद्वयम् ॥ संतापं तनुते  
ज्ञिनत्ति विनयं सौहार्दमुत्सादय, त्युद्रेगं जन-  
यत्यवद्यवचनं सूते विधत्ते कथिम् ॥ कीर्ति-  
कृततिष्ठर्मतिं वितरति व्याहंति पुण्योदयम्,  
दत्ते यः कुण्डिं स हातुमुचितो रोषः स-  
दोषः सताम् ॥ ४७ ॥

अर्थः—( सः केष ) ते ( रोष केष ) क्रोध, ( स-  
तां केष ) सत्पुरुषोने ( हातुं केष ) त्यागवाने ( उ-  
चितः केष ) योग्य ढे. ए केहवो क्रोध ढे ? तो के  
( यः केष ) जे रोष, ( सदोषः केष ) अनेक दोषो-  
यें सहित ढे. तथा ( संतापं केष ) चित्तोद्रेगने  
( तनुते केष ) विस्तारे ढे, वदी ( विनयं केष ) वि-  
नयगुणने ( ज्ञिनत्ति केष ) ज्ञेदे ढे. वदी ( सौहा-  
र्दं केष ) मित्रज्ञावने ( उत्सादयति केष ) विनाश

करे ठे, वद्वी उद्धेगं केण ) उद्धेगने ( जन यति केण ) उत्पन्न करे ठे. वद्वी ( अवद्यवचनं केण ) असत्य-वचनने ( सूते केण ) उत्पन्न करे ठे. वद्वी ( कलिं केण ) कलहने ( विधत्ते केण ) धारण करे ठे. वद्वी ( कीर्ति केण ) यशने ( कृत्ति केण ) भेदे ठे. वद्वी ( ऊर्मिति केण ) ऊष्टबुद्धिने ( वितरति केण ) विस्तारे ठे. वद्वी ( पुण्यो दयं केण ) धर्मना उदयने ( व्याहंति केण ) विनाश करे ठे, वद्वी ( कुगतिं केण ) नरक-तिर्यगतिने ( दत्ते केण ) आपे ठे. माटे ते क्रोध सज्जने त्याग करवा योग्य ठे ॥ ४७ ॥

टीकाः—पुनः क्रोधस्य दोषमाह ॥ संतापस्ति ॥ स रोषः क्रोधः सतां सत्पुरुषाणां हातुं त्यक्तुं उचितो योग्योस्ति । कथं ज्ञूतः रोषः ? सदोषः अनेक दोषैः सहितः । सः कः ? यो रोषः संतापं चिन्तो द्वेगं तनुते विस्तारयति । पुनर्योरोषो विनयं विनयगुणं ज्ञनत्ति विदारयति विनाशयति । पुनर्यः सौहार्दं मित्रज्ञावं उत्सादयति विनाशयति । पुनर्यः उद्देगं उच्चाटं जनयति । पुनर्यः अवद्यवचनं असत्यवचनं सूते उत्पादयि । पुनर्यः कलिं कलहं विधत्ते करोति । पुनर्योरोषः कीर्त्यर्थशः कृत्ति डिनत्ति । पुनर्योरुर्म-

तिं छुष्टबुद्धिं वितरति दत्ते । पुनर्यो पुण्योदयं धर्म-  
स्य उदयं व्याहंति विनाशयति । पुनर्यः कुगतिं न-  
रकतिर्यग्गतिं दत्ते । स रोषः सतां हातुं उचितः ॥४७॥

ज्ञाषाकाव्यः—वस्तुष्टुंद ॥ कलह मंमन कलह  
मंमन करन उदवेग, जस खंमन हित हरन छुःख  
विलाप संताप साधन ॥ छुरवैन समुच्चरन धरम  
पुन मारग विराधन ॥ विनय दमन छुरगति गम-  
न, कुमति हरन युन लोप ॥ ए सब लष्णन जानि  
मुनि, तजहिं ततष्णन कोप ॥ ४७ ॥

वली पण क्रोधना दोषो कहे डे.

योधर्म दहति जुमं दवश्वोन्मथनाति नी-  
तिं लताम् ॥ दंती वेङ्कलां विधुंतुदश्व क्षि-  
श्वाति कीर्ति नृणाम् ॥ स्वार्थं वायुरिवांबुदं  
विघटयत्युद्वासयत्यापदम्, तृष्णां धर्मश्वो-  
चितः कृतकृपालोपः स कोपः कथम् ॥ ४८ ॥

अर्थः—( सः केऽ ) ते ( कोपः केऽ ) क्रोध, ( क-  
शं केऽ ) कये उपायें करी टालवाने ( उचितः केऽ )  
योग्य डे ? अर्थात् कोइ उपायथी टालवा लायक  
नथी. ( यः केऽ ) जे कोप ( धमं केऽ ) धर्मनें ( द-

हति केण ) जस्म करे ढे केनी पेरें ? तोके ( झुमं  
 केण ) वृक्षने ( दवश्व केण ) दावानख जे तेजं जेम.  
 अर्थात् जेम दावानख वृक्षने बाले ढे तेम. बली ( नीतिं  
 केण ) न्यायने ( उन्मथनाति केण ) उन्मूलन करे ढे. केनी  
 पेरें ? तो के ( दंती केण ) हस्ती ( खतामिव केण ) खता-  
 नेज जेम. अर्थात् हाथी जेम खताने उखेडी नाखे  
 ढे तेम. बली जे क्रोध ( नृणां केण ) मनुष्योनी ( की  
 र्ति केण ) कीर्तिने ( क्विभाति केण ) क्वेश पमाडे  
 ढे. अर्थात् कीर्तिनो नाश करे ढे. केनी पेरें ? तो  
 के ( विधुंतुदः केण ) राहु, ( इंझुकलामिव केण )  
 चंडकलानेज जेम. बली जे क्रोध, ( स्वार्थ केण )  
 स्वार्थने ( विघटयति केण ) नाश करे ढे, केनी परें ?  
 तो के ( वायुः केण ) वायु जे ढे, ते ( अंबुदमिव  
 केण ) मेघनेज जेम. बली जे क्रोध, ( आपदं केण )  
 कष्टने ( उद्धासयति केण ) विस्तारे ढे. केनी पेरें ?  
 तो के ( धर्मः केण ) गरमी, ( तृष्णामिव केण ) तृ-  
 षानेज जेम, अर्थात् जेम तापमां तृष्णा वधे ढे तेम.  
 बली ते कोप केहवो ढे. ? तो के ( कृतकृपालोपः  
 केण ) कस्यो ढे कृपानो नाश जेणे एवो ढे ॥ ४७ ॥  
 क्रोधप्रक्रम संपूर्ण ॥

टीकाः—यो धर्ममिति ॥ सः कोपः क्रोधः कथं  
 केनोपायेनोचितोयोग्यः स्यात् ? अपि तु न कथम-  
 प्युचितः । सः कः ? यः कोपोधर्म श्रेयोदहति च-  
 स्मीकरोति । कः कमिव ? दवो दावानबो द्गुममि-  
 व । यथा दावानबोद्गुमं वृक्षं दहति । पुनर्योनीतिं  
 न्यायं उन्मथनाति उन्मूलयति । कः कामिव ? दंती  
 हस्ती लतामिव । यथा हस्ती लतामुन्मूलयति ।  
 नृणां मनुष्याणां कीर्ति क्षिक्षाति पीडयति गमयति ।  
 कः कामिव ? विधुंतुदो राहुरिं द्गुकबां चंद्रलेखामिव ।  
 पुनर्यो रोषः स्वार्थं विघटयति स्फेटयति । कः क-  
 मिव ? वायुरंबुदमिव । यथा वायुर्मेघं विघटयति ।  
 पुनर्यः । आपदं कष्टं जह्वासयति विस्तारयति । कः  
 कामिव ? धर्मः श्रीष्मः तृष्णामिव । यथातपे स्तृषां  
 वर्जयति । कथंज्ञूतः कोपः ? कृतः कृपायाः लोपो  
 विनाशो येन सः ॥ ४७ ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्या-  
 ख्यायां हर्षकीर्तिन्जिः ॥ सूरिन्जिर्विहितायां तु, क्रोधस्य  
 प्रक्रमोऽजनि ॥ १० ॥ इति दशम क्रोधप्रक्रमः ॥ १० ॥

जाषाकाव्यः—ठप्पयष्ठंद ॥ कोप धर्म धन दहै,  
 अगनि जिम विरख विनासै ॥ कोप सुजस आवैरै,  
 राहु जिम चंद गिरासै ॥ कोप नीति दलमलै, नाग

जिम लता विहंकै ॥ कोप काज सब हरै, पवन  
जिम जलधर खंमै ॥ संचरत कोप छुख उपजै, बढ़ै  
तृषा जिम धूपमहं ॥ करुना विलोप गुन गोप जुत,  
कोप निसिङ्क महंत कह ॥ ४७ ॥

कथा:- क्रोधत्याग उपर गजसुकुमारनी कथा ॥  
सौराष्ट्रदेशेण द्वारिका नगरी ठे, तिहाँ कृष्णवासुदेव  
राज्य करे ठे. एकदा देवकीजीयें गवाह्नें बेराँ थकाँ  
कोइ स्त्रीने पोताना बालकने रमाडती दीर्ठी, ते  
जोइने मनमाँ चिंतव्युं जे मुझने पुत्र होय तो हुं  
पण हुलराबुं ? एम धारी चिंतातुर थइ रही. तिहाँ  
श्रीकृष्णेण चिंतानुं कारण पूब्युं. देवकीजीयें बला-  
त्कारथी पोतानुं अन्निष्टित कहुं. पठी माताने सं-  
तोषी पोषधशालायें आवी अष्टम तप करी हरणी-  
गमेषी देवता आराध्यो, ते प्रसन्न थइने कहेवा ला-  
ग्यो के तमारी माताने पुत्र थाशो, पण ते यौवनाव-  
स्थामाँ दीक्षा लेशो. पठी देवप्रज्ञावें नवमासें देव-  
कीजीने पुत्र थयो, गजसुकुमार नाम दीधुं. अनुक्रमें  
सकलकला जाण्यो, यौवनावस्था पास्यो, सोमिल  
ब्राह्मणनी पुत्री पराण्यो, एवामाँ श्रीनेमिनाथ समो-  
सख्या, तेमनी पासेंथी उपदेश सांजली माताने स-

मजाकी दीक्षा लीधी. द्विविध शिक्षा पामीने प्रचु-  
ने पूर्व्युं के महाराज ! शीघ्र मोहङ्ग आपो. प्रचु बो-  
द्ध्या के स्मशानमां काउस्सगग करीयें, हमाथी उ-  
पसर्ग सहन करीयें, तो तरत मोहप्राप्ति आय, ते  
सांजली प्रचुनी आङ्गा मागी मसाणमां जइ काउ-  
स्सगग कर्खो, तेवारें गामथी आवतां सोमिलि ब्रा-  
ह्यणें जमाइने दीरो. के तरत क्रोध उपनो जे एणे  
महारी पुत्रीने छुःखी करी तो हुं पण एने छुःखी  
करुं ? एम विचारी रीशथी मस्तक सूधी माटीनी  
पाल बांधी, मांहे खेरना अंगारा जस्ता. गजसुकु-  
मारें चिंतव्युं के ए महारो उपकारी थयो रे, एना  
उपसर्गथी महारां कर्म द्वय थशे ? एम निश्चब  
ध्यान धरी केवलज्ञान पामी मोहें गयो. प्रजातें  
श्रीकृष्णें जगवानने पूर्व्युं के महारो लघुबंधव क्यां  
रे ? ते कहो. जगवानें सर्व वृत्तांत कहुं तेवारें श्री-  
कृष्णें पूर्व्युं के मारनार कोण रे ? जगवानें कहुं के  
हमणां मार्गें जातां तुझने देखशे के तरत तेनुं ह-  
दय फाटी जाशे अने मरण पामशे ! श्रीकृष्ण पण  
जगवानने वांदी पाडा वछ्या अने मार्गमां तेमज  
दीरुं, तेवारें मनमां खेद पाम्या. ए रीतें गजसुकु-

( ४६ )

मार क्रोध जीतवाथी मोहँ गयो. अने सोमिल  
ब्राह्मण मरी छुर्गतियें गयो. ए माटें क्रोधनो जथ  
करवो॥इति क्रोध जयोपरि गजसुकुमारकथा ॥४७॥

हवे अहंकारना दोषो कहे डे.

॥ मंदाक्रांतावृत्तम् ॥ यस्मादाविर्ज्ञवति वि-  
ततिर्झस्तरापन्नदीनाम्, यस्मिन् शिष्टान्निरु-  
चितगुणग्रामनामापि नास्ति ॥ यश्च व्यासं  
वदति वधधीधूम्यया क्रोधदावम्, तं माना-  
द्धिं परिहर छरारोहमौचित्यवृत्तेः ॥ ४८ ॥

अर्थः—हे चब्य ग्राणी ! ( औचित्यवृत्तेः केण )  
उचित आचरण करवाथी, अर्थात् योग्यविनय कर-  
वाथी ( तं केण ) ते ( मानाद्धिं केण ) अहंकाररूप  
पर्वतने ( परिहर केण ) त्याग कर. ते मानाद्धि ए-  
टक्के मानरूप पर्वत कहेवो डे ? तो के ( यस्मात्  
केण ) जेथकी ( डुस्तरा केण ) न तराय एवी (आ-  
पन्नदीनां केण ) विपत्तिरूप नदीनी ( विततिः केण )  
पंक्ति, ते ( आविर्ज्ञवति केण ) प्रगट आय डे. जेम  
बीजा पर्वतोथकी पण नदीनी श्रेणि उत्पन्न आय  
डे तेम. वद्दी ( यस्मिन् केण ) जे मानरूप पर्वतने

विषे ( शिष्टाच्चि रुचित गुणग्रामनामापि केण ) उत्तम पुरुषोने प्रीतिदायक एवा जे ज्ञानादिक गुणो अथवा औदार्यादिक जे गुणो तेनो जे समूह, तेनुं जेमां नाम पण ( नास्ति केण ) नशी. ( च केण ) वद्धी ( यः केण ) जे मानाङ्गि, ( क्रोधदावं केण ) क्रोधरूप दावानलने ( वहति केण ) वहन करे डे. ते क्रोधदावानल केहवो डे ? तो के ( वधधीधू-स्यया केण ) हिंसाबुद्धिरूप धूमें करीने ( व्यासं केण ) व्यास डे. वद्धी ( डुरारोहं केण ) उपर चडवाने अशक्य अर्थात् जेनो पार पामवाने पण अशक्य थवाय डे. अथवा बीजो अर्थ करवो. ते जेम के ( औचित्य वृत्तेः केण ) उचिताचरण करनारने ( डुरारोहं केण ) ते मानाङ्गि चडवाने अशक्य डे. अर्थात् उचिताचरण करनारने मानाङ्गिनो अज्ञाव डे॥४४॥

टीकाः—अथ मानस्य अहंकारस्य दोषानाह ॥  
यस्मादिति । ज्ञो ज्ञव्यप्राणिन् ! औचित्यवृत्तेः उचिताचारकरणात् । तद्योग्यविनयविधानात् तं मानाङ्गि मानएव अहंकारएव अङ्गिस्तं अहंकार-पर्वतं परिहर । त्यज मुंच । तं कं ? यस्मान्मानाङ्गेर्द्धस्तरा तरीतुं अशक्या । आपन्नदीनां क-

ष्टरूपनदीनां विततिः श्रेणिराविर्जवति प्रकटीज्ञव-  
ति । अन्यस्मादप्यर्जेन्दीविततिः प्राङ्गुर्जवति । तथा  
यस्मिन्मानाङ्गौ शिष्टाज्ञिरुचितगुणग्रामनामापि ना-  
स्ति । शिष्टानां उत्तमानां अज्ञिरुचिताः प्रीतिदा-  
यिनोये गुणा ज्ञानादयः औदार्यादयो वा तेषां ग्रामः  
समूहस्तस्य नामापि नास्ति । गुणानां लवदेशोपि  
न । पुनर्यो मानाङ्गिः क्रोधदावं क्रोधदावानलं वहति  
धत्ते सः । कथं चूतं क्रोधदावं ? वधधीधूम्य या व्या-  
सं हिंसाबुद्धिधूमसमूहेनालीढं । पुनः कथं चूतं क्रो-  
धदावं ? दुरारोहं आरोदुमशक्यं । अथवा औचि-  
त्यवृत्तेः योग्यवृत्तेः दुरारोहं ॥ ४५ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—कवित्त मात्रा० ॥ जातें निकसि  
विपति सरिता सब, जगमें कैलि रही चिहुं औरा॥  
जाके ढिग गुन गाम नाम नहिं, माया कुमति गुफा  
अति घोर ॥ जह वध बुद्धिधूमरेखा सम, उदित  
कोप दावानल जोर॥ सो अज्ञिमान पहार पटंतर,  
तजत तांहि सर्वज्ञ किसोर ॥ ४५ ॥

शिखरिणीवृत्तम् ॥ शमालानं चंजन् विम-  
लमतिनाडींविघटयन्, किरन् छर्वाक्लपांशू-

त्करमगणयन्नागमशृणिम् ॥ ऋमन्नूर्व्या  
स्वैरं विनयनयवीर्थीं विद्वयन्, जनः कं  
नानर्थं जनयति मदांधोद्विपद्व ॥ ५० ॥

अर्थः— ( मदांधः केण ) अहंकारे करी गयां डे  
न्नावरूप नेत्र जेनां एवो ( जनः केण ) प्राणी ( कं  
केण ) क्या ( अनर्थं केण ) अनर्थने ( नजनयति  
केण ) नथी उत्पन्न करतो ? अर्थात् सर्वं अनर्थने  
उत्पन्न करे डे. केनी पेरें ? तो के ( द्वीपद्व केण )  
मदोन्मत्त हाथीज जेम. शुं करतो डतो अनर्थने उ-  
त्पन्न करे डे ? तो के ( शमालानं केण ) शमतारू-  
प आलान एटदे गजबंधन स्तंज तेने ( जंजन् केण )  
जांजतो डतो. वली शुं करतो डतो ? तो के ( वि-  
मलमतिनाडीं केण ) निर्मलबुद्धि रूप नाडि जे बं-  
धनरङ्गु तेने ( विघटयन् केण ) त्रोडतो डतो. वली  
( ऊर्वक्षिपांशूत्करं केण ) ऊर्वचनरूप जे धूड तेना  
जे समूह तेने ( किरन् केण ) विक्षेपण करतो डतो.  
वली ( आगमशृणिं केण ) सिद्धांत रूप अंकुशने ( अ-  
गणयन् केण ) न गणो तो डतो वली ( ऊर्व्या केण ) पृ-  
थवीने विषे ( स्वैरं केण ) स्वेष्टायें करी ( ऋमन् केण )

नमतो भतो, वली ( विनयनयवीर्थी के० ) विनय-  
रूप न्यायश्रेणि तेने ( विद्वयन् के० ) विनाश क-  
रतो भतो अनर्थने उत्पन्न करे थे. अर्थात् जेम अ-  
हंकार मदांध पुरुष उपर कहेली वात करतो भतो  
अनर्थ उत्पन्न करे थे, तेम मदांध हाथी पण एट-  
ली वस्तु उत्पन्न करतो भतो अनर्थने करे थे ॥ ५० ॥

टीकाः—न्योऽपि मानदोषानाह ॥ शमालानमि-  
ति ॥ मदेन अहंकारेण अंधो गतजावेद्दणो जनः  
कं कं अनर्थं न जनयति नोत्पादयति ? अपि तु स-  
र्वं अनर्थं जनयति । क इव ? द्विष इव । मत्तगज  
इव । यथा मदांधो द्विषोऽनर्थं उपद्वरं जनयति ।  
किं कुर्वन् ? शमालानं चजन् शमएव उपशम एवा-  
द्वानः गजबंधनस्तंजस्तं चंजन् उन्मूलयन् । पुनः  
किं कुर्वन् ? विमल मतिनार्दीं निर्मलबुद्धिमेव ना-  
र्दीं बंधनरङ्गं विघटयन् त्रोटयन् । पुनः किं कुर्वन्  
द्वुर्वाकि पांशुत्तकरं द्वुर्वागेव द्वुर्वचनमेव पांशुर्धूकि-  
स्तस्याः उत्करं समूहं किरन् विद्विषन् । पुनः आ-  
गमएव सिद्धांतएव शृणिः अकुशस्तं अगणयन् ।  
अविचारयन् अवमानयन् । ऊर्ध्वा पृथ्वयां स्वैरं स्वै-  
र्धया भ्रमन् विचरन् । पुनर्विनयनयवीर्थीं । विनय

( ४३१ )

एव नयवीशीः न्यायश्रेणिस्तं विद्वयन् विध्वंसयन्  
अन्योऽपि मदांधोहस्ती एतानि वस्तुनि करोति ॥ ५० ॥

ज्ञाषाकाव्यः—रोडकठंद ॥ जंजै उपसम थंज,  
सुमति जंजीर विहंसै ॥ कुवचन रज संग्रहै, विनय  
वन पंकति खंडै ॥ जगमें फिरै सुठंद, वेद अंकुश  
नहिं मानै ॥ गज ज्यौं नर मद अंध, सहज सब  
अनरथ रानै ॥ ५० ॥

वद्वी पण मानना दोषो कहे डे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ औचित्याचरणं  
विलुंपति पयोवाहं नजस्वानिव, प्रध्वंसं वि-  
नयं नयत्यहिरिव प्राणस्पृशां जीवितम् ॥  
कीर्ति कैरविणीं मतंगजइव प्रोन्मूलयत्यंज-  
सा, मानोनीचइवोपकारनिकरं हंति त्रि-  
वर्गं नृणाम् ॥ ५१ ॥

अर्थः—( मानः केण ) अहंकार, ( नृणां केण )  
मनुष्यना ( त्रिवर्ग केण ) धर्म, अर्थ, काम, ए त्रण  
वर्ग जे तेने ( हंति केण ) नाश करे डे. केनी परें ?  
तो के ( नीचः केण ) नीच पुरुष, ( उपकारनिकर-  
मिव केण ) उपकारसमूहनेज जेम हणे डे तेस.

वद्वी ते मान, ( श्रौचित्याचरणं केऽ ) योग्य एवा  
आचरणने ( विलुप्ति केऽ ) नाश करे डे. केनी  
परें ? तो के ( नज्जस्वान् केऽ ) वायु ( पयोवाह-  
मिव केऽ ) मेघनेज जेम, वद्वी ( प्राणस्पृशां केऽ )  
प्राणीना ( विनयं केऽ ) अच्युत्तानादिक विनयने  
( प्रध्वंसं केऽ ) द्वयप्रत्यें ( नयति केऽ ) पमाडे डे.  
केनी परें ? तो के ( अहिः केऽ ) सर्प, ( जीवित-  
मिव केऽ ) जीवतरनेज जेम द्वय पमाडे डे, तेम.  
अर्थात् जेम सर्प जीवितने द्वय पमाडे डे तेम ते  
मानी पुरुष विनयनो नाश करे डे. वद्वी ( अंजसा  
केऽ ) वेगं करी ( कीर्ति केऽ ) कीर्तिने ( प्रोन्मू-  
ख्यति केऽ ) उन्मूखन करे डे. केनी परें ? तो के  
( मतंगजश्व केऽ ) मदोन्मत्त हस्ती ( कैरविणीं केऽ )  
कमलिनीनेज जेम. अर्थात् हस्ती जेम कमलिनीने  
उन्मूखन करे डे तेम कीर्तिनुं उन्मूखन मान करे डे। ५६।

टीका:- श्रौचित्येति ॥ पुनराह ॥ मानोऽहंकारो  
नृणां पुंसां त्रिवर्गं धर्मार्थं कामरूपं हंति नाशयति ।  
कः किमिव ? नीचः मनुष्यः उपकारनिकरमिव ।  
यथा नीचः उपकारसमूहं हंति तथा । पुनर्मानः  
श्रौचित्याचरणं योग्याचारं विलुप्ति स्फेटयति ।

कः कमिव ? नन्नस्वान् वायुः पयोवाहमिव । पुनर्मानः प्राणस्पृशां प्राणिनां विनयं अच्युष्टानादिकं प्रध्वंसं क्षयं नयति । कः किमिव ? अहिः सप्रोजी-वितमिव यथा सप्रोजीवितं क्षयं नयति । पुनरंजसा वेगेन कीर्तिं यशः प्रोन्मूलयति । कः कामिव ? मतंगजो हस्ती कैरविणीं कमलिनीं यथा प्रोन्मूलयति ॥५१॥

नाषाकाव्यः— कडखा छंद ॥ मान सवि उचित आचार जंजनकरै, पवन संचार जिम घन विहंकै ॥ मान आदरत नय विनय लोपै सकल, चुजग विष ज्ञीर जिम मरन मंडै ॥ मानके उदित जगमांहि विनसै सुजस, कुपित मातंग जिम कुमुद खंडै ॥ मानकी रीति विपरीत करत् ति जिम. अधमकी प्रीति नर नीति ढंडै ॥ ५१ ॥

वब्धी पण मानना दोषो कहे डे.

वसंततिलकावृत्तम् ॥ मुण्णाति यः कृतसम-  
स्तसमी हितार्थं, संजीवनं विनयजीवितमं-  
गजाजाम् ॥ जात्यादिमानविषजं विषमं वि-  
कारम्, तं मार्दवामृतरसेन नयस्व शांति-  
म् ॥ ५७ ॥ इति मानप्रक्रमः ॥ ११ ॥

( ४३४ )

अर्थः—( यः केऽ ) जे अहंकार, ( अंगज्ञाजां केऽ ) प्राणीना ( विनयजीवितं केऽ ) विनयगुणरूप जीवितने ( मुष्णाति केऽ ) उद्देदन करे डे. एकेह- दुं विनयजीवित डे? तो के ( कृतसमस्तसमीहिता- र्थसंजीवनं केऽ ) करुं डे समस्त वांछितार्थनुं सं- जीवन जेणे एवुं डे. माटें ( तं केऽ ) ते ( जात्या दिमानविषजं केऽ ) जाति, लाज, कुल, ऐश्वर्य,बल, रूप, तप, श्रुत, तेनो जे अहंकार ते रूप जे विष, तेथकी उत्पन्न अयेला एवा ( विषमं केऽ ) घोर एवा ( विकारं केऽ ) विकारने ( माईवामृतरसेन केऽ ) मृदुतारूप अमृतरसें करी ( शांतिं केऽ ) उपशमप्रत्यें ( नयस्व केऽ ) पमाडो अर्थात् मानने नम्रतारूप रसें करी शांतिप्रत्यें पमाडो ॥ ५७ ॥  
इति एकादश मानप्रक्रमः ॥ ११ ॥

टीका:-न्यूयश्चाह ॥ मुष्णातीति ॥ योमानोऽग- ज्ञाजां प्राणिनां विनय जीवितं विनयगुणरूपं जी- वितं मुष्णाति उड्ठिनन्ति । कथंजूतं विनयजीवितं ? कृतसमस्तसमीहितार्थसंजीवनं । कृतं समस्तानां समीहितार्थानां वांछितार्थानां संजीवनं येन तत् । तं जात्यादिमानविषजं जातिलाजकुलैश्वर्य बलरूपत-

पः श्रुतानां मानोऽहंकार स एव विषं तस्मात्समुद्घवं-  
उत्पन्नं विषमं घोरं विकारं मार्द्वाऽमृतरसेन मृदु-  
तासुधारसेन शांतिं उपशमं नयस्व प्रापय ॥ ॥ मा-  
नत्यागे बाहु बलि नंदीषेण दृष्टांतः ॥ ५७ ॥ सिंदू-  
रप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्तिज्ञिः ॥ सूरि-  
जिर्विहितायां तु, मानस्य प्रक्रमोऽजनि ॥ ११ ॥  
इति मानप्रक्रमः ॥ ११ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—चोपाई ॥ मान विषम वीष तन  
संचरै, विनय विनासै वंतित हरै ॥ कोमल गुन अ-  
मृत संयोग, विनसै मान विषम विष रोग ॥ ५७ ॥

कथाः—मगधदेशों राजगृहनगरीये श्रेष्ठिकराजा  
ठे तेनो नंदिषेण नामें पुत्र गुणें करी पवित्र ठे, ति-  
हाँ गुणशैलचैतये श्रीमहावीर समोसस्या, नंदीषेणे  
जगवानने वांच्या, धर्मदेशना सांचलीने दीक्षा लेवा-  
नो ज्ञाव थयो. तेवारें शासन देवतायें कहुँ के हजी  
तमारे ज्ञोगावली कर्म शेष रह्याँ ठे, ते ज्ञोगव्या प-  
ठी चारित्र लेजो. कारण के अवसरें सर्व रुद्धुं कहे-  
वाय अने अवसरेंज फल दायक थाय, एम शासन  
देवतायें समजाव्युं. तेमनुं वचन अप्रमाण करी  
जवितव्यताने वशें तेणे दीक्षा लीधी. ते घणा वर्षे

पाली, घणी लब्धियो उपनी. एकदा पारणे वहोरवा  
माटे वेश्याने घेर आवीने धर्मलाज्ज दीधो, वेश्यायें  
अर्थलाज्ज कह्यो. तेवारें नंदीषेणे तरणुं ताणीने सा-  
डी बार क्रोड इव्यनो वरसाद वरसाव्यो, यावत्  
ज्ञोगावद्वी कर्मशी तिहां रह्यां. वेश्या साथे ज्ञोग  
ज्ञोगववा लाग्या. तिहां बार वर्षे वही गयां. नित्य  
प्रत्यें दश दश माणसने प्रतिबोध पमाडी श्रीवीर-  
नी पासे दीक्षा देवा मोक्षे.

एकदा ज्ञोगावद्वी कर्मनो क्य थवाथी उपदेश  
देतां नव जणने प्रति बोध पमाडी श्रीवीर पासे  
मोक्ष्या पण दशमो सोनी प्रतिबोध न पास्यो. ते-  
णे कह्युं के जेम मुजने उपदेश आपो गो, तेम तमें  
केम आदरता नशी ? एवामां ज्ञोजनवेला थवाथी  
स्त्रीयें आवीने रीशथी ज्ञोजन करवाने बोलाव्या.  
तेवारें नंदीषेण बोल्यो के दशमो हुं. एम कही श्री-  
वीरपासे चालवा मांमयुं. स्त्रीयें घणी रीतें समजा-  
व्यो, परंतु तेने पण प्रतिबोधी दीक्षा लइ सज्जतियें  
गयो. एम नंदीषेणे अहंकार कस्यो, तो चारित्रथी  
पड्यो. इति मानत्याग उपर नंदीषेणी कथा ॥१३॥  
माटे मान त्यागबुं ॥ ५७ ॥

हवे मायात्यागनो प्रक्रम कहे डे.

मालिनीदृत्तम् ॥ कुशलजननवंध्यां सत्य-  
सूर्यास्तसंध्याम्, कुगतियुवतिमालां, मोह-  
मातंगशालाम्, ॥ शमकमलहिमार्णि ऊर्यशो-  
राजधानीम्, व्यसनशतसहायां, दूरतोमुंच  
मायाम् ॥ ५३ ॥

अर्थः—हे चब्यजन ! ( मायां केष्ठ ) कपटने ( दू-  
रतो केष्ठ ) दूरथकी ( मुंच केष्ठ ) मूक. ए माया  
केहवी डे ? तो के ( कुशल केष्ठ ) द्वेषना ( जनन  
केष्ठ ) उत्पन्न करवामां ( वंध्यां केष्ठ ) वंध्या ल्ली  
समान, तथा ( सत्यसूर्यास्तसंध्यां केष्ठ ) सत्यव-  
चनरूप जे सूर्य तेना अस्तने माटें संध्यासमान डे,  
वली ( कुगतियुवतिमालां केष्ठ ) कुगतिरूप जे ल्ली  
तेने पहेरवानी माला समान डे. वली ( मोहमातं-  
गशालां केष्ठ ) मोहरूप हस्तीने बांधवानी शाला  
समान डे, वली ( शमकमलहिमार्णि केष्ठ ) उपश-  
मरूप जे कमलो तेनी ऊपर पडावामां हिमसमान  
डे वली ( ऊर्यशोराजधानीं केष्ठ ) अपकीर्तिने रहे-  
वाने निवासनगरी डे, वली ( व्यसनशतसहायां

केण ) सहस्र गमे कष्टोनी सहायचूत डे, माटें मायानो दूरथीज त्याग करवो ॥ ५३ ॥

टीका:-अथ मायात्यागमाह ॥ कुशब्देति ॥ ज्ञो ज्ञव्यजन ! मायां कपटं दूरतोमुंज त्यज । कथंचूतां मायां ? कुशब्दस्य क्रेमस्य जनने उत्पादने वंध्यां वंध्यास्त्रीरूपां । पुनः सत्यमेव सूर्यस्तस्याऽस्तमनाय संध्या तां । पुनः किंचूतां ? कुगतिरेव युवतिस्तस्याः वरमाला तां । पुनः 'किंचूतां ? मोहएव मातंगस्तस्य शाला बंधनस्थानं तां । पुनः किंचूतां ? शमएव उपशम एव कमलानि तेषां हिमानी हिमसंहतिः तां । पुनः किंचूतां ? दुर्यशसः अपकीर्तेः राजधानी निवासनगरी तां । पुनः किंचूतां ? व्यसनानां कष्टानां शतानि तेषां सहायो यस्याः सा तां । ईदृशीं मायां दूरतो मुंच ॥ ५३ ॥

जाषाकाव्यः-रोडकब्धंद ॥ कुशब्द जनन कहुं वांज, सत्त रवि हरन सांजयिति ॥ कुगति जुवति उर माल, मोह कुंजर निवास ठिति ॥ शमवारिज हि मरासि, पाप संताप सहायिनी ॥ अजस खानि जग जानि, तज हुं माया डुख दायिनी ॥ ५३ ॥

वद्वी पण मायाना दोषो कहे डे.

उपेष्ठवज्ञाद्यत्तम् ॥ विधाय मायां विविधैरु-  
पायैः, परस्यये वंचनमा चरंति, ते वंचयंति  
त्रिदिवापवर्गं सुखान्महामोहसखाः स्वमेव ५४

अर्थः—( ये कें ) जे जनो ( विविधैः कें ) अ-  
नेक प्रकारना ( उपायैः कें ) उपायोयें करीने  
( मायां कें ) कपटने ( विधाय कें ) करीने ( प-  
रस्य कें ) बीजा जननुं ( वंचनं कें ) वंचनने ए-  
टद्वे अन्य जनोने रगवानुं ( आचरंति कें ) आ-  
चरण करे डे. ( ते कें ) ते जनो ( महामोहसखाः  
कें ) महामोह डे सखाइ जेनो एवा डता अर्थात्  
श्रद्धानयुक्त डता, ( त्रिदिवापवर्गसुखात् कें ) दे-  
वलोक तथा मोहसुखयकी, ( स्वमेव कें ) पोतेंज  
पोताना आत्माने ( वंचयंति कें ) डेतरे डे ॥५४॥

टीका:—पुनराह ॥ विधायेति ॥ ये जनाः विवि-  
धैर्नानाप्रकारैरुपायैर्मायां कपटं विधाय कृत्वा पर-  
स्यान्यजनस्य वंचनं आचरंति कुर्वति ते जनाः ।  
महामोहसखाः महद्वानयुक्ताः संतः त्रिदिवापव-  
र्गसुखात् देवलोकमोहसुखात् स्वयमेवात्मानमेव वं-  
चयति विप्रतारयंत ॥ ५४ ॥

( ४४० )

नाषाकाव्यः—वेसरिण्डं द ॥ मोह मगन माया  
मन संचै, करि उपाउ श्रौरनकों वंचै ॥ अपनी हानि  
लखै नहि सोइ, सुगति हरै छुर्गतिछुःख होइ ॥५४॥

बली वण मायाना दोषो कहे ढे.

ईद्धवंशादृत्तम् ॥ मायामविश्वासविद्वासमं-  
दिरं, झराशयोयः कुरुते धनाशया ॥ सोऽन-  
र्थसार्थं न पतंतमीकृते, यथा बिडालो ख-  
गुडं पयः पिबन् ॥ ५५ ॥

अर्थः—( यः केण ) जे छुराशयः केण ) छुष्टचि-  
त्तयुक्त एवो जीव, ( धनाशया केण ) ऊव्यनी आ-  
शायें करी अर्थात् ऊव्यलोज्जें करी ( मायां केण )  
कपटने ( कुरुते केण ) करे ढे. ( सः केण ) ते प्राणी,  
( पतंतं केण ) आवता एवा ( अनर्थसार्थं केण )  
कष्टना समूहने ( नईकृते केण ) नशी जोतो. केनी  
परें ? तो के ( बिडालः केण ) बिह्वाडो ते ( पयः केण )  
दूधने ( पिबन् केण ) पीतो डतो ( खगुडं केण ) दंदु  
प्रहारने ( यथा केण ) जेम जोतो नशी ! ते केवी  
माया ढे ? तो के ( अविश्वासविद्वासमंदिरं केण )

( २४१ )

अविश्वास जे अप्रतीति तेने रमवानुं यह डे. माटें  
मायानो त्याग करवो ॥ ५५ ॥

टीका:- पुनर्मायादोषमाह ॥ यो दुराशयोद्घष्टचि  
त्तोजनो धनाशया ऊव्यस्य वांडया लोज्जेन मायां  
कपटं कुरुते विदधाति । स जनः आत्मनोऽनर्थसार्थं  
कष्टानां समूहं पतंतं आग्छंतं नेहते नालोकते । क-  
शं ? यथा बिडालो माझारः पयो दुग्धं पिबन् सन्  
लगुडं दंसप्रहारं नेहते ना लोकते कथंचूतां मा-  
यां ? अविश्वासस्य अप्रतीतेः क्रीडाग्यहं । मंदिर-  
शब्दस्याजहृद्विंगत्वं ॥ ५५ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—पद्मीहंद ॥ माया अविसास विला-  
स गेह, जो करै मूढ जन धन सनेह ॥ सोकुगति बंध  
नहिं लखै एम, तजि नय विलाउ पय पिवै जेम ॥ ५५ ॥

बखी मायाना दोषो कहे डे.

॥ वसंततिखकावृत्तम् ॥ मुग्धप्रतारणपरा-  
यणमुझीहीते, यत्पाटवं कपटखंपटचित्तवृ-  
त्तेः ॥ जीर्यत्युपष्ठवमवश्यमिहाप्यकृत्वा, ना-  
पथ्यन्नोजनमिवामयमायतौ तत् ॥ ५६ ॥  
इति मायाप्रक्रमः ॥ १७ ॥

अर्थः— ( कपट्टबंपटचित्तवृत्तेः केऽ ) मायाने वि-  
षे वांगायुक्त डे चित्तवृत्तिजेनी एवा पुरुषनुं ( यत्पाटवं  
केऽ ) जे चातुर्य ( उज्जिहीते केऽ ) प्रकाश आय  
डे, ( तत् केऽ ) ते चातुर्य, ( अवश्यं केऽ ) निश्चे  
करी ( आयतौ केऽ ) आवता समयने विषे ( इहा-  
पि केऽ ) आहिं पण ( उपस्थूत्वं केऽ ) उपद्रवने  
( अकृत्वा केऽ ) न करीने ( नजीर्यति केऽ ) परि-  
णाम पामतुं नथी. अर्थात् ते मायाकृत चातुर्य, कां-  
इ पण उपद्रव कस्या शिवाय परिणाम पामतुं नथी.  
केनी परें ? तो के ( अपथ्यन्नोजनं केऽ ) कुपथ्यनुं  
न्नोजन, ( आमयं इव केऽ ) रोगनेज जेम. अर्थात्  
कुपथ्यन्नोजन, आगामिकालने विषे रोगने उत्पन्न  
कस्या शिवाय परिणाम पामतुं नथी तेम मायाकृत  
चातुर्य पण जाणबुं. हवे ते मायाकृत चातुर्य केहबुं  
डे ? तो के ( मुग्धप्रतारणपरायणं केऽ ) मूर्खजनने  
डेतरवाने तत्पर डे ॥ ५६ ॥ इति माया प्रक्रमः  
॥ १२ ॥ ए माया उपर श्रीमद्विनाथजीना पूर्वज्ञवनी  
कथा जाणवी ते प्रसिद्ध डे माटें आहीं दखी नथी ॥ १२ ॥

टीका:—पुनराह ॥ मुग्धप्रतारणेति ॥ कपटे मा-  
यायां लंपटा वांगायुक्ता चित्तवृत्तिर्मनोव्यापारो य-

स्य तस्य पुरुषस्य यत्पाटवं चातुर्यं उज्जीहीते उद्ध्वा  
सति । तत्पाटवं अवश्यं निश्चयेन आयतौ आगामि-  
नि कादे उपप्लवं उपद्रवं अकृत्वा अविधाय न जी-  
र्यति परिणामं न याति । किं कुतः ? तस्य विपा-  
कोन्नवत्येव । किमिव ? अपथ्यन्नोजनं आमयमिव ।  
यथा अपथ्यं न्नोजनं जेमनं आमयं रोगं अकृत्वा  
आयतौ न जीर्यति । कथं ज्ञूतं पाटवं ? मुग्धानां  
मूर्खानां प्रतारणे वंचने परायणं तत्परं ॥ अत्र म-  
द्वीनाथजीवमहाबलदृष्टांतः ॥ ५६ ॥ इति ॥ सिं-  
दूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकीर्तिज्ञिः ॥ सूरिज्ञि-  
र्विहितांयां तु, मायायाः प्रक्रमोऽजनी ॥ १२ ॥ इति  
द्वादशोमाया प्रक्रमः ॥ १२ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—आज्ञानकब्दं ॥ ज्यौं रोगी करी  
कुपथ, बढावै रोग तन ॥ स्वाद लंपटी जयो, कहै  
मुज जनम धन ॥ त्यौं कपटी करि कपट, मूढ को  
धन हरै ॥ करै कुगतिकों बंध, हरष मनमें धरै ॥ ५६ ॥

हवे लोनत्यागनो उपदेश करे ढे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तद्वयम् ॥ यद्गर्गमटवीम  
टंति विकटं क्रामंति देशांतरम्, गाहंते गहनं  
समुद्रमतनुक्लेशां कृषि कुर्वते ॥ सेवंते कृपणं

पतिंगजघटासंघट्ठः संचरम्, सर्पति प्रधनं  
धनांधितधियस्तद्वोन्नविस्फूर्जितम् ॥५७॥

अर्थः—( धनांधितधियः केऽ ) धने करी अंध अयेदी रे बुद्धि जेनी एवा पुरुषो, अर्थात् लोन्नी जनो ( यत् केऽ ) जे धनने माटें ( डुर्गा केऽ ) न जवाय एवी ( अटवीं केऽ ) अरण्यप्रत्यें ( अटंति केऽ ) शटन करे रे. एटबे अरण्यमां फरे रे. वली ( विकटं केऽ विस्तीर्ण एवा ( देशांतरं केऽ ) देशांतर प्रत्यें ( क्रामंति केऽ ) त्रमण करे रे. वली ( गहनं केऽ ) कोइशी न अवगाहन आय एवा ( समुद्रं केऽ ( समुद्रप्रत्यें ( गाहंते केऽ ) अवगाहन करे रे. वली ( अतनुक्लेशां केऽ ) बहु कष्टे करी साध्य आय एवी ( कृषिं केऽ ) खेतीने ( कुर्वते केऽ ) करे रे. वली ( कृपणं केऽ ) अदाता एवा ( पतिं केऽ ) स्वामीने ( सेवते केऽ ) सेवे रे, वली ( गजघटासंघट्ठः संचरं केऽ ) हस्तिसमूहना यूथें करी जेमां न जवाय एवा प्रधनं केऽ ) युद्धप्रत्यें ( सर्पति केऽ ) जाय रे. ( तत् केऽ ) ते पूर्वोक्त सर्वं ( लोन्नविस्फूर्जितं केऽ ) लोन्ननुं विचेष्टित जाणवुं. अर्थात् लो-

ज्ञवशें करी प्राणी सर्वं चेष्टा करे रे. माटें लोन्न-  
नो ल्याग करवो ॥ ५७ ॥

**टीकाः—**अथ लोन्नत्यागोपदेशमाह ॥ यहुर्गमे-  
ति ॥ धनेन वित्तेनांधिता अंधप्रायकृता धीरुद्धिर्थे-  
षां ते ईदृशाः पुरुषाः । यत् दुर्गां विषमां अटवीं  
अरण्यं अटंति क्रामंति । पुनर्यत् विकटं विस्तीर्णं  
देशांतरं क्रामंति भ्रमंति । पुनर्यत् गहनं दुरवगा-  
हंगाहंते उद्धृंघयंति । पुनर्यत् अतनुक्षेशां बहुकष्ट-  
साध्यां कृषिं कर्षणं क्षेत्रादि कुर्वते विदधते । पुनर्य-  
त् कृपणं अदातारं पतिं स्वामिनं सेवते । पुनर्यत्  
गजघटानां हस्तिसमूहानां संधेन दुःसंचरं गंतुम-  
शक्यं प्रधनं युद्धं प्रति सर्पति गडंति । तत् सर्वं  
लोन्नस्य विस्फूर्जितं । लोन्नस्य चेष्टितं जानीहि ।  
लोन्नवशादेतानि वस्तूनि कुर्वति अतःकारणाद्वान्नोन्नः  
संत्याज्यएव ॥ ५७ ॥

**नाषाकाव्यः—**सवैय्या इकतीसा ॥ सहै घोर सं-  
कट समुद्रकी तरंगनिमें, कंपै चित जीतं पंथ गाहै  
वींज वनमै ॥ छानै कृषिकर्म जामें शर्मको न लेश  
कहुं, संकलेश रूप वहैके छूजि मरै रनमें ॥ तजै  
निज धामकों विराम परदेश धावै, सेवैं प्रज्ञु कृपन

( ४६ )

मदीन रहै मनमें ॥ नोखै धन कारज अनारज म-  
नुज मूढ, ऐसी करतूति करै लोज्जकी लगनमें ॥ ५७ ॥  
वदी पण लोज्जना दोषो कहे डे.

मूलं मोहविषदुमस्य सुकृतांजोराशिकुंजो-  
ञ्जवः, क्रोधाम्नेरणिः प्रतापतरणिप्रब्रादने  
तोयदः ॥ क्रीडासद्व कलेविवेकशशिनः स्व-  
र्णाणुरापन्नदी, सिंधुः कीर्तिलताकलापकल-  
ज्ञोलोज्जः पराज्ञूयताम् ॥ ५८ ॥

अर्थः—हे नवश्लोको ! ( लोज्जः के० ) लोज्ज जे  
डे ते ( पराज्ञूयतां के० ) पराज्ञव करीयें, एट्के  
लोज्जनो त्याग करीयें. ते लोज्ज केहवो डे ? तो के  
( मोहविषदुमस्य के० ) श्रद्धानरूप जे विषतरु ते-  
नुं ( मूलं के० मूल डे. वदी ( सुकृतांजोराशिकुंजो-  
ञ्जवः के० ) पुण्यरूप समुद्रना शोषणने विषे आग-  
स्तिकृषि समान डे, वदी ( क्रोधाम्नः के० ) क्रोधरूप  
जे अग्नि तेनुं ( श्ररणिः के० ) काष्ठ डे, एट्के क्रोधा-  
म्निनुं उत्पत्तिस्थानक डे. वदी ( प्रतापतरणिप्रब्रादने  
के० ) प्रतापरूप सूर्यने ढांकवामां ( तोयदः के० )  
मेघसमान डे, वदी ( कलेः के० ) कलहनुं ( क्रीडा-

सद्ग्राम के० ) लीलागृह ढे, वद्वी ( विवेकशशिनः के० ) पुण्यापुण्यरूप चंद्रमा जे तेने ( स्वर्णाणुः के० ) राहुसमान ढे, वद्वी ( आपन्नदी सिंधुः के० ) आपत्तिरूप नदीयो जे ढे तेने धारण करवामां समुद्र ढे. अर्थात् आपत्तिनुं स्थानक ढे वद्वी ( कीर्तिखताकलापकलज्ञः के० ) कीर्तिरूप जे वद्वी तेनो जे समूह तेना नाशने विषे हस्तीना बच्चा समान ढे ? एवो पूर्वोक्त ऊर्गुण युक्त जे लोक तेनो त्याग करवो ॥५७॥

टीका:-पुनराह ॥ मूलमिति ॥ ज्ञो ज्ञव्या, पराच्छ्रूयतां निराक्रियतां त्यज्यतां । मोहएव अज्ञानमेव विषद्गुमोविषतरुः तस्य मूलं जटारूपं । मूलशब्दस्याङ्गहस्तिंगत्वं । पुनः कथं नृतो लोकः ? सुकृतमेव पुण्यमेवांज्ञोराशिः समुद्र स्तस्य शोषणे कुंजोऽन्नवोऽगस्तिरिव । पुनः क्रोधास्त्रेः अरणिः क्रोधएव अग्निस्तस्य अरणिः काष्ठं उत्पत्तिस्थानं । पुनः प्रतापएव तरणि सूर्यस्तस्याङ्गादने तोयदो मेघोऽभ्रं । पुनः क्षेः कलहस्य कृडासद्ग्राम लीलागृहं । पुनर्विवेकएव पुण्यापुण्यविचारएव शशी चंद्रस्तस्य स्वर्णाणुः राहुः । पुनः आपन्नदीसिंधुः आपदः कष्टान्येव नद्यस्तासां सिंधुः समुद्रस्तासां स्थानरूपत्वात् । पुनः

किंचूतोलोन्नः ? कीर्त्तिरेव लता वद्वी तस्याः कलापः  
समूहस्तस्य विनाशे कलन्नो हस्तशावः । ईदशो-  
लोन्नोजीर्यतां ॥ ५७ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—वृत्त उपरप्रमाणे ॥ पूरन प्रताप  
रवि रोकवेकों धाराधर, सुकृत समुद्र शोषवेकों  
कुञ्जनन्द है ॥ कोप दव पावक जननको अरनि दाढ़,  
मोह विष चूरुहको महा दृढ़कंद है ॥ परम विवेक  
निसिमनि ग्रसि वेकों राहु, कीरति लता कलाप  
दबन गयंद है ॥ कलहको केलि जौन आपदा नदीको  
सिंधु, ऐसो लोन्न याहिको विपाक छुख दंद है ॥ ५७ ॥

फरीने पण लोन्नना दोषो कहे डे.

वसंततिखकावृत्तम् ॥ निःशेषधर्मवनदाह-  
विजून्नमाणे, ऊँखौघन्नस्मनि विसर्पदकी-  
र्त्तिधूमे ॥ बाढ़ धनेंधनसमागमदीप्यमाने, लो-  
न्नानखे शखन्नतां लन्नते गुणौघः ॥ ५८ ॥

अर्थः—( लोन्नानखे केण ) लोन्नरूप अग्निने विषे  
( गुणौघः केण ) ज्ञानादिक गुणोनो समूह, ( शख-  
न्नतां केण ) पतंगपणाने ( लन्नते केण ) प्रात थाय  
डे. अर्थात् अग्निमां जेम पतंग पडीने बखे डे, तेम

( श्लृण )

गुणसमूह, ते लोकरूप अग्निमां पडीने बद्दे रे. हवे ते लोकानब कहेवो रे ? तो के ( निःशेष धर्मवन-दाहविजृंजमाणे के० ) समस्त धर्मरूप जे वन तेने बालवे करी विस्तार पामेलो एवो वद्दी ( डुःखौघ-जस्मनि के० ) डुःखना समूहरूप रे जस्म जेमां एवो, वद्दी ( विसर्पदकीर्तिधूमे के० ) प्रसरती जे अपकीर्ति ते रूप रे धूम जेमां एवो, वद्दी ( बाढ़ के० ) अतिशये करी ( धनेधनसमागमदीप्यमाने के० ) धनरूप जे काष्ठ तेना समागमे दीप्यमान अर्थात् अत्यंत धनरूप इधनें करी जाज्वल्यमान एवो रे तेमां सर्वे गुणो पतंगनीपेरें बद्दी जाय रे ॥५४॥

टीकाः—पुनराह ॥ निःशेषेति ॥ लोकान्नेवान्-लोऽग्निस्तस्मिन् लोकानबे गुणौषोड्जानादिगुणानां उं-धः समूहः शब्दतां पतंगत्वं लक्षते । पतंगवज्जव-लति । कथंचूते लोकानबे ? निःशेषं समस्तं यद्धर्म-एव वनं तस्य दाहेन विजृंजमाणः विस्तारं प्राप्नुवन् । तस्मिन् पुनः कथंचूते ? डुःखानां उंधः समूह एव जस्म रक्षा यत्र स तस्मिन् । पुनः कथंचूते ? विस-र्पत् प्रसरत् अपकीर्तिरेव धूमो यस्मात् सः तस्मि-न् । पुनः कथंचूते ? बाढ़ अतिशयेन धनान्येव ऊ-

( ४५० )

व्याख्येव इंधनानि एधांसि तेषां समागमेन आगमने-  
न दीप्यमानोऽत्यंतं प्रज्वलत् वृद्धिं प्राप्नुवत् तस्मिन् ।  
सर्वे गुणाः पतंगवत् ज्ञवंति ॥ ५५ ॥

ज्ञापाकाव्यः—ठप्प्यहृष्टं द ॥ परम धरम वन दहै,  
डुरित अंबर गति धारे ॥ कुजस धूम उज्जिरै, ज्ञूरि  
ज्ञय जस्म विदारै ॥ डुःख फूलिंग फूंकरै तरब तिला ऊब  
कडौ ॥ धन इंधन आगम, संयोग दिन दिन अति वडौ ॥  
लह लहै लोज पावक प्रबल, पवन मोह उद्धत वहै ॥  
दजहिं उदारता आदि बहु, गुन पतंगको दाव है ॥ ५५  
संतोषें करी लोज निवारण करवा योग्य ढे,  
माटें संतोषना गुणो कहे ढे.

शार्दूलविक्रिडितवृत्तम् ॥ जातः कल्पतरुः पुरः  
सुरगवी तेषां प्रविष्टा गृहम्, चिंतारत्नमुप-  
स्थितं करतखे प्राप्तो निधिः संनिधिम् ॥ वि-  
श्वं वश्यमवश्यमेव सुखज्ञाः स्वर्गापवर्गश्रि-  
यो, ये संतोषमशोषदोषदहनध्वंसांबुदं  
विभ्रते ॥ ६० ॥ लोजप्रक्रमः ॥ १३ ॥

अर्थः— ( ये केण ) जे मनुष्यो ( संतोषं केण )  
तृष्णानो जे निरोध करवो तेने ( विभ्रते केण )

धारण करे डे, (तेषां केण) ते पुरुषोना ( पुरः केण )  
 अग्रने विषे ( कद्यपतरः केण ) कद्यपवृक्ष, ( जातः  
 केण ) उत्पन्न अयो डे. वद्वी ते पुरुषोना ( एहं केण )  
 एहप्रत्येण ( सुरगवी केण ) कामधेनु, ( प्रविष्टा केण )  
 प्रवेश अयेद्वी डे. अर्थात् आवेद्वी डे. वद्वी तेना  
 ( करतद्वे केण ) हस्ततलने विषे ( चिंतारत्नं केण )  
 चिंतामणि रत्न ( उपस्थितं केण ) प्राप्त अयुं डे. वद्वी  
 ते पुरुषोने ( निधिः केण ) ऊव्यज्ञमार, ( सन्निधिं  
 केण ) समीपताने ( प्राप्तः केण ) प्राप्त आय डे. वद्वी  
 ते मनुष्यने ( विश्वं केण ) जगत्, ( अवश्यं केण ) अ-  
 वश्य ( वश्यमेव केण ) वशज आय डे. अने वद्वी  
 ते पुरुषोने, ( स्वर्गापवर्गश्रियः केण ) देवखोकनी  
 अने मोक्षनी संपत्ति ते ( सुखनाः केण ) रुडे प्रका-  
 रें प्राप्त आय डे. हवे ते संतोष कहेवो डे ? तो के  
 ( अशेषदोषदहन केण ) समग्र दोषरूप जे अग्नि  
 तेना ( ध्वंस केण ) नाश करवाने माटें ( अंबुदं  
 केण ) मेघ समान डे. अर्थात् मेघ जेम अग्नि बुजा-  
 ववामां प्रचुर डे तेम दोषोना नाश करवामां संतो-  
 ष डे ते माटें संतोषज कर्त्तव्य डे ॥ ६७ ॥ आहीं  
 सागरश्रेष्ठीनी कथा जाणवी ॥ १३ ॥

टीकाः—संतोषेण लोकोनिवार्यः स्यादतः संतोष  
गुणानाह ॥ जात इति ॥ येजनाः संतोषं तृष्णानि-  
रोधं विभ्रते धारयन्ति । तेषां पुरोऽग्ने कद्वपतरुः कद्वप-  
वृद्धो जातः प्रत्यक्षोऽन्नतुं । पुन स्तेषां यहं सुरगवी  
कामधेनुः प्रविष्टा आगता । पुन स्तेषां करत्के चिं-  
तामणिरत्नं उपस्थितं आगतं । पुनस्तेषां निधिः ऊ-  
व्यस्य निधिः सन्निर्धिं समीपं प्राप्तः । पुनः विश्वं ज-  
गत् अवश्यं निश्चितं तेषां वश्यं जातं । पुनस्तेषां  
स्वर्गपिवर्गश्रियः देवबोक्मोहसंपदः सुखजाः सुप्रा-  
प्याः स्युः । कथंन्नतुं संतोषं ? अशेष दोषदहनध्वं-  
सांबुद्मशेषाश्च ते दोषाश्च अशेषदोषाः तएव दह-  
नः अशेषदोषदहनस्तस्य ध्वंसाय अंबुदं । अतः संतो-  
षएव कर्तव्यः । अत्र सुन्नमचक्रवर्त्ति सागरश्रेष्ठी क-  
था ॥ ६०॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्यायां हर्षकी-  
र्त्तिज्ञिः ॥ सूरिज्ञिर्विहितायां तु, लोकस्य प्रक्रमोऽज-  
नि ॥ इति त्रयोदशोऽन्नप्रस्तावः ॥ ३३ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—कवित्त मात्रात्मक ॥ विलासै काम-  
धेनु ताके घर, पूरे कलपवृक्ष सुखपोष ॥ अखय  
नैन्मार जरै चिंतामनि, तिनकों सुगम सुरग श्रु  
मोख ॥ ते नर वश्य करै त्रिचुवनकों, तिनसों वि-

मुख रहै छुख दोष ॥ वसै निधान सदा तिनके ढिंग,  
जिनके हृदय वसत संतोष ॥ ६० ॥

कथा:- लोन्न उपर सागरश्रेष्ठीनी कथा कहे डे.  
आ जंबुद्धीपने विषे जरतक्षेत्रमां पद्मपुरनामा नगर  
डे, त्यां अतिधनाद्य सागरनामा श्रेष्ठी वसे डे. ते  
एवो कृपण डे के एरे हाथे कागडाने पण उमाडे  
नहिं ते एम जाणे केजो उष्णिष्टहाथे कागडाने उ-  
माडीश तो महारा हाथमां लागेला अन्ननुं एकुं  
कागडाउने मखशे। एवो ते कदरी डे. तेने सुशी-  
ला गुणवती नामा ल्ली डे. तेना एक सोमदत्त, बी-  
जो जयदत्त, त्रीजो धनदत्त, चोथो अमरदत्त. एवा  
चार पुत्रो डे. ते यौवनास्थाने पाम्या, तारें तेना  
पितायें परणाव्या. ते चारे पुत्रो पोतपोतानी ल्लीयो  
साथें विषयसुख जोगवता डता काल गमावता ह-  
ता. अनुक्रमें शोरनी ल्ली गुणवती मरण पामी तेशी  
सागरश्रेष्ठी डुःख पामवा लाग्यो, तेवारें तेना सगां  
वालाउयें दिलासो आपी शोकमुक्त कस्यो.

एक दिवसें ते सागरश्रेष्ठीना चारे पुत्रो बापना  
आदेशशी वाहाणमां बेसी बेपार माटें देशांतरें ग-  
या. पाडबशी सागरश्रेष्ठीनें बोक्किराउनी वहूरोनो

विश्वास न आववाशी पोतें घर आगले खाटलो  
 ढाळी हाथमां लाकडी लङ्ग बेसे. एक दिवसें ते सा-  
 गरश्रेष्ठीने राजायें रलोनी परीक्षा करवा माटें बो-  
 लाव्यो. तेवामां फरतो फरतो कोश्क योगी तेने  
 घेर आव्यो. तेने ठोकराउनी वहूयें मिष्टान्नपानें क-  
 री तृप्त कस्यो. तेवारें जोगीयें संतुष्ट अई ते स्त्री-  
 योने एक मंत्र आप्यो. अने कह्युं के तमें कोश प-  
 ण लाकडा उपर बेसीने आ माहारो आपेलो मंत्र  
 नजी ते लाकडा उपर अडदना दाणा डांटीने पढी  
 तमारें ज्यां जवुं होय, ते स्थबनुं नाम लङ्गने कहे-  
 शो जे अमने तुं आ स्थानके पोहोचाड ! तो ए  
 लाकडुं ज्यां जवा इष्टशो, त्यां पहोचाडशो. एम सर्व  
 मंत्रनो प्रज्ञाव कहिने ते योगी गयो. पढी चारे  
 स्त्रीयोयें मढी एक मोहोडुं लाकडुं घरने विषे रा-  
 ख्युं. पण ते वातनी सागरश्रेष्ठीने कांश पणी खबर  
 नथी. हवे सागरश्रेष्ठीनी पग चंपी वगेरे चाकरी  
 करवा माटें एक हजाम निरंतर आवे. एक दिव-  
 स ते हजामें घरमां पडेलुं ते मोहोडुं लाकडुं  
 नजरें जोयुं. तेवारें विचारवा लाग्यो के आ लाकडुं  
 आर्हींथी बीजे स्थळें लङ्ग जवाने कोश समर्थ न था

य एवुं महोदुं डे. ते आहीं घर आगल पड्युं डे, मादे आमां कांश चमत्कार तो नहिं होय ? एम विमासणमां ते हजामने शेठनी चाकरी करतां ते दिवसें घणो वखत थळ गयो. घणी रात्रि गया प-डी शेठने निझा आववा लागी त्यारें नापितने र-जा आपी के तुं जा. तो पण ते नापित त्यां डानो मानो शेठना ढोबीयानी नीचें सुइ गयो. शेरें नापित गयो जाणीने घरनां कमाडो बंध कस्यां अने पोतें सुतो. ते ज्यारें घोर निझामां आव्यो, ते व-खत चारे स्त्रियो ते लाकडा उपर बेसीने मंत्रना जोरथी रक्खीपमां जइ पोताना मनोरथ पूर्ण करी पाठबी रातें पाडी घेर आवीयो. तेने जोइने हजाम विचारवा लाग्यो के, अरे ! आ स्त्रीयो किहां गळ्यो हळे ! आ स्त्रीयोनुं केबुं साहस डे ! ! एम चिंतव-तो पोताने घेर गयो. बीजे दिवसें पण पूर्वोक्तरीतें ते नापितें कस्युं. अने शेठने सुवा वखत थळ, त्यारें ते लाकडाना पोलाणमां पेठो ॥ कह्युं डे के ॥ नराणां नापितो धूर्त्तः, पक्षिणां धूर्त्तवायसः ॥ वर्णनां वणिकोधूर्त्तो, नारीणां गणिका मता ॥ ३ ॥ सा गरश्रेष्ठीयें हजाम गयो जाणी बारणा बंध कस्यां.

पूर्वोक्तरीतें स्त्रीयो पण लाकडा पर बेसीने रत्नद्वीपें  
गइ. त्यां लाकडाथी उतरीने पोताना मनोरथ पूर्ण  
कर्या. ते सर्व नापितें जोयुं. अने पोतें लाकडानी  
पोखमांथी नीकदीने रत्नद्वीपमांथी घणांक अमूल्य  
रत्नो लइ पाठो लाकडामां पेठो. अने स्त्रीयोनी सा-  
थें पाठो घेर आव्यो. स्त्रीयो लाकडा उपरथी उतरी  
घरमां गइयो. पाठदशी नापित पण लाकडामांथी  
बाहेर निकदी पोताने घेर गयो. पण बीजे दिवसें  
धनवान् थवाथी सागरश्रेष्ठीनुं आनुचर्य करवा आ-  
व्यो नहिं. एक दिवस ते शेर पासें नापितें आवी-  
ने नमस्कार करी पोतानुं दर्पण शेरने बताव्युं. ते  
वखतें शेरें घणे दिवसें आवेला नापितने जोइने  
ठबको आप्यो. त्यारें खोटा साचा जबाप आपीने  
पोतानी पासें रत्नद्वीपमांथी आणेलुं जे रत्न हतुं, ते  
बताव्युं. ते जोइने शेरें कहुं के अरे छुष्ट ! आ  
रत्न देवतानुं, घणाज मौद्यवालुं, सकल चूमंकला  
धिपतिने पण न मले तेलुं, तुने क्यांथी मळुं ! ते  
मने कहे ! ! ! तेवारें तेणे कहुं के तमाराज घर-  
मांथी मने ए रत्न मलेलुं रे. शेरें कहुं के हे मूर्ख !  
तुं खोडुं बोल नहिं. मारा घरमां आवुं रत्न होय

क्यांशी ? ते सांजदीने हजामें यथास्थित जेवी  
 वात बनी हती तेवी सविस्तर कही संजदावी. त्या-  
 रें शेरें कहुँ के मने पण तेम करबुँ डे. तो ते ना-  
 पितनी प्रमाणें शेरें पण रत्न द्वीपमां गमन कस्तुं  
 अने लाकडामांशी नीसरीने पोतें लोन्ही तो डेज  
 माटें घणांज रत्नो लश्च गांसडी बांधीने पाठो लाक-  
 डामां पेठो. पाठदाशी स्त्रियो पण आवी बेरी. लाक-  
 डुं उड्युं, परंतु घणां रत्नोनो तथा शेरनो ज्ञार हो-  
 वाशी लाकडुं हलवे हलवे चालवा माड्युं. तेने जो-  
 इने स्त्रियो विचारवा लागी के अरे ! आज काष्ठ  
 बराबर चालतुं नशी ने नमतुं जाय डे माटें जो धेर  
 जवा वखत लागशे तो आपणने सासरो खीजशे ?  
 माटें हवे शो उपाय करवो ? एम परस्पर कहेवा  
 लागियो. त्यारें लाकडाना कोतरमां रहेलो श्रेष्ठी क-  
 हेवा लाग्यो के तमें लगार पण जय राखशो नहिं.  
 जेनो तमने जय डे. ते तो हुं सागरश्रेष्ठी तमारी  
 साथेंज डउं ! आ वात सांजदी सर्वे स्त्रियो आश्र्य  
 पासी विचारवा लागी जे अरे ! आव्यांशी आपणी  
 साथें आव्यो ! माटें हवे जो ते पाठो धेर आ-  
 वशे तो आपणने फजेत करशे. तेशी तेने आ स-

( २५७ )

मुद्रमांज नाखी यो. एम विचारी काष्ठने हखवीने  
ते शेरने रक्ष सुधां समुद्रमां नाखी दीधो. त्यां शेर  
दूबी मरण पाम्यो, माटें अति लोच्च करवाथी सा-  
गरश्रेष्ठी जेवा हवाल आय रे, तेथी लोच्च करवो  
नहिं ॥ ए लोच्चने विषे सागरश्रेष्ठीनी कथा कही ॥ ६०॥

हवे सौजन्यता राखवाविषे उपदेश करे रे.

॥ शिखरिणीवृत्तम् ॥ वरं क्षिप्तः पाणिः कु-  
पितफणिनोवक्रकुहरे, वरं ऊंपापातोञ्च-  
खदनखकुंमे विरचितः ॥ वरं प्रासप्रांतः स-  
पदि जठरांतर्विनिहितो, नजन्यं दौर्जन्यं  
तदपि विपदां सद्ध विझषा ॥६१ ॥

अर्थः— ( कुपित के० ) कोपायमान थयेला एवा  
( फणिनः के० ) सर्पना ( वक्रकुहरे के० ) मुखवि-  
वरने विषे ( पाणिः के० ) हाथ ( क्षिप्तः के० )  
नाख्यो होय ते ( वरं के० ) श्रेष्ठ, वली ( ऊंचखदन-  
खकुंमे के० ) प्रञ्चवित एवा अग्नि कुंमने विषे ( ऊं-  
पापातः के० ) ऊंपापात ( विरचितः के० ) कस्यो  
होय ते ( वरं के० ) श्रेष्ठ, वली ( प्रासप्रांतः के० )  
कृतणानो अग्रजागते ( सपदि के० ) तत्काल, ( ज-

ररांतः केऽ ) उदरना मध्यज्ञागने विषे ( विनिहि-  
तः केऽ ) नाख्यो होय ते ( वरं केऽ ) श्रेष्ठ. ( तद-  
पि केऽ ) तो पण ( विडुषा केऽ ) पंमितजने ( दौ-  
र्जन्यं केऽ ) पैशुन्य, ( नजन्यं केऽ ) न करवुं ते  
केहवुं दौर्जन्य रे ? तो के ( विपदां केऽ ) आपत्तिनुं  
सद्ग केऽ ) गृह रे अर्थात् विपत्तिनुं स्थानक रे ॥६१॥

टीकाः—अथ सौजन्यविधानोपदेशमाह ॥ वर-  
मिति ॥ कुपितस्य फणिनः कुञ्जस्य सर्पस्य वक्रकुहरे  
मुखविवरे पाणिर्हस्तः क्षिप्तोनिक्षिप्तः सन् वरं श्रे-  
यान् । पुनर्ज्वलदनलकुंडे प्रज्वलत् अग्निकुंडे ऊपा-  
पातोविरचितः कृतो वरं श्रेष्ठः । पुनः प्रासस्य कुंत-  
स्य प्रांतो अग्रं जररांतः उदरमध्ये सपदि क्षिप्तोवरं  
श्रेष्ठः । तदपि विडुषा पंमितेन दौर्जन्यं पैशुन्यं न-  
जन्यं न कर्त्तव्यमेव । किंचूतं दौर्जन्यं ? विपदां आ-  
पदां कष्टानां सद्ग गृहं स्त्रानमित्यर्थः । अतःकारणात्  
सौजन्यमेव विधेयं ॥ ६१ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—चौपाश्चंद ॥ वरु अहिवदन हठ  
निज झारहिँ, अगनि कुंकमहिं तन परजारहीं ॥  
दारहिँ उदर करहिं विष ज्ञष्टन, पैछुष्टता नगहैं  
विच्छन ॥ ६१ ॥

( २६४ )

वद्वी पण सौजन्यने माटें उपदेश करे डे.

वसंततिखकावृत्तम् ॥ सौजन्यमेव विदधा-  
ति यशश्चयं च, स्वश्रेयसं च विज्ञवं च  
न्नवक्षयं च ॥ दौर्जन्यमावहसि यत् कुमते  
तदर्थम्, धान्येऽनखं दिशसि तजालसे-  
कसाध्ये ॥ ६७ ॥

अर्थः—( यत् के० ) जे ( सौजन्यमेव के० ) सु-  
जनपणुं तेज ( पुंसां के० ) पुरुषोना ( यशश्चयं के० )  
कीर्त्तिसमूहने ( विदधाति के० ) धारण करे डे. ( च  
के० ) वद्वी ( स्वश्रेयसं के० ) स्वकल्याणने करे डे.  
( च के० ) वद्वी ( विज्ञवं के० ) ऊव्यवैनवने करे  
डे. ( च के० ) वद्वी ( न्नवक्षयं के० ) संसारनो क्ष-  
य जे मोक्ष तेने करे डे, तेमाटें ( कुमते के० ) हे  
कुमतिजन ! ( तदर्थं के० ) यशश्चयाद कने माटें  
( दौर्जन्यं के० ) पिशुनताने ( आवहसि के० ) तुं  
वहन करे डे, तो ( धान्ये के० ) धान्यना केत्रने  
विषे ( अनखं के० ) अग्निने ( दिशति के० ) आपे  
डे. ( तत् के० ) ते धान्य केतुं डे ? तो के ( जलसे-  
कसाध्ये के० ) जलसिंचने करी साध्य डे, तेवा धान्ययु-

क्त क्षेत्रने विषे दवामि देवानी तुं इष्टा करे डे ॥ ६२ ॥

टीका:-पुनराह । सौजन्यमेव सुजनतैव पुंसां  
यशश्चयं कीर्ति समूहं विदधाति करोति । पुनः स्व-  
श्रेयसं स्वकल्पाणं विदधाति । पुनर्विज्ञवं इव्यं विदधा-  
ति । पुनर्ज्ञवक्षयं संसारक्षयं मोक्षं विदधाति । ततो  
हे कुमते ! हे कुबुद्धे ! यत् तदर्थं यशश्चयाद्यर्थं  
दौर्जन्यं पिशुनतां आवहसि धरसि । तत् धान्ये  
धान्य क्षेत्रेऽनदं अग्निं दिशसि ददासि । कथं ज्ञूते  
धान्ये ? जबसेकसाध्ये जबस्य सेकेन सिंचनेन सा-  
ध्ये निःपादनीये । तत्र दवं ददासि ॥ ६२ ॥

ज्ञाषाकाव्यः— सवैया तेऽसा ज्यौं कृषिकार ज्यो  
चित चातुल, सो कृषिकी करनी इम रानै ॥ बीज  
बवै न करै जब सिंचन, पावकसों फबकों अब ज्ञा-  
नै ॥ त्यौं कुमती निज स्वारथके हित, दुर्जन ज्ञाव  
हियेमह आनै ॥ संपति कारन बंध विदारन, सज्जा-  
नता सुख मूल न जानै ॥ ६२ ॥

दारिद्र्यमां पण सुजनताज श्रेष्ठ डे, ते कहे डे.

पृथ्वीवृत्तम् ॥ वरं विज्ञववंध्यता सुजन ( स्व-  
जन ) ज्ञावज्ञाजां नृणा, मसाधु चरितार्जिता

न पुनर्जीविताः संपदः ॥ कृशत्वमपि शोन्न-  
ते सहजमायतौ सुंदरम्, विपाकविरसा न  
तु श्वयथुसंन्नवा स्थूलता ॥ ६३ ॥

अर्थः—( सुजनन्नावन्नाजां केऽ ) सौजन्यसहित  
एवा ( नृणां केऽ ) मनुष्योने ( विन्नव केऽ ) वैन्न-  
वनी ( वंध्यता केऽ ) निर्झव्यता तेज ( वरं केऽ )  
श्रेष्ठ रे ( पुनः केऽ ) परंतु ( असाधुचरितार्जिताः केऽ )  
दुर्जनपणायें करी संपादन करेद्वी एवी  
( संपदः केऽ ) संपत्तियो ते ( वरं केऽ ) श्रेष्ठ, ( न  
केऽ ) नशी. ते केवी संपत्तियो रे ? तो के ( ऊर्जि-  
ताः केऽ ) अति बलिष्ठ रे. त्यां दृष्टांत कहे रे. के  
( सहजं केऽ ) स्वान्नाविक, ( कृशत्वमपि केऽ ) दौर्ब-  
ल्यत्व पण ( शोन्नते केऽ ) शोन्ने रे, ( तुकेऽ ) परं-  
तु ( श्वयथुसंन्नवा केऽ ) शरिरमां सोजो उत्पन्न  
यवाशी थयेद्वी जे ( स्थूलता केऽ ) पुष्टता ते ( न  
केऽ ) नशी शोन्नती. ए केवुं कृशत्व रे ? तो के  
( आयतौ केऽ ) उत्तरकालने विषे ( सुंदरं केऽ ) शो-  
न्नायमान रे. अने ते स्थूलता केहवी रे ? तो के  
( विपाकविरसा केऽ ) परिणाममां दारुण रे. माटें

सौजन्यरहित एवा धनवानने पण धिक्कार ठे ॥६३॥

टिकाः—दारिद्र्येपि सुजनतैव श्रेष्ठेत्याह ॥ वरभिति ॥ सुजनन्नावन्नाजां सौजन्यसहितानां अत्र खजनन्नावन्नाजामपि पाठोऽस्ति नृणां पुंसां विज्ञवस्य वंध्यता निःफलता निर्झव्यता दारिद्र्यमेव वरं श्रेष्ठं । परंतु असाधुचरिते नार्जिङ्गिताः दौर्जन्येन उपार्जिताः संपदः श्रियोऽपि वरं न श्रेष्ठाः । न श्लाघ्याः । कथन्नूताः संपदः ? जर्जिताः बलिष्ठाः प्रचुराः । तत्र हृष्टांतमाह । सहजं खान्नाविकं कृशत्वं दौर्बल्यमपि शोन्नते । तु पुनः श्वयश्चुसंन्नवा शोफा छाता स्थूलता पीनताऽपि न वरं न श्रेष्ठा । कथन्नूतं कृशत्वं ? आयतौ उत्तरकाले आगामिकाले सुंदरं शोन्ननं । कथन्नूता स्थूलता ? विपाके परिणामे अंत्ये विरसा दारुणा ॥ ६३ ॥

नाषाकाव्यः—आज्ञानकड्ढंद ॥ वर दारिद्रता होउ करत सज्जनकबा, डुराचारसों मिलै राज सो नहिं जखा ॥ ज्यौं शरीर कृश सहज सुशोन्ना देतु है, सूजै शूलता बढै मरनको हेतु है ॥ ६३ ॥

हूवे सुजनता युक्तजनोना गुणो कहे ठे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तद्वयम् ॥ न ब्रुते परदू-

षणं परगुणं वक्त्यद्वप्मप्यन्वहम्, संतोषं  
वहते परर्द्धिषु पराबाधासु धत्ते शुचम् ॥ स्व-  
श्लाघां न करोति नोज्जति नयं नौचित्यमु-  
द्धंघय, त्युक्तोप्यप्रियमदमां न रचयत्येत-  
चरित्रं सताम् ॥ ६४ ॥ इति सुजनप्रक्रमः ॥ १४ ॥

अर्थः—( सतां केऽ ) सज्जानपुरुषोनुं ( एतच्चरि-  
त्रं केऽ ) आ चरित्र एटद्वे चेष्टित डे. आ चरित्र ते  
कयुं चरित्र ? तो के सज्जानजन जे डे, ते ( परदूषणं  
केऽ ) पारका दोषने ( न ब्रुते केऽ ) बोलता नथी.  
अने ( अद्वप्मपि केऽ ) थोडा एवा पण ( परगुणं  
केऽ ) पारकागुणने ( अन्वहं केऽ ) निरंतर ( वक्ति  
केऽ ) कहे डे. वक्ती ( परर्द्धिषु केऽ ) परसंपत्तिने  
विषे ( संतोषं केऽ ) अनन्जिकाष एटद्वे अमत्सरने  
( वहते केऽ ) धारण करे डे. वक्ती ( पराबाधासु  
केऽ ) परपीडाने विषे ( शुचं केऽ ) शोकने ( धत्ते  
केऽ ) धारण करे डे. तथा ( स्वश्लाघां केऽ ) आ-  
त्मप्रशंसाने ( न करोति केऽ ) न करे डे. वक्ती ( न-  
यं केऽ ) विनयने ( नोज्जति केऽ ) त्याग करता  
नथी. वक्ती ( औचित्यं केऽ ) योग्यताने ( नोद्वंघ-

यति केऽ ) उद्विघन करता नशी. तथा ( अप्रियं  
केऽ ) अहितप्रत्यें ( उक्तोषि केऽ ) कह्या होय तो  
पण ( अक्षमां केऽ ) क्रोधने ( न रचयति केऽ ) रचना  
करता नशी. माटें सौजन्ययुक्तजनना एवा गुणो डे  
॥ ६४ ॥ ए चौदमो सुजनप्रक्रम संपूर्ण थयो ॥ १४ ॥

टीकाः—सौजन्यज्ञाजां गुणानाह ॥ न ब्रूतश्चिति ॥  
सतां साधूनां सज्जनानां एतच्चरित्रं चेष्टितं अ-  
स्ति ॥ एतदिति किं ? सज्जनः परदूषणं परदोषं न  
ब्रूते । पुनरद्वप्मपि तुष्मपि परगुणं अन्यगुणं अ-  
न्वहं निरंतरं वक्ति कथ यति । पुनः परेषां रुद्धिषु  
संपत्सु संतोषं अनज्ञिलाषं अमत्सरं वहते धत्ते ।  
पुनः परबाधासु परपीडासु शुचं शोकं धत्ते । पुनः  
खलादां आत्मप्रशंसां न करोति । पुनर्नेयं न्यायं-  
नोज्जति न त्यजति । पुनरौचित्यं योग्यतां नोद्विघ-  
यति । नातिक्रामति । पुनरप्रियं विरूपं अहितं उ-  
क्तोऽपि ज्ञाषितोपि अक्षमां क्रोधं न रचयति । सतां  
एतच्चरित्रं वर्तते ॥ ६४ ॥ सिंदूरप्रकरणं थ, व्याख्या-  
यां हर्षकीर्तिज्ञिः ॥ सूरिज्ञिर्विहितायां तु, सौजन्य-  
प्रक्रमोऽजनि ॥ १४ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—ठप्पयष्ठंद ॥ नहिं जंपै पर दोष, अ-

द्वप पर गुन बहु मानहिं ॥ हृदय धरहिं संतोष, दी-  
न लखि करुना छानहिं ॥ उचित रीति आदरहिं,  
विमल नय नीति न रँझहिं ॥ निज जसलहन पर-  
हरहिं, राम रचि विषय विहंमहिं ॥ मंझहिं न कोप  
ठुर्वेचन सुनि, सहज मधुर धुनि उच्चरहिं ॥ कहि कव-  
र पाल जग जाल वस, ए चरित्र सज्जन करहिं ॥६४॥

कथा;—सुजनता उपर कथा कहे डे. उज्जायणी  
नगरीये विक्रमादित्य राजाने घरे शीलालंकाररूप  
कमलावती नामे जार्या डे. एकदा राजा सज्जामांहे  
हर्षोत्कर्षे विराजमान थइ सज्जाना लोकोनें कहेवा  
लाख्यो के संसारमांहे एबुं कोइ ज्ञान प्रवर्त्तमान डे,  
के जे महारा राज्यने विषे नज होय ? ते सांचद्वी  
एक कलावंत देशांतरी पुरुष बोद्ध्यो के हे राजा !  
तमारा राज्यमां जद्धीवान् विद्यावान्, गुणवान्, एवा  
अनेक पुरुषो डे, अने तमे पोतें पण लद्धी अने  
विद्याये करी सहित डो. तमारी ल्ली सरस्वती स-  
दृश डे, दातार शिरोमणि डे, परंतु एक परकाया  
प्रवेशकारिणी विद्या तमारी पासें नथी. ते सांचद्वी  
राजा ससंभ्रम थइ बोद्ध्यो के ते विद्या क्यां डे ?  
ते बोद्ध्यो के हे खामी ! गिरनार पर्वतनी उपर एक

सिद्धेश्वर डे तेनी पासें ए विद्या डे. ते सांचखी वि-  
 क्रमादित्य पोताना प्रधानने राज्य जलावी एकाकी  
 ते पर्वत जणी चाह्यो. अनुक्रमें घणां कष्ट सहन  
 करी ते पर्वत उपर गयो. तिहां सिद्धेश्वर योगीने  
 देखी मनमां हर्ष पामी योगीने नमस्कार करी सेवा  
 जक्कि करवा लाग्यो. योगी पण राजानी शुद्ध म-  
 नथी सेवा जक्कि देखी तुष्टमान थयो ॥ यतः ॥  
 विणउ सासणे मूलं, विणउ संजमो तवो ॥ विण-  
 याइं विष्पुक्कस्स, कउ धम्मो कउ तवो ॥ ३ ॥ हवे  
 ते अवसरें तिहां सिद्धेश्वरनी पासें बीजो पण पर-  
 काया प्रवेशकारिणी विद्यानो अर्थी एक ब्राह्मण  
 प्रवर्त्तमान डे, तेने पण घणा दिवस सेवा जक्कि  
 करतां थया डे. ते पण घणो विनय करे डे, पण  
 तेने कुपात्र जाणी योगी विद्या आपतो नथी ॥ यतः ॥  
 विद्यया सह मर्त्तव्यं, न तु देया कुशिष्यके ॥  
 विद्यया लालितोमूर्खः, पश्चात्संपद्यते रिपुः ॥ ३ ॥  
 माटें ते सिद्धेश्वर विक्रमादित्यने तत्काल तुष्टमान  
 थयो, पण घणी सेवा करनार एवा विप्रने तुष्टमान  
 न थयो. विक्रमादित्यने कहेवा लाग्यो के हे वत्स !  
 तुं गुणझ डे, राजा जेवो देखाय डे, दूरदेशांतरथी

आव्यो देखाय डे, हुं तहारी करेकी जक्किथी सं-  
 तोष पास्यो बुं ! माटें परकाया प्रवेशकारिणी विद्या  
 द्वे. ते वचनो सांचद्वी राजा वे हाथ जोडी बोल्यो  
 के हे स्वामी ! ए विप्रने पण आपनी सेवा करतां घ-  
 णा दिवस थया, माटें जेम महारी उपर तुष्टमान  
 थया, तेम एनी उपर पण तुष्टमान अश विद्या आ-  
 पो. तेवारें सिद्धेश्वर बोल्यो के हे परदुःखजंजक  
 सत्पुरुष ! सर्पने दूध पीवराववार्षी शो फायदो  
 थाय ? तो पण राजायें घणी प्रार्थना करी प्रणिप-  
 त्य करीने ब्राह्मणने पण विद्या अपावी. पठी राजा  
 तथा ब्राह्मण बेहुने विद्या साधवानो विधि कहो, ते  
 प्रमाणें विद्या साधी; विद्या सिद्ध करी गुरुनी आङ्गा  
 मागी राजा अने ब्राह्मण बेहु उङ्गायणीनी बाहेर  
 आव्यो, ते वखत राजायें ब्राह्मणने त्यांज बेसाढ्यो  
 अने पोतें राज्यस्थिति जोवा जणी नगरीमांहे आ-  
 व्यो, तिहां प्रथम प्रजाना समाचार जोइ पठी रा-  
 ज्यमंदिरमां आव्यो. तिहां पट्टहाथीना मरणथी रा-  
 जखोक आकुल अयेका दीगा. राजा फरी ब्राह्मण  
 पासें आव्यो (विद्यानी परीक्षा करवा सारु पोताना  
 शरीरमांहेथी जीव काहाडी निर्जीव काया करी ते

कलेवर विप्रने जलावी अने पोतानो जीव हाशीना  
खोलिया मांहे जईघाव्यो, तेथी हाशी तत्काल उज्जो  
थयो. राजलोक सर्व हर्ष पाम्या. एवामां डुष्ट बुद्धिशी  
विप्र विचारवा लाग्यो के जो हुं हमणां महारो जीव  
राजाना शरीरमांहे प्रवेश करावुं, तो राजा बनी राज्य-  
पालुं ? एम विमासी तत्काल विद्यानुं स्मरण करी  
राजाना शरीरमांहे पोतानो जीव घाव्यो, पोतानी  
काया प्रज्वन करीने नगरमांहे आव्यो लोकोयें राजा  
आव्यो देखी वधामणां कस्यां, राज्यमंदिरमां जइ  
सज्जामांहे बेरो, परंतु जातें ब्राह्मण ठे माटें राज्य  
स्थितिनी रीत जात कांश पण जाणतो नथी) तेने  
जंगली हरणना जेवो देखी प्रधान प्रमुख चिंतव-  
वा लाग्या के ए शुं राजानुं चित्त चबाचल थयुं  
ठे ! अथवा कोश व्यंतरविशेष राजानुं रूप करी  
आव्यो ठे के शुं थयुं ठे ! एम विचारवा लाग्या. प-  
डी जेवारें अंतेउरमां ते ब्राह्मण आव्यो, तेवारें प-  
ट्टराणी तो तेने देखतांज मूर्ढा पामी तेने घणा उ-  
पचार करी दासीयें उठाडी बेरी कीधी, तेवारें  
कर्त्रिम राजा बोल्यो के अहो देवि ! मुजने देखी  
तमें मूर्ढा केम पाम्यां ? ते सांजली राणीने पण

तत्काल बुद्धि उपनी, तेथी एवं बोली के स्वामी !  
 तमें जेवारें देशांतरें चाह्या हता, तेवारें में गोत्रदेवीने कहुं हतुं के जो राजा कुशल केमें धरे आवशे, तो हे कुखदेवि ! हुं तमारी पूजा कस्या विना नेवें करी राजा साहामुं जोश्श नहीं. ते वरांसे में हमणां तमारी साहामुं जोयुं तेथी महारी उपर देवीनो कोप थयो माटें हवे देवीनी पूजा कस्या विना तमारुं मुख जोश्श नहीं। एम सांजदी कर्त्तिम राजा पाठो सज्जायें जइ बेठो. तेने हाथीयें दीठो, तेवारें हाथी मनमां चिंतववा लाग्यो जे आ पापी ब्राह्मणें महारी साथें विश्वासघात कीधो डे, पण एनुं जबुं न थाय, मने पण गुरु आङ्गा उद्धंघननुं पाप लाग्युं, गुरुयें मने वास्यो तो पण में एने विद्या देवरावी तेनुं फल हुं एनो विश्वास करवाथी पास्यो॥ यतः ॥  
 मित्रद्वोही कृतग्नश्च, यश्चविश्वासघातकः ॥ त्रयोपि नरकं यांति, यावच्चंद्रदिवा करौ ॥ १ ॥ हुं पंक्षित मूर्ख थयो अथवा दैववक्त थवाथी मनें कुबुद्धि उपनी, जबुं करतां मातुं थयुं ॥ यतः ॥ दैवे वक्तेजवेत्पुंसां, सुकृतं छुःकृतोपमम् ॥ न सिध्धयंति स्वकार्याणि, विधिना रचितान्यपि ॥ २ ॥ सर्वे लोकने

पुत्र मित्र कलत्रादिक परखोके गया पठी परायां थाय, पण हुं तो श्रा जन्ममांज पुत्रादिक सर्वथी विपर्यास पाम्यो, एवुं विमासी आलानस्तंजने उन्मूदीने हाथी वन जणी निकछ्यो, लोक तेनी पठवाडे चाढ्यां. घणा उपाय कीधा, पण हाथी पाठो वछ्यो नही, वनमां जतो रह्यो. लोक पाठां फरी घेर आव्यां. हाथी शाक्यो तेवारें एक वटवृक्ष नीचें जश उज्जो रह्यो. तिहां एक पुरुष गोदीथी सूडाने मारतो हितो~~ते~~ देखी पोतानो जीव सूडाना शरीरमांहे घालीने बोछ्यो. अरे ! बापडा वराक जीव मारवाथी तुजने शुं लाज थवानो ढे ? माटें तुं मुंजने उङ्गयणी लश जा. अने बजारमां जश सहस्र दिनारनुं मूद्य करजे, ते तुजने आपीने कोइ पण लश जाशे. एवुं सांजदी आहेडी हर्षवंत थश सूडाने लश उङ्गयणीये आवी राजमार्गे जश उज्जो रह्यो. जो कोइ मूल्य पूरे, तो तेने सहस्र टका सुवर्ण कहे, ते अवसरे कमलावती राणीनी दासी तिहां आवी, तेणे ते सूडो दीठो. तेणे केटलाएक लोक पूरथा, तेवारें सूडे पण तत्काल अनेक श्लोक जण्या. दासीये जश राणीनी आगल सूडाना समा-

चार कह्या. राणीयें पण दासीने कहुं के तमें तरत  
जश्ने ते सूडो लश्य आवो. दासीयें आवी मूळ्य आपी  
सूडो लीधो. वधक, पैसा लश्य पोताने घेर गयो. दासी  
सूडाने राणी पासें लश्य आवी राणी ते सूडाने देखी  
अत्यंत हर्ष पामी सुवर्णना पांजरामां तेने राख्यो.  
राणी पोताने हाथे स्नान ज्ञोजनादिक कराववा लागी.

हवे प्रस्तावें सूडो सहसात्कारें अनेक अनेक  
प्रश्नोत्तरादिक श्लोक ज्ञणे. ते जेम के ॥ श्रयुक्तः  
प्राणदोखोके, वियुक्तः साधुवद्वन्नजः ॥ प्रयुक्तः सहि  
विद्वेषी, केवलः स्त्रीषु वद्वन्नजः ॥ १ ॥ तस्योत्तरं ॥  
हार ॥ ज्ञावार्थः—आकार अहरें युक्त होय तो जे  
पदनो अर्थ लोकने विषे प्राणनो देनारो एवो थाय.  
तथा वि अहरें जो युक्त होय तो जे पदनो अर्थ  
साधुने वद्वन्न एवो थाय डे. प्र अहरें करि युक्त  
जो होय तो जे पदनो अर्थ विद्वेषी थाय डे, अने  
जो केवल एकद्विंज पद राखीयें तो तेनो अर्थ  
स्त्रीने वद्वन्न एम थाय डे ॥ तेनो उत्तर ( हार ) ह-  
वे हारनी पहेलां आ मेलवीयें तो आहार थाय डे,  
तो तेथी जगत जीवे डे अने हारथी प्रथम वि मे-  
लवीयें तो विहार थाय डे तो विहार साधुनेज घटे

ठे, ने जो हारनी प्रथम प्र मेलवीयें तो प्रहार आय  
ठे तेवि द्वेषीनेज होय ठे. अने केवल हारज राखी-  
यें तो स्त्रीने वृत्तज्ञ एवो पुष्पनो हारज कहेवाय ठे ॥  
वली सूडो कहे ठे ॥ किं जीवियस्स चिङ्गं, का ज़ज्जा  
मयण रायस्स ॥ का पुष्फाणपहाणं, परणीया किं  
कुण्ड बाला ॥ उत्तरं ॥ सास रइ जाइ ॥

**ज्ञावार्थः—**जीवतरनुं चिन्ह शुं ? तो के ( सास )  
मदनराज जे कामदेव तेनी स्त्री कोण तो के ( रइ )  
एटबे रति ॥ अने उत्तम पुष्प कयुं ? तो के ( जाइ )  
एटबे जाइनां पुष्प, अने परणीनें बाला शुं करे  
ठे ? तो के ( सासरइ जाइ ) इत्यादिक प्रश्नोत्तर  
करतां राणी तथा सूडो बेहु पोताना दिवस निर्ग-  
मन करे ठे, एकदा राणीप्रत्यें सूडे पूञ्युं के तमें  
ए राजानी साथें बोखांज नही ते शामाटें ? ते-  
वारें राणी बोखी के हे शुकराज ! एने देखवाथी  
महारुं चित्त हिसतुं नथी. न जाणुं कोइ रूप परा-  
वर्त करी आव्यो ठे, के केम ठे ? माटें ज्यांसुधी  
महारुं मन साह्नी आपतुं नथी, त्यांसुधी एनी साथें  
हुं संज्ञाषण मात्र पण नही करीश ? एम सांजद्वी  
राणीनुं मन निश्चल जाणी सूडो हर्ष पास्यो.

( ४४ )

एकदा कोइ घरोदीने मूवेदी देखी सूडायें  
तेना शरीरमां पोतानो जीव घाव्यो, तेवारें सूडो  
मरण पाम्यो. ते देखी राणी मूर्ढा पामी. तेने दा-  
सीयें वायुशी सावधान करी, तेवारें राणी कहेवा  
लागी के ए सूडानी साथें हुं पण काष्ठमां बद्धी  
मरीश ! कर्त्रिम राजायें ते वात सांजद्वीने राणीनी  
पासें आवी पूब्युं के तुं सूडानी साथें काष्ठजङ्घण  
करे रे ? राणीयें कहुं के महारा जीवनो एनी सा-  
थें मोहसंबंध रे, ते माटें एनी गति ते महारीगति !  
तेवारें कर्त्रिम राजा बोख्यो के तुं काष्ठजङ्घण न कर.  
हुं शुकने सचेतन करुं हुं. एम कही पोतें पर्यंकमां  
पौख्यो, राणीनुं मन मनाववा सारु पोतानुं चेतन  
काहाढी शुकना शरीरमां प्रक्षेप्युं. अने पोतें सूडो  
थयो. ते जोइ विक्रमराजायें तत्काल पोतानो जीव  
घरोदीना शरीरमांशी काहाढीने पोताना मूल श-  
रीरमां प्रक्षेप्यो, अने पोताना देहमां आवी पोतें  
राजा थयो. ऊर्ध्वीने राणीपासें गयो) राणी पण  
राजानुं मूल शरीर देखी हर्ष पामी. पर्डी राणीयें  
राजाप्रत्यें सर्व वृत्तांत पूब्युं. राजायें कहुं के ए  
वृत्तांत आ सूडो कहेशे. तेवारें सूडे मूखशी सर्व

वृत्तांत संज्ञबावीने कहुं के जे मित्रद्वोह करशे,  
ते महारीपेरें छुःखी याशे, अने जे परोपकार कर-  
शे, ते राजानीपेरें सुख पामशे. ते सर्व वात सांजद्वी  
राणी हर्षवंत थइ. अने मननी ब्रांति गइ. एवामां  
एक व्यवहारियो मरण पामतो दीठो. तेवारें राजा-  
यें ते सूडानो जीव व्यवहारियानी खोल मांहे  
राखी सुखीयो कस्यो. एवा सज्जन छुर्जाननां लक्षण  
जाणी सज्जनता आदरवी ॥ ६४ ॥

हवे गुणिजनना संगतुं वर्णन करे डे.  
धर्म ध्वस्तदयो यशश्चयुतनयो वित्तं प्रमत्तः  
पुमान्, काव्यं निःप्रतिज्ञस्तपः शमद्याशू-  
न्योऽटपमेधाः श्रुतम् ॥ वस्त्वालोकमलोचन-  
श्रलमना ध्यानं च वांडल्यसौ, यः संगं गुणि-  
नां विमुच्य विमतिः कट्याणमाकांक्षति ॥ ६५ ॥

अर्थः—( यः कें ) जे ( विमतिः कें ) निर्बुद्धि  
( पुमान् कें ) पुरुष ( गुणिनां कें ) गुणवान् पु-  
रुषना ( संग कें ) संगने ( विमुच्य कें ) मूकीनै  
( कट्याणं कें ) कट्याणने ( आकांक्षति कें )  
इष्ठे डे. ( असौ कें ) ए विमति पुरुष, ( ध्वस्तद-

यः केऽ ) गद्धे कृपा जेने एवो डतो ( धर्म केऽ ) पुण्यनी इष्टा करे रे ? एम जाणवुं. तथा ते ( च्यु-  
तनयः केऽ ) गतन्याय एवो डतो ( यशः केऽ ) य-  
शनी इष्टा करे रे ? अर्थात् अन्यनो अपकारक डतो  
कीर्तिनी इष्टाकरे रे ? वद्वी ( प्रमत्तः केऽ ) आलसु  
डतो ( वित्तं केऽ ) धननी इष्टा करे रे ? वद्वी ( निःप्र-  
तिज्ञः केऽ ) निर्बुद्धि डतो ( काव्यं केऽ ) काव्य  
करवानी इष्टा करे रे ? वद्वी ( शमदयाशून्यः केऽ )  
उपशम अने दयायें रहित डतो ( तपः केऽ ) तपनी  
इष्टा करे रे. वद्वी ( अद्वपमेधाः केऽ ) अद्वपबुद्धि-  
मान् डतो ( श्रुतं केऽ ) शास्त्रने जणवानी इष्टा करे  
रे. वद्वी ( अलोचनः केऽ ) नेत्ररहित डतो ( व-  
स्त्वालोकं केऽ ) घटपटादिक वस्तुने जोवाने इष्टे  
रे. ( च केऽ ) वद्वी ( चलमनाः केऽ ) चंचल चित्त  
एवो डतो ( ध्यानं केऽ ) एकाग्रध्याननी इष्टा करे  
रे. अर्थात् पूर्वोक्त वस्तुविना प्रथम कहेला पदार्थो  
ते प्राणीने प्राप्त थाय नहीं तेम गुणिना संगविना  
कद्याण प्राप्त थाय नहीं ॥ ६५ ॥

टीका:-अथ गुणिसंगं वर्णयति ॥ धर्ममिति ॥  
यो विमतिः निर्बुद्धिर्गुणिनां गुणवतां मनुष्याणां संगं

संसर्ग विमुच्य त्यक्त्वा कद्याणं श्रेय आकांक्षति । असौ विमतिः पुमान् ध्वस्तदयोगतकृपः निर्दयः सन् धर्म पुण्यं वांडति । पुनश्चयुतनयोगतन्यायः अन्यायज्ञाक् सन् यशः कीर्ति वांडति । पुनः प्रमत्तः प्रमादी सन् वित्तं धनं वांडति । पुनर्निःप्रङ्गः प्रङ्गारहितः सन् काव्यं कर्तुं वांडति । पुनः शमेन उपशमेन दयया च ही-नोरहीतः पुमान् तपो वांडति । पुनरद्वप्मेधास्तुड्बु-द्धिर्बुद्धिरहितः सन् श्रुतं शास्त्रं पठितुं वांडति । पुनर-बोचनो नेत्ररहितः सन् वस्तूनां घटपटादीनां विद्वो-कनं दर्शनं वांडति पुनश्चलमनाः चलचित्तः सन् ध्या-नं वांडति । तथा गुणवतां संगं विना कछ्याणं न ॥ ६५ ॥

जाषाकाव्यः—सवैया तेऽसा ॥ सो करुणा बिनु धर्म विचारत, नयन विना लखिवेकुं उमाहै ॥ सो छुरनीति चहै जस हेतु, सुधी बिनु आगमकों अ-वगाहै ॥ सो हिय सुन्न कवित्त करै, समता बिनु सो तपसों तन दाहै ॥ सो थिरता बिनु ध्यान धरै सष्ठ, जो सत संग तजै हित चाहै ॥ ६५ ॥

बद्धी पण गुणीना संगनुं वर्णनकरे डे.

हरिणीदृत्तम् ॥ हरति कुमतिं जिते मोहं करोति विवेकिताम्, वितरति रतिं सूते नी-

तिं तनोति गुणावलिम् ( विनीततां ) ॥ प्र-  
थयति यशोधर्ते धर्मं व्यपोहति झर्ग-  
तिम्, जनयति नृणां किं नाज्ञीष्टं गुणो-  
त्तमसंगमः ॥ ६६ ॥

अर्थः—( नृणां केऽ ) मनुष्योने ( गुणोत्तमसंगमः  
केऽ ) गुणे करी उत्तम जनोनो संग, ( किं केऽ )  
शुं ( अज्ञीष्टं केऽ ) इष्टितने ( न जनयति केऽ ) न-  
शी उत्पन्न करतो ? अर्थात् सर्व अज्ञीष्टने उत्पन्न  
करेज डे. हवे ते गुणोत्तमसंग शुं अज्ञीष्ट करे डे ?  
ते कहे डे के ( कुमतिं केऽ ) कुबुद्धिने ( हरति  
केऽ ) हरे डे. तथा ( मोहं केऽ ) अङ्गानने ( ज्ञि-  
ते केऽ ) ज्ञेदे डे. वद्धी ( विवेकितां केऽ ) तत्त्वात-  
त्वविज्ञानपणाने ( करोति केऽ ) करे डे. वद्धी ( रतिं  
केऽ ) संतोषने ( वितरति केऽ ) आपे डे. वद्धी  
( नीतिं केऽ ) न्यायने ( सूते केऽ ) प्रसवे डे. तथा  
( गुणावलिं केऽ ) गुणश्रेणिने ( तनोति केऽ ) वि-  
स्तारे डे. ( नीतिवतां ) एवो पाठ होय तो नीति-  
वताने विस्तारे डे अने ( यशः केऽ ) कीर्तिने ( प्र-  
थयति केऽ ) विस्तारे डे. वद्धी ( धर्मं केऽ ) धर्मने

( शुण )

( धत्ते केऽ ) धारण करे डे. वबी ( झुर्गतिं केऽ )  
नरकतिर्यग्गतिने ( व्यपोहति केऽ ) टाके डे. एम  
गुणोत्तम जननो संग ते अन्नीष्ट पदार्थने आपे डे  
माटें उत्तम जननोज संग करवो ॥ ६६ ॥

टीका:-पुनर्गुणिसंगं वर्णयति ॥ हरतीति ॥ नृ-  
णां पुंसां गुणैः उत्तमाः गुणोत्तमास्तेषां संगमो नृणां  
किं किं अन्नीष्टं वांछितं न जनयति न करोति ? अपि  
तु सर्वमन्नीष्टं जनयति । गुणोत्तमसंगमः कुमतिं  
कुबुद्धिं हरति दूरीकरोति । पुनर्मोहं अङ्गानं जित्ते  
विदारयति । पुनर्विवेकितां तत्त्वातत्त्वविज्ञात्वं करोति ।  
रतिं संतोषं वीतरति ददाति । पुनर्नीतिं न्यायं  
सूते जनयति । पुनर्गुणावलिं गुणश्रेणीं तनोति ।  
पाढांतरे तु 'विनीततां तनोति' पुनर्यशः कीर्ति प्र-  
थयति विस्तारयति । पुनर्धर्मम् धत्ते धरति । पुन-  
र्झुर्गतिं नरकतिर्यग्गतिरूपां व्यपोहति विस्फोटयति ।  
एवं गुणोत्तमसंगमः सर्वमन्नीष्टं जनयति ॥ ६६ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—सवैया इकतीसा ॥ कुमति निकंद  
होइ महा मोह मंद होइ, जगतमें सुजस विवेक जग  
हियसों ॥ नीतिको दिढाऊ होइ विनैको बढाऊ  
होइ, उपजै उड्हाह ज्यों प्रधान पद लियेसों ॥ ध-

( ४७ )

मर्मको प्रकाश होइ छुर्गतिको नाश होइ, वरते समाधि ज्यौं पीयूष रस पियसों॥ तोष परि पूर होइ दोषहट्टि दूर होइ, एते युन होइ, सतसंगतिके कियसों॥ ६६ ॥

वदी पण गुणीना संगनो उद्देश कहे डे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ लब्धुं बुद्धिकला-  
पमापदमपाकर्तुं विहर्तुं पथि, प्राप्तुं कीर्ति-  
मसाधुतां विधुवितुं धर्मं समासेवितु म् ॥  
रोङ्कुं पापविपाकमाकलयितुं स्वर्गापवर्गश्रि-  
यम्, चे त्वं चित्त समीहसे गुणवतां संगं  
तदंगीकुरु ॥ ६७ ॥

अर्थः—( चित्त के० ) हे चित्त ! ( चेत् के० )  
जो ( त्वं के० ) तुं ( बुद्धिकलापं के० ) बुद्धिसमू-  
हने ( लब्धुं के० ) प्राप्त अवाने ( समीहसे के० )  
इष्ठा करे डे ? वदी जो ( आपदं के० ) आपत्तिने  
( अपाकर्तुं के० ) टालवाने इष्ठा करे डे. तथा जो  
( पथि के० ) न्यायमार्गमां ( विहर्तुं के० ) विचरवानी  
इष्ठा करे डे, तथा जो ( कीर्ति के० ) कीर्तिने ( प्राप्तुं  
के० ) प्राप्त अवानी इष्ठा करे डे, वदी जो ( असाधुतां  
के० ) असौजन्यने ( विधुवितुं के० ) टालवानी इष्ठा करे

ठे, तथा जो ( धर्म के० ) पुण्यने ( समासेवितुं के० )  
 सेववानी इष्टा करे ठे. वक्षी जो ( पापविपाकं के० )  
 अशुद्धकर्म फलने ( रोद्धुं के० ) रोकवानी इष्टा करे  
 ठे तथा जो ( स्वर्गपर्वग्नियं के० ) देवलोकनी  
 श्रेने मोक्षनी लक्ष्मीने ( आकलयितुं के० ) अनुज्ञ-  
 व करवानी इष्टा करे ठे ( तत् के० ) तो ( गुणवतां  
 के० ) गुणवान् पुरुषोना ( संगं के० ) संगने ( अं-  
 गीकुरु के० ) अंगीकार कर. अर्थात् गुणिजनना  
 संगथी सर्वं प्राप्त आय ठे ॥ ६७ ॥

टीका:-पुनराह ॥ लब्धुं बुद्धिरिति ॥ रे चित्त !  
 चेद्यदि त्वं बुद्धिकलापं बुद्धिसमूहं लब्धुं प्राप्तुं स-  
 मीहसे वांडति । तत्तदा गुणवतां गुणिनां संगं संस-  
 गं अंगीकुरु विधेहि । पुनर्यदि विपदं आपदं अपा-  
 कर्तुं दूरीकर्तुं समीहसे । पुनर्यदि पश्चिन्यायमार्गे  
 विहर्तुं विचरितुं वांडसि । पुनः कीर्ति प्राप्तुं वांडसि ।  
 पुनरसाधुतां असौजन्यं विधुवितुं स्फेटयितुं समी-  
 हसे । पुनर्यदि धर्मं पुण्यं समासेवितुं कर्तुं समीहसे ।  
 पुनर्यदि पापविपाकं अशुद्धकर्मफलं रोद्धुं समीहसे ।  
 पुनः स्वर्गपर्वग्नियं देवलोकमोक्षलक्ष्मीं आकलयितुं  
 अनुज्ञवितुं समीहसे । तदा गुणवतां संगं कुरु ॥ ६७ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—कुंमलियाढ्ठंद ॥ कौरा ते मारग ग-  
है, जे गुनिजन सेवंत ॥ ज्ञानकला तिनके जगै, ते  
पावहिं ज्ञव श्रंत ॥ ते पावहिं ज्ञव श्रंत, समरस ते  
चित धारहिं ॥ ते अघ आपद हरहिं, धर्मकी रति  
विस्तारहिं ॥ होहि सहज जेपुरुष, गुनी वारिजके ज्ञौ-  
रा ॥ ते सुरसंपति लहै, गहै ते मारग कौरा ॥ ६७ ॥

हवे निर्गुणना संगना दोषो कहे डे.

हरिणीवृत्तम् ॥ हिमति महिमांजोजे चंमा-  
लनिखत्युदयांबुदे, द्विरदति दयारामे ( द-  
मारामे ) क्लेमद्वमाजृति वज्रति ॥ समिध-  
ति कुमत्यग्नौ कंदत्यनीतिखतासु यः, किम-  
ज्ञिलषता श्रेयः श्रेयः स निर्गुणसंगमः  
॥ ६८ ॥ इति गुणिसंगप्रक्रमः ॥ १५ ॥

अर्थः—( सः केण ) ते ( निर्गुणसंगमः केण )  
निर्गुणिजननो संगम, ( श्रेयः केण ) कछाणने ( अ-  
ज्ञिलषता केण ) इडा करनार एवा पुरुषें ( किं केण )  
शुं ( श्रेयः केण ) आश्रय करवा योग्य डे ? ना आ-  
श्रय करवा योग्य नशीज. ते केहेवो निर्गुणनो सं-  
गम डे ? तो के ( यः केण ) जे ( महिमांजोजे केण )

( शृङ्खला )

महत्त्वरूप कमखने विषे ( हिमति केण ) हिमनी  
पेरें आचरण करे डे. वल्ली ( उदयांबुदे केण ) धन,  
धान्य, प्रताप वृक्षरूप जे मेघ तेने विषे ( चंका-  
निक्षिप्ति केण ) प्रचंक वायुनी पेरें आचरण करे डे.  
वल्ली ( दयारामे केण ) दयारूप आराम जे वन ते-  
ने विषे ( द्विरदति केण ) हस्तीनी पेरें आचरण  
करे डे. अथवा दमारामे एवो पाठ होय तो इंड्रि-  
यदमनरूप वन तेने विषे हस्ती समान आचरण  
करे डे. वल्ली ( क्षेमद्वान्नाति केण ) कद्याणरूप  
पर्वतने विषे ( वज्रति केण ) वज्रनी पेरें आचरण  
करे डे. वल्ली ( कुमत्यग्नौ केण ) कुमतिरूप जे अग्नि  
तेने विषे ( समिधति केण ) काष्ठनी पेरें आचरण  
करे डे. तथा ( अनीतिक्षतासु केण ) अन्यायवद्विने  
विषे ( कंदति केण ) कंदनी पेरें आचरण करे डे.  
माटें ए अनीतिनो मूलरूप एवो जे निर्गुणसंगम  
तेने श्रेयने इच्छा करनार पुरुषें न आश्रय करवो.  
आंहिं गिरिशुक अने पुष्पशुकनी कथानो दृष्टांत  
जाणवो ॥ ६७ ॥ ए गुणीसंगप्रक्रम थयो. ॥ १४ ॥

टीका:- निर्गुणसंगमदोषमाह ॥ हिमतीति ॥  
स निर्गुणसंगमः किमपि श्रेयः कद्याणं अज्ञिकष-

ता वांडता पुरुषेण । किं श्रेयः किं आश्रयणीयः ?  
 नाश्रयणीयः । सः कः ? यो महिमाएव महत्वमेवां-  
 जोजं कमलं तस्मिन् हिमति । हिमश्वाचरति त-  
 द्विनाशकत्वात् । पुनर्योनिर्गुणसंगमः उदयएव धन  
 धान्य प्रतापवृद्धिरेवांजोदो मेघस्तत्र चंमानिलिति प्र  
 चंमवायुरिवाचरति । पुनर्दया एव आरामो वनं अ-  
 श्वा दमाराम इतिपारे दमएव आरामो वनं तत्र  
 द्विरदति द्विरदवद् गजवदाचरति तद्गुन्मूलकत्वात् ।  
 पुनर्यः केममेव कुशलमेव द्व्याञ्चृत् गिरिस्तत्र वज्र-  
 ति वज्रवदाचरति । तब्बेदकत्वात् । पुनर्यः कुमतिरे-  
 वाग्निस्तत्र समिंधति । समित् इधनश्वाचरति ।  
 तद्वृद्धिहेतुत्वात् । पुनर्यः अनीतिलितासु अन्यायव-  
 द्विषु कंदति कंदश्वाचरति । तन्मूलभूतत्वात् । ईद्व  
 शोनिर्गुणसंगमः । श्रेयोवांडता पुरुषेण न श्रेयः ना-  
 श्रयणीयः ॥ अत्र गिरिशुकपुष्पशुकयोः कथा ॥  
 यतः ॥ माताप्येका पिताप्येको, मम तस्य च पक्षि-  
 णः ॥ अहं मुनिज्ञिरानीतः, सच नीतो गवाशिज्ञिः  
 ॥ ३ ॥ गवाशिनां तु स वचः शृणोति, अहं तु रा-  
 जन् मुनिपुंगवानाम् । प्रत्यक्षमेतद्भवताऽपि दृष्टं, सं-  
 सर्गजादोषगुणा नवंति ॥ इति वचनात् ॥ २ ॥

६७ ॥ सिंदूरप्रकर ग्रंथ, व्याख्यायां हर्षकीर्तिज्ञिः ॥  
सूरिज्ञिर्विहितायां तु, गुणिसंगमप्रक्रमः ॥ इति पं-  
चदशो गुणिसंगमप्रक्रमः ॥ १५ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—ठप्पयब्बंद ॥ जो महिमा गुन हनै  
लुहिन जिम वारिज वारे ॥ जो प्रताप संहरै, पवन  
जिम मेघ विकारै ॥ जो सम दम दल सखै, छिरद  
जिम उपवन खंकै ॥ जो सुठेम ठय करै, वज्र जिम  
शिखर विहंडै ॥ जो कुमति अग्नि इंधन सरिस, कु-  
नयलता दिढ मूल जग ॥ सो छुष्ट संग छुःख पु-  
ष्टकर, तजहिं विचष्टन तासु मग ॥ ६७ ॥

कथा:- सारा नरसानी संगत उपर सूडानी क-  
था कहे ठेः—कोइ एक पोपटनी जार्यायें बे बच्चां ज-  
एयां. तेमां एकनुं नाम गिरिशुक अने बीजानुं नाम  
पुष्पशुक. ते बेहु महोटा थया. एकदा तेने मुकी-  
ने सूडी चणवा गइ. पाठलशी बच्चांने पाराधीयें प-  
कड्यां. गिरिशुकने जिह्वपासें वेच्यो, अने पुष्प-  
शुकने क्रषिपासें वेच्यो ॥ यतः ॥ जो जादिस्सं  
संग, करेइ सो तादिसो होइ ॥ कुसुमेहिं सुव-  
संता, तिलावि तगंधिया हुंति ॥ ३ ॥ पुनर्यथा ॥  
निर्गुणेनापि सत्त्वेन, कर्त्तव्योगुणसंगमः ॥ शशां-

( ४७६ )

कसंगतो मूर्द्धि, धृतोरुद्गेण वातमी ॥ २ ॥ ए-  
कदा एक राजा घोडा उपर चडी असवार थ-  
यो ते घोडायें अपहस्यो थको श्रटवीमां जिह्वा-  
ना घर आगलथी निकल्यो तेवारें गिरिशुक  
बोख्यो के हे जिह्वा ! ए लाखीणो माणस जाय  
ठे, तेने लूंटी छ्यो. ते सांचदी राजा जयत्रांत  
थयो थको नासतो नासतो अनुक्रमें तापसना  
आश्रमपासें आव्यो, तेने देखीने पुष्पशुक  
बोख्यो के हे क्षणि ! आ राजा आवे ठे तेनी जक्कि  
करो. ते सांचदी तापसें सर्वविधि साचवी राजानी  
जक्कि करी. पढी राजायें सूडाने हाथमां बेसारी  
पूर्व्युं के हे शुक ! में तहाराँ वचन पण सांचल्यां,  
अने जिह्वाना शुडानां वचन पण सांचल्यां, परंतु  
तुजमां अने तेनामां घणोज अंतर ठे ? ते सांचदी  
शुक बोख्यो ॥ यतः ॥ माताप्येका पिताप्येको, मम  
तस्य च पक्षिणः ॥ अहं मुनिज्ञिरानीतः, सतु नी-  
तो गवाशिज्ञिः ॥ ३ ॥ गवाशिनां वै स गिरः शृ-  
णोति, अहं च राजन् मुनिपुंगवानाम् ॥ प्रत्यक्षमेत-  
झवतापि दृष्टं, संसर्गजा दोषगुणा जवंति ॥ ४ ॥  
सप्त्याः पिबन्ति पवनं न च डुर्बलास्ते, शुष्कैस्तृणैर्व-

( ४७ )

नगजाबलिनो ज्ञवंति ॥ कंदैः फलैर्मुनिगणा गम-  
यंति कालां, संतोषएव पुरुषस्य परं निधानम् ॥३॥  
एवां वचन सांचादी हर्ष पामी सर्वे सैन्यसहित  
धेर आवीने ते राजा ते दिवसथी सत्संगति करवा  
खाग्यो. तेम सर्वे जड्यजीवोयें सत्संगतिज करवी ॥  
इति गिरिशुक पुष्यशुकनो दृष्टांत ॥ ६४ ॥ इति  
सत्संगप्रक्रमः ॥ १६ ॥

हवे इंद्रियजय करवा आश्रयी उपदेश कहे ढे.  
शार्दूलविक्रीडितं दृत्तम् ॥ आत्मानं कुपथेन  
निर्गमयितुं यः शूकदाश्वायते, कृत्याकृत्यवि-  
वेकजीवितहतौ यः कृष्णसर्पायते ॥ यः पुण्य-  
दुमखं मखं मनविधौ स्फूर्जतकुठारायते, तं द्वुष्ट  
ब्रतमुद्भमिं दियगणं जित्वा शुञ्चयुर्जव ॥६५॥

अर्थः—हे साधुपुरुष ! ( तं केण ) ते ( इंद्रिय-  
गण केण ) पंचेंद्रियसमूहने ( जित्वा केण ) जीतीने  
( शुञ्चयुः केण ) शुञ्चयुक ( ज्ञव केण ) था. ते पं-  
चेंद्रिय गण केवो ढे ? तो के ( यः केण ) जे (आ-  
त्मानं केण ) पोताना आत्माने ( कुपथेन केण ) कु-  
मार्गे करी ( निर्गमयितुं केण ) लङ्घ जवाने ( शूक-

( ४७ )

लाश्वायते केण ) अडियल अश्वनी पेरें आचरण  
करे डे. कारण के ते इंद्रियरूप अश्वनो कुमार्गने  
विषेज गमन करवानो स्वज्ञाव डे. वद्वी ( यः केण )  
जे ( कृत्याकृत्यविवेकजीवितहृतौ केण ) कृत्य अने  
अकृत्य तेनो विवेक जे विचार ते रूप जीवितव्य जे  
जीवतर तेना हरण करवाने विषे ( कृष्णसर्पायते केण )  
काला सर्पनी पेरें आचरण करे डे. वद्वी ( यः केण )  
जे ( पुण्यद्वुमखंमखंमनविधौ केण ) पुण्यरूप जे वृक्ष  
तेनुं जे वन तेना खंमनविधिने विषे ( स्फूर्जीत् कुर्गा-  
रायते केण ) प्रकाशमान कुर्गारनी पेरें आचरण करे  
डे. वद्वी ( द्वुसत्रतमुद्दं केण ) डेदी डेव्रतनी मर्यादा  
जेणे एवो डे. माटें ते इंद्रियगणनो जय करवो ॥६४॥

टीका:-अथेऽद्वियजयोपदेशमाह ॥ आत्मान-  
मिति ॥ हे साधो ! तं इंद्रियगणं पंचेऽद्वियसमूहं  
जित्वा विनिर्जित्य शुञ्जयुः शुञ्जसंयुक्तो ज्ञव । तं कं ?  
यः इंद्रियगणः स्पर्शनरसनद्राणचक्षुःश्रोत्रसमूहः आ-  
त्मानं स्वं कुपथेन कुमार्गेण निर्गमयितुं नेतुं शूक्लाश्वा-  
यते द्वुर्विनीत अश्वद्वाचरति । तस्य कुमार्गगामिस्त्र-  
ज्ञावत्वात् । पुनर्यः इंद्रियगणः कृत्यं च अकृत्यं च कृ-  
त्याकृत्ये तयोर्विवेकएव विचारएव जीवितं जीवितव्यां ।

( ४७४ )

तस्य हृतौ हरणे कृष्णसप्त्ययिते कृष्णसप्त्यश्वाच-  
रति । पुनर्यः इंद्रियगणः पुण्यमेव दुमस्तेषां खंडं  
वनं तस्य खंडनविधौ रेदने स्फूर्जीत् कुर्वारायते कु-  
र्वारश्वाचरति । कथंचूतं इंद्रियगणं ? दुसत्रतमुद्दं  
दुस्ता बिन्ना व्रतानां मुद्गा मर्यादा येन सः तं ॥६४॥

ज्ञाषाकाव्यः—गीताढ्ठंद ॥ जे जगत जिवकों कु-  
पथ कारहिं, वक्र शिष्यत तुरगसें ॥ जे हरहिं परम  
विवेक जीवन, काल दारुन उरगसें ॥ जे पुन्न वि-  
रख कुर्वार तीखन, गुपत व्रत मुद्गा करै ॥ ते करन  
सुन्नट प्रहार जबी जन, तव सुमारग पग धैरै॥६४॥

वद्वी पण इंद्रियजयनो उपदेश करे डे.

शिखरिणीवृत्तम् ॥ प्रतिष्ठां यन्निष्ठां नयति  
नयनिष्ठां विघटय, त्यकृत्येष्वाधत्ते मतिमत-  
पसि प्रेम तनु ते ॥ विवेकस्योत्सेकं विदख-  
यति दत्ते च विपदम्, पदं तद्वोषाणां कर-  
णनिकुरुंबं कुरु वशे ॥ ७० ॥

अर्थः—हे जन्म ! तुं ( तत् केण ) ते ( करणनि-  
कुरुंबं केण ) इंद्रियसमूहने ( वशे केण ) वशमां ( कुरु  
केण ) कर. ते इंद्रियनिकुरुंब कहेवो डे ? तो के

( ४४० )

( यत् केण ) जे ( प्रतिष्ठां केण ) महत्त्वने प्रतिष्ठाने  
( निष्ठां केण ) अवसान ते द्वयप्रत्येँ ( नयति केण )  
षमाडे डे. वली जे इंद्रियकुरंब, ( नयनिष्ठां केण )  
न्यायनी स्थितिने ( विघटयति केण ) स्फोटन करे  
डे. वली ( अकृत्येषु केण ) नहि करवायोग्य जे श्र-  
नाचार तेने विषे ( मतिं केण ) बुद्धिने ( आधते  
केण ) धारण करे डे. वली ( अतपसि केण ) अवि-  
रतिने विषे ( प्रेम केण ) स्नेहने ( तनुते केण ) वि-  
स्तारे डे. वली ( विवेकस्य केण ) कृत्याकृत्य एट्ले  
आ करवा योग्य डे अने आ करवा योग्य नशी एवा  
विचारना ( उत्सेकं केण ) उन्नतपणाने ( विदलयति  
केण ) नाश करे डे. ( चकेण ) वली ( विपदं केण )  
विपत्तिने ( दत्ते केण ) आपे डे. माटे ते इंद्रियसमूह  
पोताने वश करवो. ते इंद्रियसमूह कहेवो डे ?  
तो के ( दोषाणां केण ) सर्वे दोषोनुं ( पदं केण )  
स्थानक डे ॥ ७० ॥

टीका:-पुनराह ॥ प्रतिष्ठामिति ॥ ज्ञो ज्ञव्य !  
तत्करणानां इंद्रियाणां निकुरंबं समूहं वशे कुरु व-  
श्यतां नय । आत्मायत्तं विधेहि । तत्किं ? यत् कर-  
णनिकुरंबं प्रतिष्ठां महत्त्वनिष्ठां अवसानं द्वयं नयति

( ४४२ )

प्रापयति । पुनर्यत् नय निष्ठां न्यायस्थितिं विघटयति  
स्फेटयति । पुनर्यत् अकृत्येषु अनाचारेषु मतिं बुर्द्धं  
आधते स्थापयति । पुनः अतपसि अविरतौ प्रेम  
तनुते स्नेहं कुरुते । पुनर्यत् विवेकस्य कृत्याऽकृत्यवि-  
चारस्य उत्सेकं उन्नतत्वं विद्वयति विध्वंसयति ।  
पुनर्यत् विपदं आपदं कष्टं दत्ते । तत् करणनिकुरंबं  
इंड्रियसमूहं स्ववशे कुरु । कथंज्ञूतं इंड्रियनिकुरंबं?  
दोषाणां पदं स्थानं ॥ ७० ॥

ज्ञाषाकाव्यः—सवैया इकतीसा ॥ एही है कुण-  
तिके निदानी छुःख दोष दानी, इनहिकी संगतिसों  
संग जार वहियें ॥ इनकी मगनतासों विज्ञौकों वि-  
नास होइ, इनहीकी प्रीतिसों अनीति पथ गहियें ॥  
येही तप जावकों विकारै छुराचार धारै, इनहीकी  
तपत विवेक ज्ञूमि दहियें ॥ एही इंड्रि सुन्नट  
इनही जीतै सोइ साधु, इनको मिलापी सोइ  
महा पापी कहियें ॥ ७० ॥

वदी पण इंड्रियसमूहना जयनो उपदेश करे ढे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तत्रयम् ॥ धत्तां मौनमगा-  
रमुज्जतु विधि प्रागद्व्यमन्यस्यता, मस्त्व-

**तर्गण (स्त्वंतर्वण) मागमश्रममुपादत्तां तप  
स्तप्यताम् ॥ श्रेयः पुंजनिकुंजन्जनमहा-  
वातं न चे दिंडिय, व्रातं जेतुमवैति ज्ञस्मनि  
हुतं जानीत सर्वं ततः ॥ ७१ ॥**

अर्थः—हे साधु ! ( मौनं केऽ ) मौनने ( धत्तां  
केऽ ) धारण कर. वक्षी ( अगारं केऽ ) घरने ( उ-  
ज्जतु केऽ ) त्याग कर. वक्षी ( विधिप्रागदृश्यं केऽ )  
सर्वं आचारनुं जे चातुर्यं तेने ( अन्नस्यतां केऽ )  
अन्न्यास कर. वक्षी ( अंतर्गणं केऽ ) गठवासमां  
अथवा ( अंतर्वण ) एवो पार होय तो वनने विषे  
( अस्तु केऽ ) हो. वक्षी ( आगमश्रमं केऽ ) सि-  
द्धांतना पठनने ( उपादत्तां केऽ ) अंगीकार कर.  
तथा ( तपः केऽ ) तपश्चर्यानि ( तप्यतां केऽ ) तप.  
परंतु ( चेत् केऽ ) जो वक्षी ( इंडियव्रातं केऽ )  
इंडियसमूहने ( जेतुं केऽ ) जीतवाने एट्टेवे वश  
करवाने ( नावैति केऽ ) न जाणे ढे ( ततः केऽ )  
तो ( सर्वं केऽ ) पूर्वोक्त सर्वं, ( ज्ञस्मनि केऽ ) रा-  
खने विषे ( हुतं केऽ ) होमेद्वं हुतदृश्यं जेबुं होय  
तेम वृथा ( जानीत केऽ ) जाण. ते केहवो ढे इं-

( शृणु )

द्वियव्रात ? तो के ( श्रेयःपुंजनिकुंजञ्जन के० ) पुण्यसमूहरूप जे वन तेना ञंजनननेवीषे ( महावा-तं के० ) विटोलीया जेवो ठे ॥ ७१ ॥

टीका:-धत्तामिति ॥ हे साधो ! नवान् मौनं धत्तां कुरुतां । पुनः अगारं यहं उज्जतु त्यजतु । पुनर्विधि-प्रागद्वयं सर्वाचारचातुर्यं अन्यस्यतां कुर्वतु । अंतर्गणं गठवासमध्ये अथवा अंतर्वर्णमितिपाठे वन-मध्ये श्रस्ता जवतु । पुनरागमश्रमं सिद्धांतपठनं उपादत्तां अंगीकुरुतां । पुनस्तपस्तप्रतां करोतु । परं वेद्यदि इंद्रियव्रातं इंद्रियसमूहं जेतुं वशीकर्तुं नावैति न जानाति । तदा सर्वं पूर्वानुष्ठानं चस्मनि रक्षायां हुतं वृथा जानीत । कथं ज्ञूतं इंद्रियव्रातं । श्रेयसां कल्याणानां पुंजएव निकुंजं तस्य नंजने म-हावातं वातूबासमानं ॥ ७१ ॥

चाषाकाव्यः—वृत्त ऊपर प्रमाणे ॥ मौनके धरै-या, यह त्यागके करैया, विधि रीतिके सधैया, पर-निंदासों अपूरे हैं ॥ विद्याके अन्यासी, गिरिकंदरा के बासी, शुचि अंगके आचारी, हितकारी बैन वूरे हैं ॥ आगमके पाठी, मन लाय महा काठी, चारी कष्ट-के सहनहार, रमाहूंसों रुरे हैं ॥ इत्यादिक जीव,

( शृणु )

सब कारज करत रीतें, इंड्रिनके जीते, बिना सर-  
वंग छूरे हैं ॥ ७१ ॥

बली कांश विशेष कहे डे.

धर्मध्वंसधुरीणमन्त्रमरसावारीणमापत्प्रथा,  
खंकर्मीणम शर्मनिर्मितिकदापारीणमेकांत-  
तः ॥ सर्वान्नीनमनात्मनी नमनयात्यंतीन-  
मिष्टे यथा, कामीनं कुमताध्वनीनमज यन्न-  
द्वौघमद्वेमन्नाक् ॥ ७२ ॥ इतींद्रियदम-  
प्रक्रमः ॥ २६ ॥

अर्थः—( अहोघं केण ) इंड्रियोनासमूहने ( अ-  
जयन् केण ) नहि वश करतो एवो प्राणी, ( अहो-  
मन्नाक् केण ) अकद्याणनो चजनारो आय डे. ते  
केहवो डे इंड्रियउघ ? तो के ( धर्मध्वंसधुरीणं केण )  
धर्मना नाश करवामां मुख्य डे, बली ( अन्त्रमरसा-  
वारीणं केण ) सत्य ज्ञानने आष्टादन करनार डे,  
बली ( आपत्प्रथाखंकर्मीणं केण ) कष्टना विस्तार-  
मां पूर्ण कर्म करनार डे तथा ( अशर्मनिर्मितिक-  
दापारीणं केण ) अकद्याणना निर्माणने विषे चतुर  
डे, बली ( एकांततः केण ) निश्चये करी ( सर्वान्नी-

नं केऽ ) सर्वान्नजद्ग्रहक डे, वली ( अनात्मनीनं केऽ )  
 आत्मानो अहितकारक डे, तथा ( अनयात्यंतीनं  
 केऽ ) अन्यायने विषे अत्यंत गामी तथा ( इष्टे  
 केऽ ) इष्टित वस्तुने विषे ( यथाकामीनं केऽ ) स्वे-  
 छायें वर्तनारो डे, तथा ( कुमताध्वनीनं केऽ ) कु-  
 त्सितमतरूप जे मार्ग तेने विषे पांश्चीजनसमान डे  
 तेने जिंत्या शिवाय प्राणी कछ्याणनो ज्ञजनारो थाय  
 नहीं ॥७२ ॥ इति षोडश इंद्रियदमप्रक्रमः ॥ १६ ॥

टीकाः—पुनर्विशेषमाह ॥ धर्मध्वंसेति ॥ अह्ना-  
 णां इंद्रियाणा उंघं समूहं अजयन् अवशीकुर्वन्  
 जनः अह्नेमन्नाक् अकछ्याणन्नाग् ज्ञवति । कथं ज्ञूतं  
 अह्नौघं । धर्मध्वंसे धुरीणः मुख्यस्तं । पुनरत्रमरस-  
 स्य सत्यङ्गानस्य आवारीणं आवरणाय समर्थ आ-  
 वारीणस्तं आह्नादकं । पुनः कथं ज्ञूतं ? आपदां कष्टा-  
 नां प्रथायां विस्तारणे अदंकमर्मीणः कर्मक्षयस्तं ।  
 पुनः किं ज्ञूतं ? अशर्मणां अकछ्याणानां ऊःखानां  
 निर्मितौ निर्मणे करणे कलापारीणश्चतुरस्तं । पुनः किं-  
 ज्ञूतं ? एकांततो निश्चयेन सर्वान्नीनः सर्वान्नजद्ग्रहक-  
 स्तं । पुनः किं ज्ञूतं ? न आत्मने हितोऽनात्मनीनः तं  
 आत्मनोऽहितं । पुनः किं ज्ञूतं ? अनयान्यायेऽत्यंतीनो-

ज्यंतगामी तं । पुनः किंचूतं ? इष्टे इष्टवस्तुनि यथाका-  
मं स्वेद्यावर्त्तते इति यथाकामिनस्तं । पुनः किंचूतं ?  
कुमते कुत्सितमते अध्वनीनः पांथस्तं । ईदृशं इंड्रियस-  
मूहं अजयन् सन् अहेमनाग् ज्ञवति ॥७८॥ यतः ॥ कुरं-  
गमातं गपतं गच्छुंग, मीना हताः पंच न्निरेव पंच ॥ एकः  
प्रमादी सकथं न हन्यते, यः सेवते पंच न्निरेव पंच  
॥ १ ॥ इति ॥ सिंदूरप्रकरण्थ, व्याख्यायां हर्षकीर्ति-  
न्निः ॥ सूरि न्निर्विहितायां तु, इंड्रियप्रक्रमोऽजन्नि ॥ १६ ॥

जाषाकाव्यः—वृत्त ऊपरप्रमाणे ॥ धर्म तरु चंजनकों  
महामत्त कुंजरसें, आपदा चंदारके चरनकों करोरी  
हैं ॥ सत्यशील रोकवेकों पौढ़ै परदार जैसें, दुर्ग-  
तिको मारग चलायवेकों धोरी हैं ॥ कुमतिके अधि-  
कारी कुनय पथके विहारी, चक्रज्ञाव इंधन जराय-  
वेकों होरी है ॥ मृषाके सहाइ दुर्गाविनाके चाश,  
ऐसे विषयान्निलाषी जीव अघके अघोरी है ॥ ७९ ॥

कथा:- इंड्रियदमन ऊपर कथा कहे ढे. जरत-  
क्षेत्रें विशालानगरमां चेडो नामें राजा राज्य करे  
ढे. ते परमजिनधर्मी ढे, तेने सातपुत्रीमां सुज्येष्ठा  
तथा चेलणा एवे नामें वे पुत्री ढे. तेने मांहोमांहे  
घणो स्लेह ढे, ते जेम के शयन, जोजन, स्नान,

दान सर्व एकठां करे. ते गाममां कोइ पारिव्राजि-  
का आवीने पोताना शौचमूल धर्मेनां वखाण करती  
फरे. एकदा ते पारिव्राजिका कन्याना अंतेउरमां  
गङ्ग. तिहां तेने सुज्येष्टायें वाद करी जींती निर्जूर्डी-  
ने काहाडी मूकी, ते वखत पारिव्राजिकायें रोष  
करीने एवो निश्चय कस्यो के ए बालिकाने हुं म-  
होटा संकटमां नाखुं ! जेथी महारुं वैर वक्षी आवे.  
एम चिंतवी पडी सुज्येष्टानुं रूप पाटीयामांहे तावश  
चितराव्युं ते रूप श्रेणिक राजाने जई देखाढ्युं. ते  
जोइ श्रेणिक राजायें कामविहळ अझने चेढाराजा  
उपर दूत मोकळी कन्यानी मागणी करावी, पण  
चेढायें नाकारो कस्यो.

तेवारें अन्नय कुमार पोतें श्रेणिकराजानुं तावश  
रूप पट्ठ उपर चित्रावी, ते लश विशाळा नगरीयें  
आवी. अंतेउरनी पासें सुगंधीवस्तुनी छुकान मांसी  
बेठो. जेवारें अंतेउरमांथी सुज्येष्टानी दासी सुगंधी  
वस्तु लेवा आवे, तेवारें तेने बहुमूली वस्तु अद्य-  
मूळ्यें आपे. अने ते दासीने श्रेणिक राजानुं रूप  
पण देखाडे. दासीयें रूपने वखाणतां सुज्येष्टानी  
आगल वात करी, ते रूप श्रेणावी सुज्येष्टाने देखा-

( २४७ )

खुं. ते जोइ मोइ पासीने एकांतें श्रेणिक राजा उ-  
पर रागिणी थइ. ते वात अन्नयकुमारें जाणीने एक  
सुरंग खोदावी ते मांहेथी श्रेणिकने तेडाव्यो, तेनी  
आगल सुज्येष्ठा पण आवी. पठी जेटदामां सुज्ये-  
ष्ठा आन्नरण देवा पाठी गइ, एटदामां सुज्येष्ठाने  
जोवा सारु चेकणा ते सुरंगमां आवीने राजाश्रेणि-  
क आगल उन्नी रही. राजा तेनेज सुज्येष्ठा जाणी  
तत्काल घोडा उपर चडावीने चालतो थयो.

पाठकथी सुज्येष्ठा पण आन्नरणनो करंमीयो ल-  
इ सुरंगमां आवी, श्रेणिक राजाने जोवा लागी पण  
राजाने चेकणा सहित दीरो नही, तेवारें पोकार  
कस्यो, ते चेडाराजायें सांजल्यो, तेवारें वाहार कर-  
वा दोङ्यो, तेने सुरंगमांहे श्रेणिकराजायें आवतो  
दीरो, ते वखतें सुलसाना बत्रीश पुत्र आवी ऊना  
रह्या. राजा श्रेणिक चेकणाने लइ नीकद्वी गयो.  
चेडाराजायें एक बाण मास्यो ते वागवाथी पुत्र प-  
डी गया. समुदाय कर्म लागुं. पठी सुज्येष्ठायें विचा-  
खुं जे में एक चिंतव्युं अने बीजुं थयुं ! एम चिंत-  
वी वैराग्यरंग वासित थइ श्रीवीरनी पासें जइ दी-  
क्षा लइ तेने निरतिचारपणे पालवा लागी.

( शृणु )

एवा श्रवसरमां कोइक पेढाल नामें विद्याधर अनेक विद्यार्थिनो निधान ठे, ते वृद्धपणुं पास्यो, तेवारें विद्या देवा योग्य पात्र शोधवा लाग्यो, पण ताहश पात्र कोइ मले नहीं. जे सुशील कामरहित स्त्री होय वली ब्रह्मचारिणी होय, तेना उपरथी जे पुत्र उत्पन्न आय ते उत्तम जाणवो. तेवा पात्रने विद्या दीर्घी थकी बहु फखदायक आय. एम निर्धारी तेवी स्त्री जोवा माटें पेढाल विद्याधर फस्या करे, तेणे एकदा दीक्षानी पालनारी शीलत्रत धरनारी सुज्येष्ठाने दीर्घी, तेवारें वीद्याने बद्वें अंधकार करी जेम सुज्येष्ठाना जाणवामां न आवे, तेवी रीतें तेनी यो-निमां त्रमरानुं रूप करी वीर्य प्रक्षेप्युं. परी थोडे थोडे तेने गर्जनां चिन्ह प्रगट थवा लाग्यां, पण श्रीमहावीरें तेने निर्विकारी कही तेथी सज्यातर श्रावकें तेने घरमां राखी. तिहां पूर्ण मासें पुत्र प्रसव्यो, तेनुं सात्यकी एवुं नाम दीधुं. ते साध्वीयोने उपासरे महोटो थवा लाग्यो. तिहां जे जे साध्वीयो जाणे, ते सर्व सांजलतां थकां तेणे सर्व शास्त्र कंरें करी लीधां.

एकदा कोइ कालसंवर विद्याधर अने सात्यकी श्रीवीरना समोसरणमां बेरा थका उपदेश सांजले

डे. तिहां सात्यकीयें जगवानने कहुं के महाराज ! हुं मिथ्यात्वने परहुं करी समुद्रमां नाखी दर्शा. ते-ने जगवानने कहुं के तहाराथी तो उखटुं विशेष मिथ्यात्व प्रचलित थशे. तेटखामां कालसंवर वि-द्याधरें पूब्युं के हे जगवन् ! मुझने कोनाथी जय थशे ? ते वारें जगवाने कहुं के ए सात्यकी थकी तुजने जय थशे ! ते सांचली विद्याधरें विचार्युं जे ए बालकनुं माहारी आगल शुं गजुं ! एम चिंतवी सात्यकीने पगनी ठेश मारीने जतो रह्यो, ते देखी सात्यकीना मनमां महोटो विषाद उपन्यो. परी सा-त्यकी जेवारें महोटो थयो, तेवारें पेढावें तेने रोहिणी प्रमुख विद्यार्ज शीखवी. ते विद्यार्ज साधतांकालसंवर विद्याधर तेने अंतराय करवा लाग्यो. परंतु पूर्वजन्मना वचनथी ते विद्या देवी थोडे थोडे अनुक्रमें प्रसन्न थइ. केम के पूर्वजवें विद्यादेवीयें ए सात्यकीने पां-च जव पर्यंत विणास्यो हतो, परंतु पांचमे जवें क-हुं हतुं के ठछे जवें तुजने उपक्रमें विद्या सिजशे. तेमाटें विद्या तत्काल सिङ्ग थइ. पण ते वखतें सा-त्यकीयें पोतानुं मात्र ड महीनानुं आयुष्य रहेहुं

( ३०१ )

सांजद्वी फरी विद्यादेवीने कहुं के स्वामिनि ! तमे महारी उपर कृपा करी सातमे जवें वहेखां सिद्ध थजो. ते वचनथी सात्यकीने सातमे जवें ते विद्या तत्काल सिद्ध थइ. ते विद्यादेवीनो अत्यंत प्रेम सात्यकी उपर उपन्यो अने कहेवा लागी के ताहारा शरीरमांहे एबुं कोइ स्थानक देखाड के जिहां अमें षोडश विद्यादेवीयो आवीने वसीयें ! सात्यकीयें पोतानुं मस्तक देखाड्युं, तेवारें देवीयोयें लखाटमां बिङ्ग पाडी मांहे प्रवेश कीधो. तिहां बिङ्गने स्थानके त्रीजुं नेत्र कीधुं.

एकदा सात्यकीयें विचास्तुं जे महारा पिता पेढालें महारी माता साध्वीनी निंदा करावी थे ? एवो रोष लावीने पेढालने मारी नारुयो. ते समाचार कालसंवर विद्याधरें सांजद्व्या, तेथी तेणे पण त्यांथी पलायन कीधुं. सात्यकी तेनी पाडल दोङ्यो, कालसंवरें आकाशमां त्रण नगरीनी रचना करी घणा काल पर्यंत युद्ध करहुं. तो पण सात्यकीयें तेने मारुयो. पठी सात्यकी मदोन्मत्त थइ पोतानी इड्यायें अनेक परस्त्रीयोने जोगववा लागयो. साधुने योगें मिथ्यात्व तजी क्षायिक सम्यक्त्व पास्यो. त्रि-

संध्या जिनाच्छा करे. एकदा उज्जायणी नगरीयें चं  
द्रप्रद्योतनराजाना अंतेउरमां प्रवत्त्यों राजायें क्रोध  
आणीने कह्युं के कोइ सात्यकीने मारनार ढे ?  
तेवारें उमया गणिकायें राजा आगल सात्यकीने  
मारवानी कबुलात आपि. विश्वासघात करी मारी  
नखाढ्यो ॥ ए प्रमाणे इंद्रियबोद्धुसपणुं करवाशी  
ते बखवान् एवो सात्यकी नाश पाम्यो. माटें इं-  
द्रियो वश राखवी ॥ ७२ ॥

हवे लक्ष्मीनो स्वज्ञाव कहे ढे.

निम्नं गडति निम्नगेव नितरां निष्ठेव वि-  
ष्कंजते, चैतन्यं मदिरेव पुष्यति मदं धू-  
म्येव दत्तेऽधताम् ॥ चापल्यं चपलेव चुंब-  
ति दवज्वालेव तृष्णां नय, त्युम्बासं कुल-  
टांगनेव कमला स्वैरं परित्राम्यति ॥ ७३ ॥

अर्थः—( कमला के० ) लक्ष्मी, ( निम्नं के० ) नी-  
चप्रत्यें ( विम्नगाइव के० ) नदीनी पेरें ( गडति  
के० ) जाय ढे. वली ते लक्ष्मी ( नितरां के० ) श्र-  
त्यंत ( चैतन्यं के० ) झानने ( विष्कंजते के० ) वि-  
नाश करे ढे. केनी पेरें ? तो के ( निष्ठेव के० ) नि-

आनी पेरें. जेम निझा अचैतन्य करे डे, तेम लङ्घमी पण झाननो नाश करे डे. तथा ( मदं कें ) अहं-कारने ( पुष्यति कें ) पोषण करे डे. केनी पेरें ? तो के ( मदिरेव कें ) मदिरा जेम डे तेम. अर्थात् जेम मदिरा उन्मत्तताने करे डे तेम लङ्घमी पण अहंकार जे मद तेने करे डे. वली ते लङ्घमी अंधतां कें ) अंधपणाने ( दत्ते कें आपे डे. केनी पेरें ? ( धूम्येव कें ) धूमस मूहनी पेरें वदी ( चापद्यं ) चंचलपणाने ( चुंबति कें ) नजे डे. केनी पेरें ? तो के ( चपलेव कें ) विजदीनी पेरें जाण-बुं तथा ( तृष्णां कें ) मृग तृष्णाने अने ( उद्भासं कें ) उद्भासने ( नयति कें ) पमाडे डे ऐटले लोज वांडाने वधारे डे. केनी पेरें ? तो के ( दवज्वालेव कें ) वनाग्निनी ज्वालानी पेरें अर्थात् जेम दवज्वाला तुषाने वधारेडे. तेम लङ्घमी लोजने वधारे डे. वदी लङ्घमी ( स्वैरं कें ) स्वडायें करी ( परिभ्रमति कें ) परिभ्रमण करे डे. केनी पेरें ? तो के ( कुलटांगनेव कें ) स्वैरिणी स्त्रीनी पेरें. जेम असती स्त्री स्वेडायें जमे डे, तेम लङ्घमी पण स्वडायें ब्रमण करे डे ॥ ७३ ॥

टीकाः—पुनर्लक्ष्मीखन्नावमाह ॥ निम्नंगेति ॥ क-  
मला ॥ खद्धीः निम्नं नीचं प्रति गडति । केव ?  
निम्नगा इव नदीव । यथा नदी नीचं गडति । पुनः नितरां  
अतिशयेन चैतन्यं झानं विष्कंजते विनाशयति ।  
केव ? निर्देव यथा निर्दा अचैतन्यं करोति । पुन-  
र्लक्ष्मीर्मदं अहंकारं पुष्ट्यति पुष्णाति । केव ? मदि-  
रेव सूरेव यथा मदिरा मदं उन्मत्ततां करोति । पुनः  
कमला अंधतां दत्ते अंधत्वं करोति । केव ? धूम्येव  
धूमसमूहेव । यथा धूमोऽप्यंधं करोति । पुनर्लक्ष्मी-  
श्रापद्वयं चुंबति चजति । केव ? चपला इव विद्यु-  
दिव । पुनः कमला तृष्णां उद्भासं नयति । लोन्न-  
वांष्ठां वर्जयति । केव ? दवज्वाला इव । यथा दव-  
ज्वाला तृष्णां वर्जयति । पुनः कमला स्वैरं स्वेष्या  
परिभ्रमति । केव ? कुलटां गना इव असती स्त्रीइव  
यथा असती स्त्री स्वेष्या भ्रमति तद्धत् ॥ ७३ ॥

ज्ञाषाकाद्यः—सवैया तेष्टा ॥ नीचकि और ढौरे  
सरिता जिम, धूम बढावत नींदकि नांश ॥ चंचल-  
ता प्रगटै चपला जिम, अंध करै जिम धूमकि जां-  
श ॥ तेज करै त्रसना दव ज्यौं मद, ज्यौं मद पो-

षति मूढकि तांश् ॥ ए करतूत करै कमला जग,  
मोलत ज्यौं कुखटा बिनु सांश् ॥ ७३ ॥  
वदी धनना दोषो कहे डे.

दायादाः स्पृहयंति तस्करगणा मुष्णांति  
ज्ञूमीञ्जुजो, गृह्णंति छलमाकलय्य हुतञ्जु-  
ज्ञस्मीकरोति दणात् ॥ अंजः प्लावयति क्षि-  
तौ विनिहितं यद्वा हरंते हठात्, उर्वर्तास्त-  
नया नयंति निधनं धिग्बब्धधीनं धनम् ॥ ७४

अर्थः—( धनं केऽ ) इव्यने ( धिक् केऽ ) धि-  
क्कार हो. ते केहबुं इव्य डे ? तो के ( बब्धधीनं  
केऽ ) घणाकने आधीन रहेखुं डे. कोने कोने आ-  
धीन रहेखुं डे ? तो के ते धननी ( दायादाः केऽ )  
गोत्रीया ( स्पृहयंति केऽ ) स्पृहा करे डे. वदी तेने  
( तस्करगणाः केऽ ) चोरना समूहो ( मुष्णांति केऽ )  
चोरे डे. तथा ( ज्ञूमीञ्जुजः केऽ ) राजार्ज ( छलं केऽ )  
कांश पण मिषने ( आकलय्य केऽ ) दशने ( गृह्ण-  
ति केऽ ) ग्रहण करे डे. वदी ( हुतञ्जुक् केऽ ) अ-  
म्भि ( दणात् केऽ ) दणमात्रमां ( ज्ञस्मीकरोति  
केऽ ) ज्ञस्म करे डे. अने ( अंजः केऽ ) पाणी, ( प्ला-

वयति केऽ ) पखालि नाखे डे. तथा ( हितौ केऽ ) पृथ्वीने विषे ( विनिहितं केऽ ) स्थापन करेलुं जे धन, तेने ( यद्धाः केऽ ) व्यंतरो, ( हर्गात् केऽ ) बखात्कारथी ( हरंते केऽ ) हरण करे डे. तथा ( डुर्वृत्ताः केऽ ) डुराचारी एवा ( तनयाः केऽ ) पुत्रो, ( निधनं केऽ ) विनाशने ( नयंति केऽ ) पमाडे डे. माटें घणा जननी स्पृहायुक्त एवा धनने धिक्कार होजो ॥७४॥

टीकाः—धनस्य दोषानाह । धनं ऊर्ध्वं धिक् अस्तु । धिक् निर्जर्तसननिंदयोः । किंचूतं ? बब्हधीनं बब्हधीनत्वं । बहवः इष्ठंति । कथं ? दायादाः गोत्रिणः स्पृहयंति ग्रहीतुं वांडंति । पुनस्तस्करगणाश्चोरसमूहाः मुष्णंति चौरयंति । पुनर्ज्ञमीच्छुजो राजानः बलं आकालय्य मिषं दत्त्वा यद्धंति । हुतचुक् वन्हिः क्षणाद्वेगेन जस्मीकरोति ज्वालयित्वा रक्षां करोति । पुनरंजः पानीयं प्लावयति वाहयति । पुनर्यज्ञनं हितौ विनिहितं स्थापितं सन् यद्धाव्यंतरा हर्गाद्वलात्का रेण हरंते श्रपहरंति । पुनर्डुर्वृत्ताः डुराचारास्तनयाः पुत्रा निधनं विनाशं नयंति प्रापयंति । एवं बब्हधीनं धनं धिगस्तु ॥ ७४ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—वृत्त ऊपर प्रमाणे ॥ बंधु विरोध

करै निशि वासर, डंकु नकों नरवश भब जोवै ॥ पा-  
वक दाहत नीर वहावत, वहै वग उट निशाचर  
ढोवै ॥ चूतब रक्षत जक्ष हरै करि, कै डुखवृत्ति  
कुसंगति खोवै ॥ ए उत्पात उरै धनके ढिग, दा-  
मधनी कहो क्यौं सुख सोवै ॥ ७४ ॥

जे धन रे तेज मोहनुं उत्पादक रे, ते कहे रे.  
नीचस्याऽपि चिरं चट्टनि रचयंत्यायांति  
नीचैर्नतिम्, शत्रोरप्यगुणात्मनोऽपि विद-  
धत्युच्चैर्गुणोत्कीर्तनम् ॥ निर्वेदं न विदंति  
किंचिदकृतझस्यापि सेवाक्रमे, कष्टं किं न  
मनस्विनोऽपिमनुजाः कुर्वति वित्तार्थिनः ॥ ७५ ॥

अर्थः—( मनस्विनोऽपि केण ) मानवंत एटद्वे  
काह्या एवा पण ( मनुजाः केण ) मनुष्यो, ( वित्ता-  
र्थिनः केण ) ऊच्यार्थी थया उता, ( किं कष्टं केण )  
कया कष्टने ( न कुर्वति केण ) नथी करता ? अ-  
र्थात् सर्व प्रकारना कष्टने करेज रे. ते जेम केः—वि-  
त्तार्थीजनो ( नीचस्यापि केण ) नीच जननी आग-  
ल, ( चट्टनि केण ) प्रिय एवां वचनोने ( चिरं केण )  
घणा काल ( रचयंति केण ) बोद्धे रे. तथा ( नीचैः

केऽ नीच पुरुषो सायें ( नतिं केऽ ) प्रणामने  
 (आयांति केऽ) करे ढे. तथा (अगुणात्मनोपि केऽ)  
 निर्गुण एवा पण ( शत्रोरपि केऽ) शत्रुनापण (उच्चैः  
 केऽ) अतिशयें करी ( गुणोत्कीर्तनं केऽ ) गुणवर्णनने  
 ( विदधति केऽ ) करे ढे. वद्धी ( अकृतज्ञस्यापि  
 केऽ ) करेद्वा कार्यने न जाणनारा एवा अकृतज्ञ  
 स्वामीना पण ( सेवाक्रमे केऽ ) सेवा करवामां ( किं-  
 चित् केऽ ) जरा पण ( निवेदं केऽ ) खेदने ( न-  
 विदंति केऽ ) जाणता नशी. एटद्वे वित्तने वांडना-  
 रा जनो पूर्वोक्त सर्व काम करे ढे.

टीका:-धने मोहोत्पादकत्वमाह ॥ नीचस्येति ॥  
 मनस्विनोमानवंतो दक्षा अपि मनुष्या वित्तार्थिनो  
 उद्ब्यार्थिनः संतः किं कष्टं न कुर्वति ? अपि तु सर्व  
 कष्टकुर्वति । यथा नीचस्यापि नरस्याग्रेचिरं चिरका-  
 लं याचन् चूनि चटुवचनानि प्रियवचनानी र-  
 चयंति जट्पंति । पुनर्नीचैर्नरैः समं नतिं आयांति  
 प्रणामं कुर्वति । पुनः शत्रोरपि अगुणात्मनो-  
 पि निर्गुणस्यापि उच्चैरतिशयेन गुणोत्कीर्तनं गुण  
 वर्णनं विदधति । पुनरकृतज्ञस्यापि प्रज्ञोः सेवा-  
 क्रमे सेवाकरणे किंचित् स्तोकमपि निवेदं खेदं

न विदंति न जानंति । वित्तवांछकाः संतः ॥ ७५ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—सर्वैया इकतीसा ॥ नीच धनवंत  
तांश् निरखि असीस देश्, वह न विलोके यह चर-  
न गहतु है ॥ वह अकृतज्ञ नर यह अझता को  
घर, वह मदबीन यह दीनता कहतु है ॥ वह चि-  
त्त कोप रानै यह वाकों प्रचु मानै, वाके कुवचन  
सब याहिपै सहतु है ॥ ऐसी गति धारै न विचारै कबु  
गुनदोस, अरथाजिलाषि जीव अरथ चहतु है ॥ ७५ ॥

लक्ष्मीः सर्पति नीचमर्णवपयः संगादिवा-  
न्नोजिनी, संसर्गादिव कंटकाकुखपदा न का-  
पि धत्तेपदम् ॥ चैतन्यं विषसनिधेरिव नृ-  
णामुज्जासयत्यंजसा, धर्मस्थाननियोजनेन  
गुणिन्निर्ग्राह्यं तदस्याः फखम् ॥ ७६ ॥ इति  
लक्ष्मीस्वनावप्रक्रमः ॥ १७ ॥

अर्थः—( लक्ष्मीः के० ) लक्ष्मी, ( नीचं के० ) नीच  
पुरुषप्रत्यें ( सर्पति के० ) जाय डे. शा माटें जाय  
डे ? तो त्यां उत्प्रेक्षा करे डे. के ( अर्णवपयः संगा-  
दिव के० ) समुद्र जलना संगथकी जेम जल डे,  
ते नीचगामी डे तेम लक्ष्मी पण जलसंगथकी

नीचगामी थइ डे. कारण के लक्ष्मीनी उत्पत्ति स-  
मुद्रजबथीज डे अर्थात् समुद्रजब पिता होवाथी  
ते नीचगामी डे. वली लक्ष्मी ( कापि कें ) कोइ  
पण ( पदं कें ) स्थानकने ( न धत्ते कें ) नथी  
धारण करती. केम के, ( अंजोजिनीसंसर्गात् कें )  
कमलिनीना संयोगथकी ( कंटकाकुलपदाश्व कें )  
कांटायें करी व्याप्त डे पग जेना एवीज जाणीयें  
होय नही एटबे जेम कोइने कांटा वाग्या होय ते-  
ने पीडा होवाथी क्यांय पग मांझी सके नही तेम  
लक्ष्मी पण एकस्थां रहेती नथी. वली लक्ष्मी  
( नृणां कें ) मनुष्योना ( चैतन्यं कें ) ज्ञानने  
( अंजसा कें ) अनायासें करी ( उज्जासयति कें )  
गमावे डे शा माटें ? तो के ते ( विषसन्निधेरिव  
कें ) विषना सन्निधिपणा अकीज जाणीयें होय  
नही कारण के विषनुं अने लक्ष्मीनुं स्थानक एक  
समुद्रज डे. ( तत् कें ) ते कारणमाटें ( गुणिन्निः  
कें ) गुणिजनोयें ( धर्मस्थाननियोजनेन कें )  
धर्मस्थानमां तेना व्ययने करवे करी ( अस्याः कें )  
आ लक्ष्मीनुं ( फलं कें ) फल. ( ग्राह्यं कें ) ग्र-  
हण करवायोग्य डे. अर्थात् पुण्यकार्यमां जे लक्ष्मी

वापरे, ते लद्दमीनुं फल पामे ॥ ७६ ॥ इति सप्तद-  
श लद्दमीस्वन्नावप्रक्रमः ॥ १७ ॥

टीकाः—उपमानेन श्रीस्वरूपमाह ॥ लद्दमीः नीचं  
सर्पति नीचं जनं प्रतियाति । कस्मात् ? उत्प्रेक्षते ।  
अर्णवपयः संगात् समुद्रजलसंगमान्नीचगामिन्य-  
चूत् । पुनर्लद्दमीः कापि पदं स्थानं च न धत्ते न स्था-  
पयति । कीदृशी ? अन्नोजिनीसंसर्गात् कमलिनी-  
संयोगादिव । कंटकाकुलपदा कंटकैव्यासिचरणेव ॥  
पुनर्लद्दमीर्णेणां पुंसां चैतन्यं ज्ञानं अंजसा वेगेनोङ्गा-  
सयति गमयति । कस्मात् विषसंन्निधेर्विषसामीप्या-  
दिव लद्दम्याः विषस्य च समुद्रस्थानत्वात् तस्मात्का-  
रणात् गुणित्तिर्जनैर्धर्मस्थाननियोजनेन धर्मस्थानव्य-  
यकरणेनास्याः लद्दम्याः फलं ग्राह्णं सफला कर्त्तव्येत्य-  
र्थः ॥ ७६ ॥ सिंदूरप्रकरण्य, व्याख्यायां हर्षकीर्त्तिन्निः ॥  
सूरित्तिर्विहितायांतु, लद्दम्याश्च प्रक्रमोऽजनि ॥ १७ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—वृत्त ऊपर प्रमाणे ॥ नीचहीकी  
औरकुं उमंगी चलै कमलासु, पिता सिंधु सलिल  
सुन्नाउ याहि दियो है ॥ रहै न सुस्थिर वहै सकं-  
टक चरन याको, वसि कंजमांहि कंजकोसो पद  
कियो है ॥ जाकों मिलै हितसों अचेत करि मारै

तांहि, विषकी बहिन तातें बिषको सो हियो है ॥  
ऐसी उग्हारी जिन धरम के पश्चात्तरी, करिके  
सुकृत तिन याको फल खियो है ॥ ७६ ॥

कथा:-अंगदेशने विषे धारापुर नगरनो सुंदर  
नामें राजा ढे, तेनी मदनवन्नज्ञा नामें राणी ढे. तेने  
एक कीर्तिपाल, वीजो महीपाल एवे नामें बे पुत्र  
ढे. ते राजा परम्पराङ्गमुख ढे, अने राणी पण शी-  
लांगी ढे. एकदा मध्यरात्रियें तेनी कुलदेवतायें आ-  
वीने कहुं के हे राजन् ! तुझने दुर्दशा आवी ढे,  
महोदुं कष्ट प्राप्त थशे ? ते सांचबीने राजायें कहुं  
के गुज्जाशुनकर्मज जीवें कस्यां होय, ते जोगव्या वि-  
ना दूटको आय नही ॥ यतः ॥ संपदि यस्य न हर्षो  
विपदि विषादोरणेषु धीरत्वम् ॥ तं ज्ञवनत्रयतिक-  
कम्, जनयति जननी सुतं विरक्तम् ॥ १ ॥ माटें की-  
धाँ कर्म जोगव्याविना दूटे नही. एवुं धैर्य धरी  
प्रधानने राज्य जलावी राजा पोतें तथा स्त्री अने बे  
पुत्र साथें लश्य परदेश ज्ञाणी चाल्या. एकदा वगडामाँ  
कुदुंबसहित राजा सूतो ढे ते वखतें पोतानीपासें  
जे संबल हतुं, ते सर्व चोर लोको लश्य गया. पठी  
वनफलादिके कुदुंब निर्वाह करतो थको चालतो

चालतो पृथ्वीपुरनगरें आव्यो. तिहाँ कोइ धनसा-  
गर द्यवहारीयाना वाडामाँ रह्यो. राणी लोकोने  
धेर मजुरी करवा जाय ठे तेने स्वरूपवान् देखी मो-  
हितश्च लोको मजुरी बधारे देवा लागा. तिहाँ  
विषयी लोकोना प्रसंगशी घणां छुःख सहन कर्त्त्याँ,  
फरी ज्ञान्योदय थयो तेवारें पोताने नगरें गया. रा-  
ज्य पास्यां, सर्व कुटुंबने मद्यां, सर्व मनोरथ सिर्ज  
श्रया. घणो काल सांसारिक सुख जोगवी वृद्धाव-  
स्थायें चारित्र लई ठेवट संलेषणा करी देवलोकें  
गया. ए लक्ष्मीनी चंचलताविषे कथा जाणवी ॥७६॥

हवे दाननो उपदेश कहे ठे.

चारित्रं चिनुते धिनोति विनयं ज्ञानं नय-  
त्युन्नतिम्, पुष्णाति प्रशमं तपः प्रबलयत्यु-  
द्धासयत्यागमम् ॥ पुण्यं कंदलयत्यऽघं द-  
लयति स्वर्गं ददाति क्रमात्, निर्वाणश्रिय-  
मातनोति निहितं पात्रे पवित्रं धनम् ॥ ७७ ॥

अर्थः—( पवित्रं केण ) पवित्र एटले न्यायोपा-  
र्जित एवुं ( धनं केण ) धन, ( पात्रे केण ) पात्रने  
विषे ( निहितं केण ) आरोपण कर्त्तुं ठरुं एटले

( ३१४ )

दीधुं द्रुं ( चारित्रं के० ) संयमने ( चिनुते के० )  
 वधारे डे. तथा ( विनयं के० ) विनयना गुणने ( धि-  
 नोति के० ) वधारे डे. तथा ( ज्ञानं के० ) श्रुतादि-  
 कज्ञानने ( उन्नतिं के० ) उन्नतिप्रत्यें ( नयति के० )  
 पमाडे डे. तथा ( प्रशमं के० ) उपशमने ( पुष्णा-  
 ति के० ) पोषण करे डे. तथा ( तपः के० ) मास  
 पक्ष हपणादिक जे तप तेने ( प्रबलयति के० )  
 बलवान् करे डे. एटखे पारणादि योगथकी उत्साह  
 करे डे. तथा ( आगमं के० ) सिद्धांत पठनादिकने  
 ( उद्घासयति के० ) प्रबल करे डे. तथा ( पुण्यं के० )  
 पुण्यने ( कंदबयति के० ) उत्पन्न करे डे. ( अघं  
 के० ) पापने ( दबयति के० ) खंमन करे डे. तथा  
 ( स्वर्गं के० ) स्वर्गने ( ददाति के० ) आपे डे. तथा  
 ( क्रमात् के० ) अनुक्रमथकी ( निर्वाणश्रियं के० )  
 मोहरूप लहमीने ( आतनोति के० ) विस्तारे डे.  
 एटखे आपेडे. अर्थात् सुपात्रमां आपेद्वुं धन, पूर्वो-  
 क सर्व वस्तुने आपे डे ॥ ७७ ॥

टीका:-दानोपदेशमाह ॥ चारित्रमिति ॥ पवित्रं  
 न्यायोपार्जितं धनं वित्तं पात्रे सुपात्रे निहितं दत्तं सत्  
 चारित्रं संयमं चिनुते वर्द्धयति । विनयं विनयगुणं

धिनोति प्रीणयति । पुनर्ज्ञानं श्रुतादि उन्नतिं नयति  
प्रापयति । पुनः प्रशमं उपशमं पुष्ट्याति पोषयति ।  
पुनस्तपोमासकृपणादि प्रबलयति पारणादियोगा-  
द्भुत्साहयति । पुनरागमं सिद्धांतपठनादि उद्वास-  
यति प्रबलं करोति । पुनः पुण्यमेव सत्कर्मवनं कंद-  
लयति कंदलायुक्तं करोति पुनः अघं पापं दलयति  
खंडयति । पुनः स्वर्गं ददाति । क्रमादनुक्रमेण नि-  
र्वाणश्रियंमोक्षं लक्ष्मीआतनोति दत्ते इत्यर्थः । सु-  
पात्रे दत्तं धनं एतानि वस्तुनि करोति ॥ ७७ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—कवित्त मात्रात्मक छंद ॥ चरन  
अखंद ज्ञान श्रति उज्ज्वल, विनयविवेक प्रसम श्र-  
मदान ॥ अनघ सुन्नाज सुकृत गुनसंशय, उच्च श्र-  
मर पद बंध विधान ॥ अगम गम्य रम्य तपकी  
रुचि, उद्धत मुगति पंथ सोपान ॥ ए गुन प्रगट हो-  
हि तिनके घट, जे नर देहिं सुपत्तहिं दान ॥ ७७ ॥

दारिद्र्यं न तमीकृते न जजते दौर्जाग्यमा-  
लंबते, नाऽकीर्तिर्न परान्नवोऽन्निलषते न  
व्याधिरास्कंदृति ॥ दैन्यं नाभियते उनोति

( ३१६ )

न दरः क्षिभंति नैवापदः, पात्रे योवितरत्य-  
नर्थदखनं दानं निदानं श्रियाम् ॥ ७७ ॥

अर्थः—( यः केऽ ) जे पुरुष, ( पात्रे केऽ ) पात्र  
जनने विषे ( दानं केऽ ) दानने ( वितरति केऽ )  
आपे डे. ( तं केऽ ) ते पुरुषने ( दारिण्यं केऽ ) दारि-  
ण्यं, ( न ईक्षते केऽ ) जोतुं नशी, तथा ते पुरुषने  
( दौर्जाग्यं केऽ ) दुर्जाग्यपणुं, ( न चजते केऽ ) से-  
वतुं नशी. तथा ( अकीर्तिः केऽ ) अपयश ( नादं-  
बते केऽ ) आश्रय करतुं नशी. तथा ते पुरुषने ( प-  
राज्ञवः केऽ ) पराज्ञव, ( नाज्ञिकघते केऽ ) अज्ञि-  
लाष करतो नशी. तथा ( व्याधिः केऽ ) व्याधि,  
( न आस्कंदति केऽ ) न शोषण करे डे. तथा ( दै-  
न्यं केऽ ) दीनता ( नाद्रियते केऽ ) आदर करती  
नशी तथा ( दरः केऽ ) जय, ते ( न डुनोति केऽ )  
नशी पीडतो. तथा ( आपदः केऽ ) कष्टो, ( नैव-  
क्षिभंति केऽ ) नशीज पीडा करतां. ते दान कहेबुं  
डे ? तो के ( अनर्थदखनं केऽ ) उपद्रवोने नाश  
करनारुं डे तथा ( श्रियां केऽ ) संपत्तिनुं ( निदानं केऽ )  
कारणचूतडे. ते माटें सुपात्रने दान जरूर आपबुं ॥ ७७ ॥

टीकाः—पुनर्दानगुणानाह ॥ दारिद्र्यं नेति ॥ यः पुमान् पात्रे सुपात्रे दानं वितरति प्रयष्टति । तं पुरुषं दारिद्र्यं न ईक्षते न पश्यति । पुनस्तं दौर्जाग्यं छुर्जगत्वं न जजते न सेवते । पुनस्तं अकीर्तिरपयशो नाक्लंबते नाश्रयति । पुनस्तं पराज्ञवः नाऽन्निखषते न वांडति । पुनव्याधिमायं तं नास्कंदति न शोषयति । पुन दैन्यं दीनतां नाड्रियते नाश्रयति । पुनर्दरोज्जयं न छुनोति न पीड्यति । पुनः आपदोव्यसनानि कष्टानि तं न क्लिश्वन्ति न पीडयन्ति । यः पात्रे दानं ददाति । किंचूतं दानं ? अनर्थानां उपद्रवानां दखनं ठेदनं । पुनः किंचूतं श्रियां संपदां निदानं कारणं ॥ ७७ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—ठप्पयष्टंद ॥ सो दरिद्र दखमकै, तांहि छुरज्जाग न गंजै ॥ सो न लहै अपमान, सो तो विपदा जय जंजै ॥ पिसुन कोइ छुःख देइ तास तन व्याधि न बहुइ ॥ तांहि कुजस परिहरै, सुमुख दीनता न कहुइ ॥ सो लहै उच्च पद जगत मैं, अघ अनर्थ नाशहि सरव ॥ कहिं कंवरपाल सो धन्य नर, जो सुखेत बोवै दरव ॥ ७७ ॥

वद्वी पण दानना गुणो कहे डे.

खद्मीः कामयते मतिर्मृगयते कीर्तिस्तमा-  
खोकते, प्रीतिश्चुंबति सेवते शुज्जगता नीरो-  
गताऽलिंगति ॥ श्रेयः संहतिरञ्ज्युपैति वृ-  
णुते स्वर्गोपन्नोगस्थिति, मुक्ति वंडति यः  
प्रयडति पुमान् पुण्यार्थमर्थं निजम् ॥ ७४ ॥

अर्थः—( यः केण ) जे ( पुमान् केण ) पुरुष, ( पु-  
ण्यार्थ केण ) पुण्यने अर्थे ( निजं अर्थं केण ) पोता-  
ना धनने ( प्रयडति केण ) आपे डे ( तं केण ) ते  
पुरुषने ( खद्मीः केण ) कमला, ते ( कामयते केण )  
इडे डे. तथा तेने ( मतिः केण ) बुद्धि, ( मृगयते  
केण ) खोले डे शोधे डे. तथा ( कीर्तिः केण ) की-  
र्ति ( आखोकते केण ) जोवे डे तथा तेने ( प्रीतिः  
केण ) प्रीति, ( चुंबति केण ) चुंबन करे डे तथा ते  
जनने ( सुज्जगता केण ) सौज्ञाग्य, ( सेवते केण )  
सेवे डे. तथा ( नीरोगता केण ) आरोग्यता, ते ( आ-  
लिंगति केण ) आलिंगन करे डे. वद्वी तेने ( श्रेयः  
संहतिः केण ) कद्याणपरंपरा, ( अञ्ज्युपैति केण )  
सन्मुख आवे डे. तथा ते पुरुषने ( स्वर्गोपन्नोगस्थि-

तिः केऽ ) स्वर्गना उपज्ञोगनी पद्धति, ( वृणुते केऽ )  
वरे डे. तथा ( मुक्तिः केऽ ) मोक्ष, ( वांछति केऽ )  
वांडे डे. माटें झव्यने पुण्यने अर्थे अवश्य वापरबुं ॥७५॥

**टीका:-**—दानयुणानाह ॥ लक्ष्मीरिति ॥ यः पुमान्  
पुण्यार्थं श्रेयोर्थं निजं अर्थं स्वकीयं धनं प्रयडति  
ददाति । तं पुरुषं लक्ष्मीः कमला कामयते वांडति ।  
पुनर्मतिर्बुद्धिस्तं मृगयते अन्वेषति । पुनः कीर्त्तिस्तं  
आलोकते पद्धति । पुनः प्रीतिरानन्दस्तं चुंबति  
श्विष्यति । पुनः सुन्नगता सौन्नाग्यं तं सेवते न्नज-  
ति । नीरोगता आरोग्यं तं आदिंगति । पुनः श्रेयः  
संहतिः कद्याणपरंपरा तं अच्युपैति सन्मुखमाया-  
ति । पुनः स्वर्गोपज्ञोगस्थितिर्देवलोकस्य ज्ञोगपद्ध-  
तिस्तं वृणुते वरयति । पुनर्मुक्तिर्मोक्षस्तं वांडति ।  
यः पुण्यार्थं निजं अर्थं प्रयडति ॥ ७५ ॥

**जापाकाढ्यः—**सवैया इकतीसा ॥ ताहिकों सुबु-  
द्धि वरै, रामा ताकी चाह करै, चंदन स्वरूप वहै  
सुजस तांहि श्ररचै ॥ सहज सुहाग पावै, सुरग स-  
मीप आवै, वार वार मुगतिरमनि तांहि चरचै ॥  
तांझके सरीरकों आदिंगत अरोग ताइ, मंगल करै  
मिताइ प्रीति करै परचै ॥ जोइ नर वहै सुचेत चित्त

( ३६० )

समता समेत, धरमके हेतकां सुखेत धन खरचै ॥७४॥

वद्वी पण दाननाज गुण कहे डे.

मंदाक्रांतावृत्तम् ॥ तस्यासन्ना रति रनुच-  
री कीर्तिरुल्कंण्ठिताश्रीः, स्निग्धा बुद्धिः प-  
रिचयपरा चक्रवर्तित्वश्चिः ॥ पाण्णा प्राप्ता  
त्रिदिवकमखा कामुकी मुक्तिसंप त्सप्तक्षे-  
त्र्यां वपति विपुलं वित्तबीजं निजं यः  
॥ ७० ॥ इति दानप्रक्रमः ॥ १७ ॥

अर्थः—( यः के० ) जे पुरुष, ( निजं के० ) पो-  
तानुं ( विपुलं के० ) प्रचुर एवुं ( वित्तबीजं के० )  
वित्तरूप बीजने ( सप्तक्षेत्र्यां के० ) सात क्षेत्रेष्वे  
विषे एटले १ जिनच्छुवन, २ जिनबिंब, ३ ज्ञानपुस्त-  
क, ४ चतुरविंध संघजक्ति, ते रूप सात क्षेत्रने वि-  
षे ( वपति के० ) वावे डे. एटले वापरे डे. ( तस्य  
के० ) ते पुरुषने ( रतिः के० ) समाधि ( आसन्ना  
के० ) समीप वर्तवावाली आय डे. द्वूकडी आय डे.  
तथा तेने ( कीर्तिः के० ) कीर्ति ते ( अनुचरी  
के० ) दासी आय डे. तथा ( श्रीः के० ) संपत्ति  
एटले धनधान्य हिरण्यरूप संपत्ति, ते मखवाने

ज्ञव प्रत्यक्ष धन्य जाणवां. ते वाक्य सांजली शेर हर्षवंत थयो. अन्यदा ते बेहुजण शेषनी साथें दे-रासरें गया, तिहां शेर फूल लइ जिनचुवनमां गयो अने ते बे सेवकमांहेलो एक वडेरो सेवक पांच कुंमांनां फूल लई नक्किपूर्वक जिनपूजा करवा लाग्यो, अने बीजो सेवक उपाश्रयें जइ व्याख्यान सांजलवा बेठो. उपवास करी बे पहोर पठी पोतानी पांतीमां आवेदुं धान्य पीरसावीने नक्किपूर्वक रुषीश्वरने वहोराव्युं, मनमांहे पोताने अत्यंत धन्यवाद आपतो रह्यो. एम अनुक्रमें शुचकृत्य करतां आयु पूर्ण थये बेहु जण मरण पामी कलिंगदेशनो शूर-सेन नामें कोइक राजा ढे, तेनी विजया नामें राणी-नी कूखें पुत्रपणें जइ उपना. तेमां एकनुं नाम अ-मरसेन अने बीजानुं नाम वीरसेन पाड्युं. बेहु पुत्र राजाने परमवृत्त ढे, अनुक्रमें सर्वकलाना पारंगामी थया. ते बेहु सौनाग्यनिधान सर्वदोकने अत्यंत प्रिय थयेला देखीने उरमान मातायें चिंतव्युं जे ज्यांसुधी ए बे पुत्र आहीं हशे, त्यांसुधी महारा पुत्रने राज्य मखशे नहीं.

एकदा राजा वसंतकीडाने अर्थे उद्याने गयो.

( ३४४ )

एवामां राणियें रात्रिने समयें पोतानुं शरीर नखें  
करी बलूँखुं, राजा घरें आव्यो, तेवारें राणीने पूँछुं  
के तहाँ शरीर कोणें बलूँखुं ? तेवारें राणी रोती-  
थकी स्त्रीचरित्र करती बोद्धी के हे स्वामी ! ए का-  
म सर्व तमारा कुमरोनुं जाणजो. ए बेहु मदोन्मत्त  
आवीने मने बलग्या माटें हवे मने माहरे पीयर  
मोकद्दो. ए तमारा मानीता पुत्र आगल महाराष्ट्री  
रही शकाय नहीं. एवी वात सांजबतांज राजायें  
चंडालने तेडावीने कहुं के शा बेहु कुपात्रोनां म-  
स्तक कापी आज रात्रें महारीपासें लावजे. ते  
सांजबी चंडाल बेहु कुमारोपासें गयो, अने राजा-  
नो हुकम कही संजलाव्यो. कुमर बोद्ध्या के रा-  
जानो आदेश अमारे प्रमाण रे, तुं सुखें ते  
काम कर. तेवारें चंडालें कहुं के तमें परदेश जणी  
जाऊ. ए हुं तमारा पुण्यथी कहुं बुं, तेणे तेमज कखुं,  
अने बेहु कुमर भाना जता रह्या. मनमां विचारवा  
लाग्या के आपणा कर्मनी वात, के जे आपणी उर-  
मान मातायें आपणने कूँडुं कबंक दीधुं. पाठलथी-  
माताने पण आनंद थयो.

हवे ते बेहु जाई पृथ्वीमां फरता फरता एक

अटवीमां रात्रिने समयें कोइ वृक्षनी नीचें विश्राम  
बेवामाटें रह्या. तिहाँ अमरसेन सूझ रह्यो अने  
वयरसेन जागतो बेरो. हवे ते वृक्षनी उपर सुडो  
सूडी बेढां डे, तेमां सूडी बोद्धी जे आ वृक्षनीचें  
बेढा डे, तेनुं आतिथ्य करीयें, तेवारें सूडो बोछ्यो  
के हे सूडी ! आपणें तिर्यच डैयें, माटे आपणाशी  
शुं उपकार आय ! ते वारें सूडी बोद्धी जो उद्यम  
करीयें तो सर्वसाध्य डे, अने जो तमें उद्यम करो,  
तो हुं पण सान्निध्य करुं ! तेने सूडे कह्युं के तुं कह्ये  
ते हुं उद्यम करुं ! सूडी बोद्धी के त्रिकूटपर्वत उपर  
एक सहकार डे, ते एकविद्याधरें मंत्रीने वाढ्यो डे,  
तेमां एक फल एबुं डे के तेनुं जळण करवाशी  
राज्य मले, अने बीजुं फल एबुं डे के तेनुं जळण  
करे, तेना मुखमांथी प्रतिदिन पांचशें पांचशें सो-  
नामोरो पडे. माटें ते सहकारनां फल लावीने ए  
बे जणने आपीयें तो परोणागत रुढी आय. एम  
विमासी ते कीरयुग्म उज्ज्ञुं, ते त्रिकूट पर्वतें जश  
सहकारनां फल लेइ आवीने कुमरोने आप्यां. प्र-  
जातें फल लश बेहुजण आगल चाल्या, तेमां अ-  
मरसेनें दातण कीधां. पठीराज्य पदवी मलवानुं फल

दीधुं. तेणे जहाण कीधुं. फलनो उपचार कह्यो. बी-  
जुं फल बीजे दिवसें दातण करी शूरसेने जहाण  
कीधुं. तेवारें तेना मुख मांथी पांचशें दिनारो पडी.  
ते धनथी आनंद पाम्या. पठी चालतां चालतां सा-  
तमे दिवसें कंचनपुरनगरें आव्या, तिहां नगरनी वा-  
हेर वृक्षनी नीचें महोटा जाइने बेसाडी वयरसेन  
जोजनबेवा सारु नगरमां आव्यो, ते अवसरें ते  
नगरनो राजा अपुत्रीयो मरण पाम्यो ठे तेवारें सर्व  
लोकोयें पंचदिव्यनी अधिवासना कीधी, उद्यान-  
मांहे पंचदिव्यथी अमरसेनने राज्य मद्यु. तेने  
हाथीउपर बेसाडी नगरमांहे बाव्या. राज्यपाटें  
स्थाप्यो. पठी जाइनी शोध करी पण किहांइ दीरो  
नहीं, अने वयरसेन जाइने राज्य मद्युं सांचबीने  
कोइ गणिकाने घेर जइ रह्यो. तिहां प्रतिदिवस पां-  
चशें सोनामोर मुखमांथी निकले, ते वेश्याने आपे,  
अने निश्चिंतपणे वेश्यानीसाथें विषयिक सुख जोगवे.

एकदा वृक्ष अक्कायें पोतानी पुत्रीने पूँछुं के ए  
तहारो जर्तार कोइ पण धंधो कस्याविनाक्यांथी ऊँव्य  
लइ आवे ठे ? तेवारें वेश्यायें वयरसेनने पूँछुं. वय-  
रसेनें स्त्रीनो मर्म अजाणते थके सर्व पोतानी साचे-

( ३७ )

साची हकीगत कही. तेप्रमाणें वेश्यायें अक्कानी आ-  
गढ़ कहुं. तेवारें अक्कायें औषध आपी वसन करा-  
व्युं, तेमांशी गोटबी कहाढी दीधी, प्रजातें वयर-  
सेन दातण करी खोंखारो करवा लाग्यो पण मुख-  
मांशी सोनामोर पडी नही, पठी ऊव्यहीन जा-  
णी अक्कायें घरमांशी बाहेर कहाढी मूक्यो, तेवारें  
चिंतातुर थको वनमां वृक्षनी नीचें जश्व बेगो.

तिहाँ रात्रिनें समयें चार चोरने पोतपोतामां  
वाद करता देखी कुमर पण चोरनीपेरें चोर थइ-  
ने तेनीसाथें जश्व मल्यो अने ते चोरने विवाद  
करवानो व्यतिकर पूऱ्यो, तेवारें चोर बोख्या के  
अमें बार वर्षपर्यंत महोटो प्रयास करीने तेमां ए-  
क चांखडीनो जोडो, बीजो दंकु, अने त्रीजी कंथा,  
ए त्रण वस्तु एक सिद्धपुरुष पासेंशी पास्यार्डेय. ते  
सांचबी कुमर बोख्या के ए निर्जीव वस्तुमाटें तमें  
आटबोक्षेश शावास्ते करो भो ? एमाँ डे शुं ? ते-  
वारें चोर बोख्या के ए वस्तुमां महोटो प्रज्ञाव डे,  
कारण के ते सिद्ध पुरुषें ड महिनापर्यंत देवता  
आराध्यो, त्यारें तेणे संतुष्ट थइने आकाशगामिनी  
विद्यामटे चांखडी दीधी, अने ए दंकु डे ते सर्व श-

## ( इशण )

स्त्रनो निवारण करनार डे, तथा त्रीजी कंथा जे डे, ते दिनदिनप्रत्यें पांचशें सोनामोरनी आपनारी डे, माटें ए त्रणे वस्तुनी अमने वहेंचण करी आप तो अमारो विवाद मटी जाय. तेने कुमरें कल्युं के तमें दूर जइ बेसो. हुं विचार करीने तमोने वहेंची आपुं. पडी कुमरें लब्ध लक्ष्मीनी पेरें कंथा पहेरी अने दंक हातमां धारण कस्यो. तथा चांखडी पगमां पहेरीने आकाशें उडी गयो. पाठ्लशी चोर विलखा अया थका अन्यत्र स्थानके जता रह्या.

कुमर पण देशांतर जइ पांच दिवसें पाडो ते-हीज गाममां आव्यो, तिहाँ दररोज पांचसो सो-नामोर तेने कंथा आपे, ते लइ वाटमां विलास क-रतो फरे. तेने गणिकायें दीठो, त्यारें तेनीपासें आवी पोतानो अपराध खमावी अक्कायें तेने पोताने घेर आण्यो. कुमर पण गणिकानो विश्वास न करतोकंथा-ने कोइव्यवहारीयाने घेर मूकी पोते वेश्याने घरे रह्यो थको तेनीसाथे विषय संबंधी सुखविलास नोगवे डे.

एकदा वळी गणिकायें अक्काना कहेवाथी वयरसेन कुमरने पाडुकानुं वृत्तांत पूऱ्युं, तेनो कुमरें खरेखरो हारद कह्यो. तेणें जई अक्काने कह्यो. अक्का युक्ति क-

( ३४४ )

री व्यरसेनप्रत्यें कहेवा लागी के हे वत्स ! ताहा-  
रा वियोगथी निरंतर महारी पुत्री मूर्ढा पामती,  
तेवारें में समुद्रमध्यें जे यक्षनुं देहरुं ठे, तेनी यात्रा  
करवानी प्रतिज्ञा कीधेदी ठे, पण तिहाँ जवाइ  
शकातुं नथी. ए महोदुं संकट ठे. ते वात कुमरें सत्य  
मानीने अक्काने साथें जई चांखडी पहेरी यक्षना  
मंदिरें जई छारआगल चांखडी उतारी मांहे गयो.  
एटलामां पाडलथी चांखडी उपानीने अक्का पोताने  
घेर जती रही. कुमर आवी जूवे ठे, तो चांखडी  
अने अक्का बेहुं दीरां नही. तेवारें अक्कानुं कर्तव्य जा-  
णी विलखो थयो. सर्व स्थलें अक्काने जोई पण क्यांही  
दीरी नही. तेवारें कुमर त्यांज बेटउपर अटकी रह्यो.

एवामां एक विद्याधर तिहाँ आव्यो. तेणे कुम-  
रने पूठयुं के तुं क्यांथी आव्यो ठो ? कुमरें तेने  
सर्व वृत्तांत कह्युं. विद्याधर बोखो के तुं चिंता म-  
कर. हुं तुजने ताहरे स्थानके पहोंचाडीश ! ज्यां-  
सुधी हुं यक्षनी यात्रा करि आबुं, त्यांसुधी तुं इहाँ  
रहेजे. अने आ मोदकप्रमुख आपुं बुं, ते तुं ऊ-  
ख लागे तेवारें खाजे. पण पेला वृक्षनी नीचें जईश  
नहीं ? एम कहि विद्याधर यक्षने देहरे गयो.

( ३३० )

पाठ्यश्री कुमरें जई ते वृक्षनुं फूल तोडी सूंध्युं,  
एटवे तरतज ते गधेडो बनी गयो, जे महोटानुं  
कह्युं न करे, ते दुःखी थाय.

पन्नर दिवसने अंतरें ते विद्याधर आव्यो, तेणे  
कुमरने गर्द्जाकारें दीर्घो, तेवारें बीजा वृक्षनुं फूल  
सूंधाडीने फरी स्वाज्ञाविक जेवो हतो तेवो मनुष्य  
कस्यो. कुमरें ते बेहु वृक्षनां फूल लई पोतानी गां-  
रें बांध्यां, पढी विद्याधरें तेने तिहांशी उपाडीने  
कांचनपुरें जइ मूक्यो. फरी अक्कायें दीर्घो, तेवारें  
कहेवा लागी के हे स्वामी ! तमें केवी रीतें आव्या ?  
कुमरें कह्युं के हुं देवताना प्रज्ञावशी अहीं आव्यो  
दुं. तेने वढी पण अक्का कपट वचनें करी घेर तेडी  
आवी अने कहेवा लागी के हे स्वामी ! तमें देह-  
रामांहे गया, एटलामां कोइएक देवतायें आवीने  
चांखडीसहित मुजने उपाडीने समुद्रमां नाखी  
दीधी. हुं महोटा कष्टे मरती मरती घेर आवी दुं.  
कुमर बोल्यो के महारी उपर यहें तुष्टमान यझने  
घण्ण ऊव्य मुजने आप्युं. तथा वढी बे औषधियो  
आपी, तेमां एक औषधिना योगशी नवयौवनपणुं  
प्राप्त थाय, ते सांजली अक्का बोली जो महारी ऊ-

पर उपकार करी नवयौवनपणुं मने बकसो, तो मने सर्वनी उशीयाद, तावेदारी टद्दी जाय. तेने कुमरें तत्काल एक फूल सूंघाढ्युं जेथी अक्का तत्काल रासन्नी थई गई, तेनी उपर कुमर चढी बेगो अने हाथमां प्रवोक्त दंम लई ते रासन्नीने नगरमांहे सर्वत्र फेरववा लाग्यो. दंमना प्रहार, मांथामां मारीने आकुलव्याकुल करी. ते जोइ सर्व गणिकाजर्यें एकत्र मद्दी राजाश्चागद जइ फरियाद करी. राजायें तरत कुमरने पकडवामाटें घणा शीपाइयो मोकद्या, ते सर्वने दंमना योगद्धी कुमरें जीती दीधा, ते वात सेवकोयें जइने राजानी आगद कही, तेवारें राजायें पोतानुं सर्व सैन्य तेने पकडवामाटें मोकद्युं, तेने पण कुमरें जीती दीधुं.

पठी राजायें अनुमानथी उलख्यो जे आ महारो जाइ रे ? तेवारें तेने जइ पगें लाग्यो. ते जोई सर्व लोकें जाएयुं जे आ तो राजानो जाइ रे. एम दीर्घाथी सर्व हर्षवंत थया अने अक्काना कपटनी वात सर्व तेना मुखथी सांचद्दी सहु कोई कहेवा लाग्यां के आ कूटणी अत्यंत लोज करवा गई तो रासन्नी थई. पठी कुमरें गोटद्दी तथा चांखडी प्र-

मुख जे कांश पोतानी वस्तुउ तेणे दीधेली हती, ते तेनी पासेंथी पाठी बइ शिखामण आपी. रासन्नी टाली दीधी अने स्वाज्ञाविक रूप करी दीधुं.

कुमरोयें केटबाक कालपर्यंत तिहाँज राजन्नो-गव्युं. पठी पितायें तेडावीने बेहु पुत्रोने जुदा जु-दा देशोनां राज्य आप्यां, ते बेहु जाइजयें सलाह-संपर्थी जोगव्यां. बेहु जाइसाथें रह्या, वृद्धावस्थायें ज्ञानीना उपदेशथी वैराग्य पामी दीक्षा लई आयु पूरण अये मरण पामी देवलोकें गया ॥ इति दान पूजाविषय अमरसेन वीरसेन कथा संपूर्ण ॥ ७० ॥

हवे तपनो उपदेश करे डे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तत्रयम् ॥ यत्पूर्वार्जितक-  
र्मशैलकुलिशं यत्कामदावानल, ज्वालाजा-  
लजलं यज्ञग्रकरणग्रामाहिमंत्राद्वरम् ॥ य-  
त्प्रत्यूहतमः समूहदिवसं यद्विभिलहमील-  
ता, मूलं तद्विविधं यथाविधि तपः कुर्वीत  
वीतस्पृहः ॥ ७१ ॥

अर्थः—( वीतस्पृहः के० ) गई डे स्पृहा जेने एवो भतो एटबे नीयाणादिकें रहित भतो ( तद्विविधं

( ३३३ )

केण ) ते नाना प्रकारना ( तपः केण ) तपने ( यथा विधि केण ) शास्त्रोक्तविधियें करी ( कुर्वीत केण ) करे, ते केहबुं तप ढे ? तो के ( यत्पूर्वार्जितकर्मशैलकुलिशं केण ) जे पूर्वजवें उपार्जन करेलां कर्मों तेज शैल जे पर्वत तेनेविषे वज्रसमान ढे. जेम पर्वतने ढेदवामां वज्र बखवान् होय ढे, तेम जाणबुं. अर्थात् कर्मरूप पर्वत तेने ढेदवामां वज्रसमान ढे वद्वी ( यत् केण ) जे तप, ( कामदावानबज्वालाजालजलं केण ) कामरूप जे दावानल तेनी ज्वालानी जे जाल तेनो जे समूह तेनेविषे जल समान ढे, तथा ( यत् केण ) जे तप, ( उग्रकरणग्रामाहिमंत्राद्वारं केण ) दारुण एवो जे इंड्रियसमूह ते रूप अहि जे सर्प तेने मंत्राद्वारसमान ढे, तथा ( यत् केण ) जे तप, ( प्रत्यूहतमः समूहदिवसं केण ) विघ्नरूप जे अंधकारसमूह तेनेविषे दिवससमान ढे, तथा ( यत् केण ) जे तप, ( लब्धिलक्ष्मीलतामूदं केण ) संपत् तेज लता तेना उत्पन्न अयेला मूलसमान ढे, माटें ते तप सर्व जनोयें करबुं ॥ ८१ ॥

टीकाः—अथ तपस उपदेशद्वारमाह ॥ यदिति ॥  
वीता गता स्पृहा वांगा यस्य स वीतस्पृहः सन् वांगा

( ३४ )

निदानादिरहितः सन् तद्विविधं तपः कुर्वीत कुर्यात् । तत्किं ? यत्तपः पूर्वे ज्ञवेऽर्जितानि उपार्जितानि यानि कर्मणि तान्येव शैलाः पठ्वतास्तेषु कुलिशं वज्रं । तेषां ठेदकत्वात् । पुनर्यत्तपः कामएव दावानबो दवाग्निस्तस्य ज्वालानां जालः समूहस्तत्र जलं । तद्विनाशकत्वात् । पुनर्यत्तपः उग्रो दारुणो यः करणानां इंड्रियाणां आमः समूहः सएवाहिः सर्पस्तस्य मंत्राद्वारं सर्पमंत्रस्य बीजं । पुनर्यत्तपः प्रत्यूहा एव विज्ञाएव तमसोऽधकारस्य समूहस्य तत्र दिवसं दिनं । तन्नाशकत्वात् । पुनर्यत्तपो लब्धिलक्ष्मी संपदेवलता वल्ली तस्याः मूलं उत्पादनकंदं । तद्विविधं नानाप्रकारं यथाविधि तपः कुर्वीत ॥७१॥

ज्ञाषाकाव्यः—ठप्पयब्बंद ॥ जो पूरवकृत कर्म, पिंकु गिरिदलन वज्रधर ॥ जो मनमथ दवज्वाल, माल संहरन मेघजर ॥ जो प्रचंक इंड्रिय चुयंग, थंजन सुमंत्र वर ॥ जो विज्ञाव संतमस पुंज, खंकन प्रज्ञातकर ॥ जो लब्धि वेलि उपजत घन, तासु मूल दिढता सहित ॥ सो सुतप शंग बहु विधि डुविध, करहिं विबुध वांगरहित ॥ ७१ ॥

वद्वी पण तपनो महिमा कहे डे.

यस्माद्विन्नपरंपरा विघटते दास्यं सुराः कुर्वते, कामः शाम्यति दाम्यतांजियगणः कल्याणमुत्सर्पति ॥ उन्मीलंति महर्घयः कलयति ध्वंसं च यः कर्मणाम्, स्वाधीनं त्रिदिवं शिवं च नजति श्लाघ्यं तपस्तन्न किम् ॥ ७७ ॥

अर्थः—( तत् केष्ट ) ते ( तपः केष्ट ) तप, ( किं केष्ट ) शुं ( श्लाघ्यं केष्ट ) वखाणवा योग्य, ( न केष्ट ) नशी ? ना वखाणवायोग्य डेज. केम श्लाघ्य डे ? तो के ( यस्मात् केष्ट ) जे तपथकी ( विन्नपरंपरा केष्ट ) कष्टोनी पंक्ति ( विघटते केष्ट ) नाश पामे डे. तथा जे तपथकी ( सुराः केष्ट ) देवताऊ, ( दास्यं केष्ट ) दासपणाने ( कुर्वते केष्ट ) करे डे. वद्वी जे तपथकी ( कामः केष्ट ) काम ( शाम्यति केष्ट ) शांति पामे डे. वद्वी जे तपथकी ( इंड्रियगणः केष्ट ) इंड्रियोनो गण, ( दाम्यति केष्ट ) दमने प्राप्त आय डे. वद्वी जे तपथकी ( कल्याणं केष्ट ) कल्याण जे डे, ते ( उत्सर्पति केष्ट ) प्रसरे डे. वद्वी जे तप अकी

( ३३६ )

( महर्द्धयः केष्ट ) तीर्थकरादिसंपत्तियो, ( उन्मीदंति केष्ट ) विकासने प्राप्त आय डे. वद्दी जे तपथकी ( कर्मणां केष्ट ) ज्ञानावरणीयादिकर्मनो ( चयः केष्ट ) समूह, ( ध्वंसं केष्ट ) नाशने ( कलयति केष्ट ) पामे डे. वद्दी जे तपथकी, ( त्रिदिवं केष्ट ) स्वर्ग अने ( जज्ञति केष्ट ) जजे डे ( च केष्ट ) वद्दी ( शिवं केष्ट ) मोह ( स्वाधीनं केष्ट ) स्वाधीन जेम होय तेम आयडे. माटें ते तप वखाणवालायक नशी शुं? अर्थात् वखाणवालायकज डे ॥ ७२ ॥

टीकाः—तपःप्रज्ञावमाह ॥ यस्मादिति ॥ तत्पः किं श्लाघ्यं न प्रशस्यं न ? अपि तु श्लाघ्यमेव त लिं ? यस्मात्तपसो विन्नपरंपरा कष्टश्रेणिर्विघटते विलयं याति । पुनः सुरादेवादास्यं दासत्वं कुर्वते । पुनर्यस्मात्कामः शास्यति उपशमं याति । पुनः इं-ड्रियगणः पंचेंड्रियसमूहो दास्यति दमं प्राप्नोति । पुनर्यस्मात्तपसः कछाणं श्रेयउत्सर्पति प्रसरति । पुनर्यस्मान्महर्द्धयस्तीर्थकरादिसंपदः उन्मीदंति वि-कसंति । पुनर्यस्मात् कर्मणां ज्ञानावरणीयादीनां च-यः समूहो ध्वंसं नाशं कलयति प्रयाति । पुनर्यस्मा-

( ३३७ )

त्तपसः त्रिदिवं स्वर्गः च पुनः शिवं मोहः स्वाधीनं  
स्वायत्तं स्यात्तपः किं ऋषाध्यं न स्यात् ? ॥ ४७ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—सवैय्या इकतीसा ॥ जाके आदरत  
महारिद्धिसों मिलापहोइ, मदन अव्याप होइ, कर्म  
वन दाहियें ॥ विघन विनास होइ गिरवान दास होइ,  
ग्यानको प्रकास होइ, ज्ञौं समुद्ध थाहियें ॥ देव पद  
खेल होइ, मंगलसों मेल होइ, इंद्रिनकी जेल होइ,  
मोखपंथ गाहियें ॥ जाकी ऐसी महिमा, प्रगट कहै  
कौरपाल, तिहुंखोक तिहुं काल सो तप सराहियें ॥ ४७ ॥

कांतारं न यथेतरोज्वलयितुं दद्वोदवाग्निंवि-  
ना, दावाग्निं न यथेतरः शमयितुं शक्तोवि-  
नांज्ञोधरम् ॥ निषणातः पवनं विना निर-  
सितुं नान्योयथांज्ञोधरम्, कर्मांघं तपसा-  
विना किमपरं हर्तुं समर्थस्तथा ॥ ४८ ॥

अर्थः—(यथा केण) जेम ( कांतारं केण ) वनने  
ज्वलयितुं केण ) बालवाने ( दवाग्निंविना केण ) दा-  
वाग्निविना ( इतरः केण ) बीजो ( दद्वः केण ) मा-  
ह्यो ( न केण ) नथी. वली ते ( दावाग्निं केण ) दा-  
वाग्निने ( शमयितुं केण ) शमन करवाने ( अंज्ञोध-

रंविना के० ) मेघ विना ( इतरः के० ) बीजो ( श-  
क्तः के० ) समर्थ ( न के० ) नशी. वली ( यथा  
के० ) जेम ( अंन्नोधरं के० ) मेघने ( निरसितुं के० )  
टालवाने ( पवनंविना के० ) पवनविना ( अन्यः के० )  
बीजो ( न के० ) न ( निष्णातः के० ) निपुण होय.  
( तथा के० ) तेम ( कर्मौद्यं के० ) कर्मसमूहने  
( हर्तुं के० ) डेदवाने ( तपसाविना के० ) तपविना  
( अपरं के० ) बीजो ( किं के० ) शुं ( समर्थः के० )  
समर्थ होय ? ना होयज नहिं ॥७३ ॥

टीका:-अन्यश्च ॥ कांतारभिति ॥ यथा कांतारं  
वनं ज्वलयितुं दावाग्निं विना इतरोऽन्यो दक्षोन ।  
पुनर्यथा दावाग्निं शमयितुं विध्यापयितुं अंन्नोधरं  
मेघं विनाऽपरः शक्तो न समर्थो न । पुनर्यथाऽन्नोधरं  
मेघं निरसितुं दूरीकर्तुं पवनं विनाऽन्यो न निष्णातो  
न निपुणः । तथैव कर्मौद्यं कर्मसमूहं हंतुं डेतुं तप-  
सा विनाऽन्यत्किं समर्थ ? अपितु न किमपि । किंतु  
तप एव कर्माणि हर्तुं समर्थः ॥ ७३ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—सवैया तेष्वासा ॥ ज्यौं वर कानन  
दाहनकों दव, पावकसो नहिं दूरसो दीसै ॥ ज्यौं  
दव आग बुझे न ततष्वन, जो न अखंकित मेघ व-

रीसै ॥ ज्यौं प्रगटै नहिं जौं लगि मारुत, तौं लगि  
घोरघटा नहि खीसै ॥ त्यौं घटमें तपवज्र विना दृढ़,  
कर्म कुलाचल और न पीसै ॥ ७३ ॥

बद्धी पण तपनो महिमा कहे डे. स्वर्गधरावृत्तम्  
॥ संतोषस्थूलमूलः प्रशमपरिकरः स्कंधबं-  
ध प्रपञ्चः, पंचाद्वीरोधशाखः स्फुरद्भयदलः  
( स्फुटविनयदलः ) शीलसंपत्रवालः ॥ श्र-  
धांजः पूरसेकाद्विपुलकुलबद्वैश्वर्यसौंदर्य-  
न्नोगः, स्वर्गादिप्रातिपुष्पः शिवसुखफलदः  
स्यात्तपः पादपोऽयम् ॥ ७४ ॥ इति तपः  
प्रक्रमः ॥ १४ ॥

अर्थः—( अयं केण ) आ ( तपःपादपः केण )  
तपरूप जे वृक्ष, ते ( शिवसुखफलदः केण ) शिव-  
सुखना फलने देनारो ( स्यात् केण ) होय. ते के-  
हवो तपःपादप डे ? तो के ( संतोषस्थूलमूलः केण )  
संतोष जे मूर्ढात्याग, तेज डे स्थूलमूल जेनुं एवो  
तथा ( प्रशमपरिकरः केण ) द्वामा तेज डे परिकर  
जेने एवो तथा ( स्कंधबंधप्रपञ्चः केण ) आचारा-  
दि जे श्रुतस्कंधरूप, तेनी बंध जे रचना ते रूप डे

विस्तार जेनो एवो तथा ( पंचाक्षीरोधशाखः के० )  
 पंचेंद्रियनो जे रोध तेरूप ढे शाखाते जेमां एवो  
 तथा ( स्फुरदञ्चयदलः के० ) देदीप्यमान एवुं जे  
 अन्नयदान ते रूप ढे पत्र जेमां एवो अथवा ( स्फु-  
 टविनयदलः ) एवो पाठ होय तो स्फुट ढे विनय-  
 रूप पत्र जेमां एवो तथा ( शीलसंपत्प्रवालः के० )  
 ब्रह्मचर्यव्रतरूप ढे प्रवाल एटले नवपद्मव जेमां एवो  
 तथा ( श्रद्धांजःपूरसेकात् के० ) श्रद्धारूप जलनो जे  
 पूर तेनुं जे सिंचबुं तेथकी ( विपुलकुलबलैश्वर्यसौं-  
 दर्यज्ञोगः के० ) विस्तीर्ण एवां कुल, बल, ऐश्वर्य,  
 अने सौंदर्य ते रूप ढे ज्ञोग जेने एवो ढे. अथवा  
 विपुलकुलबलैश्वर्य रूप जे विस्तार तेनो ढे ज्ञोग जे-  
 मां एवो ढे तथा ( स्वर्गादिप्राप्तिपुष्पः के० ) स्वर्गा-  
 दि जे देवलोक, वैवेयक, अनुत्तरविमान, तेनी जे  
 प्राप्ति तेज ढे पुष्प जेमां एवो जे तपोवृक्ष, ते शिव-  
 सुखफलने आपे ढे ॥ ७४ ॥ आंहिं वसुदेव हरिके-  
 शीवलनी कथानो दृष्टांत ग्रहण करवो. ॥ १४ ॥

टीकाः—पुनराह ॥ संतोषश्चिति ॥ अयं तपएव  
 पादपो वृक्षः शिवसुखफलदः स्यात् शिवसुखान्येव  
 फलानि ददातीति मोहफलदाता स्यात् । किंभूत-

स्तपःपादप ? संतोषोमूर्ढात्यागएव स्थूलं पुष्टं मूलं  
 यस्य स । पुनः किञ्चूतः ? प्रशमक्षमा एव परिकरः  
 परिवारो यस्य स । पुनः किञ्चूतः ? स्कंधा आचारां  
 गादि श्रुतस्कंधास्तेषां बंधो रचना एव प्रपञ्चो विस्ता-  
 रो यस्य स । पुनः किञ्चूतः ? पंचानां अह्माणां इं-  
 द्रियाणां समाहारः पंचाही । पंचाह्याः रोध एव  
 शाखा यस्य स । पुनः किञ्चूतः ? स्फुरत् देदीप्यमानं  
 अज्ञयं अज्ञयदानमेव दबत्त्वं यस्य स । अथवा स्फुट-  
 विनयदबः स्फुटानि प्रकटानि विनयरूपाणि दबानि  
 पत्राणि यस्य स । पुनः किञ्चूतः ? शील संपदेव ब्रह्मत्र-  
 तमेव प्रवाला नवपद्मवायस्य स । पुनः किञ्चूतः ?  
 श्रद्धारुचिः सैवांज्जः पानीयं तस्याः पूरस्तेन सेकः सिं-  
 चनं तस्मात् विपुलानि विस्तीर्णानि कुलबलैश्वर्य-  
 सौंदर्याण्येव ज्ञोगोयस्यस । अथवा विपुलकुलबलै-  
 श्वर्यमेव ज्ञोगो विस्तारोयस्य स । पुनः किञ्चूतः ?  
 स्वर्गादीनां देवलोकग्रैवेयकानुत्तरविमानानां प्राप्ति-  
 रेव पुष्पाणि यस्य स । ईदृशस्तपएव पादपोवृद्धः स  
 शिवसुखमेव फलं ददाति ॥ ७४ ॥ अत्रनंदिषेण व-  
 सुदेव हरिकेशीबलकथा ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्या-

रुयायां हर्षकीर्तिज्ञिः ॥ सूरिज्ञिर्विहितायां तु, तप-  
सः प्रक्रमोऽजनि ॥ इति तपःप्रक्रमः ॥ १५ ॥

**ज्ञाषाकाव्यः**—ठप्पय हंद ॥ सुदिह मूल संतोष, प्र-  
सम गुन प्रबल पेढ ध्रुव ॥ पंचाचार सु साख, सीख  
संपति प्रवाल हुव ॥ अन्नय अंग दल पुंज, देव पद  
पुहप सुमंसित ॥ सुकृत ज्ञारविस्तार, ज्ञाव सिव  
सुफल अखंसित ॥ परतीति धार जल सिंचि किय,  
अति उतंग दिन दिन पुषित ॥ जयवंत जगत यह  
सुतप तरु, मुनि विहंग सेवहिं सुखित ॥ ७४ ॥

**कथा:**—तप उपर नंदीषेण मुनिनो दृष्टांत जाण-  
वो. जेणे बार हजार वर्ष तपस्या करी अंत्यावस्था-  
यें अणसण लश्च पोतानुं दौर्जाग्य संज्ञारी तपना  
प्रज्ञावशी आवते जवें स्त्रीवल्लज आउं ! एवुं नीया-  
एुं बांधी काल करी देवलोके गयो. तिहांशी च्य-  
वीने समुद्रविजयनो लघुज्ञाश वसुदेव नामें थयो,  
तिहां गतजन्मना तपःप्रज्ञावशी ७२००० स्त्रीनुं पा-  
णिग्रहण कर्युं. एवी रीतें तपना फलशी विशेष सु-  
ख ज्ञोगवी यावत् अंत्यावस्थायें शुग्ज ज्ञावमां रही  
काल करी देवलोके पहोतो, माटें सर्व ज्ञव्यजीवें

( ३४३ )

श्रीनंदीषेणनी पेरें क्रमा सहित तप करतुं ॥ इति  
तप उपर नंदिषेणमुनी कथा ॥ ७४ ॥

हवे शुन्नज्ञावनो उपदेश करेडे.

शार्दूलविक्रीडितवृत्तद्वयम् ॥ नीरागे तरु-  
णीकटाहित मिव त्यागव्यपेतप्रज्ञौ, सेवा-  
कष्टमिवो परोपणमिवांज्ञो जन्मनामश्मनि ॥  
विष्वग्वर्षमिवोषरक्षितिले दानार्हदर्चात-  
पः, स्वाध्यायाध्ययनादि निःफलमनुष्ठानं  
विना ज्ञावनाम् ॥ ७५ ॥

अर्थः—( ज्ञावनां विना केऽ ) एक शुन्नज्ञावना-  
विना ( दानार्हदर्चा केऽ ) सुपात्र दान, जिनपूजन,  
अने ( तपःस्वाध्यायाध्ययनादि केऽ ) तप, स्वाध्यायनुं  
अध्ययन तेज डे आदिमां जेने एतुं ( अनुष्ठानं केऽ )  
अनुष्ठान ते सर्व ( निःफलं केऽ ) निष्फल थाय डे.  
केनी पेरें ? तो के ( नीरागे केऽ ) रागरहित एवा  
पुरुषने विषे ( तरुणीकटाहितमिव केऽ ) युवती-  
कटाक्ष विक्षेपज जेम, एटले नीरागी पुरुषने जेम  
स्त्रीना कटाक्षनो विक्षेप व्यर्थ थाय डे. तेम आहिं

पण जाणवुं. वक्ती केनी पेरें ? तो के ( त्यागव्यपे-  
तप्रन्नौ के० ) दान रहित स्वामीनेविषे ( सेवाकष्टेश्व  
के० ) सेवाकष्ट जे डे तेज जेम. एटले दान न आ-  
पनार पुरुषनी पासें सेवाकष्ट ते जेम व्यर्थ आय डे,  
तेम जाणवुं. वक्ती केनी पेरें ? तो के ( अश्मनि  
के० ) पाषाणनेविषे ( अंचोजन्मनां के० ) कमलो-  
नुं ( उपरोपणमिव के० ) वाववुंज जेम. वक्ती केनी  
पेरें ? तो के ( उषरद्धितितदे के० ) क्षारचूमिने वि-  
षे अथवा पर्वतने विषे ( विष्वग्वर्षमिव के० ) चो-  
तरफ मेघनी वृष्टिज जेम. एटले क्षारचूमिने विषे  
अथवा पर्वतने विषे चारे तरफ पडनारो मेघ जेम  
निःफल आय तेम ज्ञावनाविना सर्व अनुष्टान  
निष्फल आय ॥ ७५ ॥

टीकाः—ज्ञावोपदेशमाह ॥ नीरागे इति ॥ ज्ञाव-  
नां शुञ्जनावं विना दानार्हदर्चा तपः स्वाध्यायाध्य-  
यनादि सर्व अनुष्टानं क्रियाकरणं निःफलं स्यात् ।  
दानं च अर्हदर्चा देवजिनपूजा च तपश्च स्वाध्याय-  
श्च ते आदौ यस्य तत् दानजिनपूजातपः सिद्धांत-  
पठनादिकं ज्ञावं विना निःफलं । किमिव ? नीरागे  
पुरुषे तरुणीकटाद्धितमिव युवतीकटाक्षविक्षेपणमि-

( ३४५ )

व । यथा नीरागे तरुणीकटाक्षा निःफलाः । पुनः किमिव ? त्यागव्यपेतप्रज्ञौ । दानरहिते कृपणे स्वामिनि सेवाकष्टं निःफलं । पुनः किमिव ? अशमनी पाषाणे आज्ञो-जन्मनां कमलानां उपरोपणं वापनं इव । यथा पा-षाणोपरि कमलवापनं निःफलं । पुनः किमिव ? उ-षरक्रिति तद्वे उषरञ्जूमौ विष्वग्वर्षमिव यथोषरञ्जू-मौ पर्वते मेघवर्षणं निःफलं ॥ तथा शुनचावनां विना सर्वा क्रिया निःफला ॥ ७५ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—ज्यौं नीराग पुरुषके सन्मुख, पुर-कामिनि कटाड करि ऊठी ॥ ज्यौं धन त्याग रहि-त प्रञ्जु सेवत, ऊसरमें वरिषा जिम वूठी ॥ ज्यौं शिखमांहि कमलको बोवन, पवन पकरि ज्यौं बं-धिय मूठि ॥ ए कर तूति होइ जिम निःफल, त्यौं बिनु ज्ञाव क्रिया सब छूठी ॥ ७५ ॥

वद्वी पण शुनचावोपदेश करे ढे.

सर्वं झीप्सति पुण्यमीप्सति दया धित्सत्य-घं मित्सति, क्रोधं दित्सति दानशीलतपसां साफल्यमादित्सति ॥ कछ्याणोपचयं चिकी-

र्षति ज्ञवांज्ञोधेस्तटं लिप्सते, मुक्तिस्थीं प-  
रिरिप्सते यदि जनस्तज्ञावयेज्ञावनाम् ॥७६॥

अर्थः—( यदि के० ) जो ( जनः के० ) मनुष्य,  
( सर्व के० ) सर्व वस्तुने ( इप्सति के० ) जाण-  
वाने इच्छे थे, जो वक्ती ( पुण्य के० ) धर्मने ( ईप्स-  
ति के० ) इच्छे थे, जो वक्ती ( दया के० ) दयाने  
( धित्सति के० ) धारण करवाने इच्छे थे, जो वक्ती  
( अघं के० ) पापने ( मित्सति के० ) मानवाने इ-  
च्छे थे, जो वक्ती ( क्रोधं के० ) क्रोधने ( दित्सति  
के० ) खंडन करवाने इच्छे थे, जो वक्ती ( दानशील-  
तपसां के० ) दान, शील, तपना ( साफल्यं के० )  
साफल्यने ( आदित्सति के० ) ग्रहण करवाने इच्छे  
थे, जो वक्ती ( कद्याणोपचयं के० ) कद्याणसमूह-  
ने ( चिकीर्षति के० ) करवाने इच्छे थे, जो वक्ती  
( ज्ञवांज्ञोधेस्तटं के० ) ज्ञव जे संसार तेरूप जे  
समुद्र तेना तटने ( लिप्सते के० ) पामवाने इच्छे  
थे, जो वक्ती ( मुक्तिस्थीं के० ) मुक्तिरूप स्थीने ( प-  
रिरिप्सते के० ) आलिंगन करवाने इच्छे थे ( तत्  
के० ) तो ( ज्ञावनां के० ) शुभज्ञावनाने ( ज्ञावयेत्  
के० ) ज्ञावना करे ॥ ७६ ॥

टीकाः—पुनराह ॥ सवर्वेति ॥ यदि जनो लोकः  
 सर्वं वस्तु इष्टसति इति इति । पुनर्यदि जनः पु-  
 ण्यं धर्मं ईष्टसति वांछति । पुनर्यदि जनोदयां कृपां  
 धित्सति धर्तुमिष्टति । पुनर्यदि अघं पापं मित्सति  
 मातुं इत्ति । पुनर्यदि क्रोधं दित्सति खंमितुं इत्ति ।  
 पुनर्यदि दानशीलतपसां साफल्यं सफलत्वं  
 आदित्सति इहीतुमिष्टति । पुनर्यदि कद्याणोपच-  
 यं कुशलं वृद्धिं चिकीर्षति कर्तुमिष्टति । पुनर्यदि  
 ज्ञवांज्ञोधेः संसारसमुद्गस्य तटं पारं बिष्ट ते लब्धुं  
 मिष्टति । पुनर्यदिमुक्तिस्थीं सिद्धिरमणीं परिरिष्टते  
 आलिंगितुं इत्ति जनस्तदा ज्ञावनां शुन्नज्ञावं ज्ञाव-  
 येत् कुर्यादित्यर्थः ॥ ८६ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—सवैय्या इकतीसा ॥ पूरव करम  
 दहै, सरवझ पद लहै, गहै पुण्यपंथ फिरि पापमें न  
 आवनां ॥ करुनाकी कला जागै, कठीन कषाय जा-  
 गै, लागै दान सील तप सफल सुहावनां ॥ पावै ज-  
 वसिंधु तट खोलै मोख छारपट, सर्म साधि धर्म-  
 की धरामै करै धावनां ॥ एते सब काज करै श्रलखकों  
 श्रंग धरै, चेद्दी चिदानंदकी अकेली एकज्ञावना ॥ ८६ ॥

( ३४७ )

वल्ली फरीने पण कांश्क विशेष कहे डे.

पृथ्वीटत्तम् ॥ विवेकवनसारिणीं प्रशमश-  
र्मसंजीविनीम्, ज्ञवार्णवमहातरीं मदनदाव-  
मेघावलीम् ॥ चलाहमृगवागुरां गुरुकषा-  
यशैलाशनिम्, विमुक्तिपथवेसरीं ज्ञजत ज्ञा-  
वनां किं परैः ॥ ८४ ॥

अर्थः—हे ज्ञव्यजनो ! ( ज्ञावनां के० ) शुज्ञ-  
ज्ञावनाने ( ज्ञजत के० ) सेवन करो ( परैः के० )  
बीजा कष्टानुष्ठानोयें करी ( किं के० ) शुं ? काहींज  
नहिं. अर्थात् शुज्ञज्ञाव रहित अनुष्ठानो करवाशी  
शुं ? काहींज नहिं. ए ज्ञावना केहवी डे ? तो के  
( विवेकवनसारिणीं के० ) कृत्याकृत्य विचाररूप जे  
वन ते वनमां कुद्यारूप, तथा वल्ली ( प्रशमशर्म-  
संजीविनीं के० ) उपशम सुखने जीवन करनारी त-  
था ( ज्ञवार्णवमहातरीं के० ) संसार समुद्रने विषे  
महोटा नावसमान, तथा ( मदनदावमेघावलीं के० )  
कामदेवरूप जे वनाश्चित्त तेने विषे मेघसमान, तथा  
( चलाहमृगवागुरां के० ) चंचल एवी जे इंड्रियो  
ते रूप जे मृग तेने विषे मृगजालपाशबंधनरूप, त-

( ३४४ )

था ( गुरुकषायशैलाशनिं केऽ ) महोटा चार कषायरूप जे पर्वत तेने विषे वज्रसमान, तथा ( विमुक्तिपथवेसरीं केऽ ) मुक्तिमार्गने विषे ज्ञारवाहकत्वे अर्थात् रस्तामां जातां ज्ञारवाहन करनारी खच्चर घोड़ी समान ढे, माटे हे जन्मयजनो ? एवी शुञ्जनावनाने तमें करो ॥ ७७ ॥

टीका:-पुनर्विशेषमाह ॥ विवेकेति ॥ ज्ञो जन्मयाः । ज्ञावनां शुञ्जपरिणाम रूपां ज्ञजत सेवधवं । परैः अन्यैः कष्टानुष्ठानैः शुञ्जज्ञावनारहितैः किं ? न किं चिदित्यर्थः । कथं ज्ञूतां ज्ञावनां ? विवेकः कृत्याकृत्यविचारएव वनं तत्र सारिणी कुद्याः तां । पुनः प्रशमशर्मणः उपशमसुखस्य संजिविनीं जीव नकर्त्री । पुनः ज्ञवएव संसार एव अर्णवः समुद्रस्तत्र महातरीं माहानावां । पुनः किं ज्ञूतां ? मदनएव दावो दावाग्निस्तत्र मेघस्यावर्णीं श्रेणिं । पुनः किं ज्ञूतां ? चलानि चंचलानि यानि अक्षाणि इङ्गियाण्येव मृगा हरिणा स्तेषु वागुरां मृगजालपाशबंधनरूपां । पुनः कीदर्शीं ? गुरुर्गरिष्ठश्चतुःकषायरूपएव शैलःपर्वतः तत्र अशनिं वज्रं । पुनः किं ज्ञूतां ? विमुक्तेः

( ३५० )

सिद्धेः पंथा स्तत्र वेसरीं अश्वतरीं । तद्भारवाह-  
कां । तस्माहुच्चन्नावनामेव कुर्वन्तु ॥ ७४ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—वृत्त उपर प्रमाणे ॥ प्रसमके पो-  
षवेकों, अमृतकी धारासम, ज्ञानवन सींचवेकों ना-  
रि नीर जरी है ॥ चंचल करन मृग बंधवेकों वा-  
मुरा सी, काम दावानल नासिवेकों मेघजरी है ॥  
प्रबल कषाय गिरि जंजवेकों वज्रगदा, जौंसमुद्ध तरवे-  
कों पोढी महातरी है ॥ मोखपंथ गाहिवेकों वेसरी वि-  
लायतकी, ऐसी शुद्धज्ञावना अवंध ढार ढरी है ॥ ७४ ॥

वद्धी पण कहे डे.

शिखरिणीदृत्तम् ॥ घनं दत्तं वित्तं जिनव-  
चनमन्यस्तमखिलम्, क्रियाकांमं चंमं रचि-  
तमवनौ सुप्तमसकृत् ॥ तपस्तीव्रं तप्तं च-  
रणमपि चीर्णं चिरतरम्, नचेन्नित्ते ज्ञाव-  
स्तुषवपनवत्सर्वमफलम् ॥ ७५ इति ज्ञा-  
वनाप्रक्रमः ॥ ७० ॥

अर्थः—( घनं के० ) घण्ठं ( वित्तं के० ) झव्य,  
( दत्तं के० ) पात्रजनने दीधुं, तथा ( अखिलं के० )  
समग्र ( जिनवचनं के० ) जिनागमरूप शास्त्र ( अ-

( ३५१ )

न्यस्तं केष्ठ ) जाएयुं, तथा ( चंमं केष्ठ ) जयंकर ए-  
वुं ( क्रियाकांडं केष्ठ ) क्रियाकांद ते दोचादि ( र-  
चितं केष्ठ ) कर्म्मुं. तथा ( असकृत् केष्ठ ) वारंवार  
( अवनौ केष्ठ ) पृथ्वीने विषे ( सुसं केष्ठ ) शयन  
कर्म्मुं तथा ( तीव्रं केष्ठ ) तीव्र एवुं ( तपः केष्ठ ) बार  
प्रकारनुं जे तप तेने ( तसं केष्ठ ) तप्युं, तथा ( च-  
रणमणि केष्ठ ) चारित्र पण ( चिरतरं केष्ठ ) घणा-  
ककालपर्यंत ( चीर्णं केष्ठ ) सेवन कर्म्मुं. परंतु ( चि-  
त्ते केष्ठ ) चित्तने विषे ( जावः केष्ठ ) शुज्जज्ञाव,  
( नचेत् केष्ठ ) जो न होय तो ( सर्वं केष्ठ ) पूर्वोक्त  
सर्वं ( तुषवपनवत् केष्ठ ) तुष जे फोतरां तेने खां-  
दवानी पेरें ( अफलं केष्ठ ) निष्फल जाणबुं ॥७७ ॥  
अहिं जावना जाववा विषे मरुदेवी माता, जरत  
महाराज, एवायचीपुत्र तथा प्रसन्नचंद्रराजर्षि, तेनी  
कथाउनो दृष्टांत लेवो ॥ ते कथाउ सर्वं प्रसिद्ध  
र्णे ॥ इति जावनाप्रक्रमः ॥ २० ॥

टीका:- पुनराह ॥ घनमिति ॥ घनं प्रचुरं वित्तं  
धनं पात्रेन्योदत्तं पुनर खिलं समस्तं जिनवचनं जि-  
नागमरूपं अच्यस्तं ॥ पठितं । पुनश्चंडं जीमं क्रि-  
याकांडं दोचादि रचितं कृतं । पुनरवनौ ज्ञूमौ अ-

सकृद्धारं सुतं शयनं कृतं । पुनस्तीव्रं द्वःकरं तपस्त-  
तं तपः कृतं । पुनश्चरणं चारित्रं चिरतरं बहुकालं  
चीर्णं सेवितं । परं चेद्यदि चित्ते ज्ञावो न । शुन्नज्ञा-  
वना नास्ति । तदा तुष्व पनवत् सर्वं पूर्वोक्तं विफलं  
स्यात् ॥ ७७ ॥ अत्र मरुदेवीन्नरतएकायचीपुत्र प्रसन्न  
चंडराजर्षीणां कथाः ॥ सिंदूरप्रकराख्यस्य, व्याख्या-  
यां हर्षकीर्तिन्निः ॥ सूरिन्निर्विहितायां तु, ज्ञावना-  
प्रक्रमोऽजनि ॥ इति ज्ञावनाप्रक्रमः ॥ २० ॥

**ज्ञाषाकाव्यः—आज्ञानकब्दं द ॥ गहि पुनीत आ-**  
चार, जिनागम जोवनां ॥ करि तप संयम दान,  
ज्ञूमिका सोवनां ॥ एकरनी सब विफल, होहि विनु  
ज्ञावना ॥ ज्यौं तुस बोए हाथ, कदून हिं आवनां ॥ ७८ ॥

**कथाः—इहां ज्ञाव उपर इखायचीपुत्रनी कथा जा-**  
णवी. जे नटवी उपर मोह्यो थको नाटकीयापणुं अंगी-  
कार करी पठी राजाने रीजववा माटें वांसना अग्र-  
जागें नाचतां साधुना दर्शनर्थी ज्ञावना ज्ञावतो वांसनी  
उपर रह्यो थको केवलझाँन पाम्यो डे, इत्यादि कथा  
प्रसिद्ध डे. माटें ज्ञाव विना सर्वं अनुष्ठान व्यर्थं जा-  
णवुं ॥ उक्तं च ॥ घनं दत्तं वित्तं जिनवचन मञ्य-  
स्तमखिलं क्रियाकांक्षं चंडं रचितमवनौ सुसमस्तुत् ॥

तपस्तीव्रं तसं चरणमपि चीर्णं चिरतरं, न चेज्जिते  
जावस्तुषवपनवत् सर्वमफलम् ॥

हवे वैराग्यने कहे डे.

हरिणीवृत्तम् ॥ यदशुञ्जरजःपाथोदत्सेद्धिय-  
द्विरदांकुशम्, कुशलकुसुमोद्यानं माद्यन्मनः  
कपिशृंखला ॥ विरतिरमणीलीलावेशम् स्म-  
रज्जवरज्ज्ञेषजम्, शिवपथरथस्तद्वैराग्यं विमृ-  
श्य ज्ञवाऽन्नयः ( ज्ञवाऽन्नवः ) ॥ ८४ ॥

अर्थः—हे मुनि ! ( तत् केष्ट ) ते ( वैराग्य केष्ट )  
वैराग्यने ( विमृश्य केष्ट ) विचारीने ( अन्नयः केष्ट )  
संसार जयरहित ( ज्ञव केष्ट ) आ. ते कयो वैराग्य ?  
तो के ( यत् केष्ट ) जे वैराग्य ( अशुञ्जरजः केष्ट )  
पापरूप जे रज तेनेविषे ( पाथः केष्ट ) जलरूप डे.  
तथा ( दृत्सेद्धियद्विरदांकुशं केष्ट ) मदोन्मत्त एवी  
जे इंड्रियो तेरूप जे हाथीयो, तेमने विषे अंकुश  
समान डे. वली ( कुशलकुसुमोद्यानं केष्ट ) कुशल-  
तारूप जे फूल तेमनो उद्यान एटले बनरूप डे. वली  
ते वैराग्य ( माद्यन्मनःकपिशृंखलां केष्ट ) मदोन्मत्त  
एवुं जे मन ते रूप जे वांदर, तेने बांधवामां सां-

( ३५४ )

कल समान डे. वली ( विरतिरमणीबीबावेश्म के० )  
देशविरति सर्वविरतिरूप जे ख्ली तेमने क्रीडा कर-  
वानुं गृह डे. वली ( स्मरज्ज्वरज्ज्ञेषजं के० ) कामदे-  
वरूप जे ताव तेने श्रौषधसमान डे. वली ( शिव-  
पथरथः के० ) मोहमार्गने विषे रथ समान डे.  
माटें ते वैराग्यने विचारीने संसारज्जय रहित था.  
अने जो ( ज्ञवाज्ज्वः ) एवो पाठ होय तो ज्ञव एटखे  
संसार ते रहित था. एम जाणबुं ॥ ७५ ॥

टीकाः—अथ वैराग्यमाह ॥ जो मुने ! तद्वैराग्यं  
विमृश्य चिंतयित्वाऽन्नयः संसाररहितोज्ञव तत्किं ?  
यत् वैराग्यं अशुभं पापमेव रजोधूलिस्तत्र पाथो  
जलं । तदुपशामकत्वात् । पुनर्द्वृत्तानि इंद्रियाण्येव  
द्विरदा गजास्तेषां अंकुशमिवांकुशं वश्यकरं । पुनः  
किंचूतं ? कुशब्दमेव कुसुमानि तेषां उद्यानं पुष्पा-  
रामं । पुनर्यत् वैराग्यं माद्यन्मदोन्मत्तो यो मनः  
कपिर्वानरस्तस्य शृंखलां निगड बंधनं । पुनर्यत् वि-  
रतिरमणीबीबावेश्म देशविरतिसर्वविरतिरेव ख्लीः  
तस्याः क्रीडागृहं । पुनर्यत् स्मरएव ज्वरस्तस्यौषधं  
कामज्ज्वरौषधं । पुनर्यत् शिवपथरथः मोहमार्गे रथ-  
समानः । तद्वैराग्यं विमृश्य विचार्य अन्नयः संसार-

ज्ञयरहितोन्नव ज्ञवान्नवइति पाठे ज्ञवरहितोन्नव॥४४॥

ज्ञाषाकाव्यः—सवैय्या इकतीसा ॥ अशुन्नता धु-  
लि हरवेकों नीरपुर सम, विमल विरति कुदवधुको  
सोहाग है ॥ उदित मदनज्वर नाशवेकों ज्वरांकुश,  
अहगजथंजनकों अंकुशको दाग है ॥ चंचल कु-  
मन कपि रोकवेकों लोहफंद, कुसल कुसुम उपजा-  
यवेकों बाग है ॥ सूधो मोख मारग चलायवेकों  
नामी रथ, ऐसो हितकर ज्ञवज्ञजन विराग है॥४४॥

वली पण वैराग्यज कहे डे.

वसंततिलकावृत्तम् ॥ चंडानिलस्फुरितमब्द-  
चयं दवार्चि, वृद्धब्रजं तिमिरमंडलमर्कविंबि-  
म् ॥ वज्जं महीघ्रनिवहं नयते यथांतम्, वै-  
राग्यमेकमपि कर्म तथा समग्रम् ॥ ४० ॥

अर्थः—( यथा केण ) जेम ( चंडानिल केण ) प्र-  
चंड एवो अनिल जे वायु तेनुं ( स्फुरितं केण )  
स्फुरण एटले चालवुं ते ( अब्दचयं केण ) मेघघ-  
टाने ( अंतं केण ) अंतप्रत्यें ( नयते केण ) पमाडे  
डे. वली जेम ( दवार्चिः केण ) दावाग्निनी ज्वाला,  
( वृद्धब्रजं केण ) वृद्धना समूहने नाश पमाडे डे.

वली जेम ( अर्कबिंबं के० ) सूर्यबिंब ( तिमिरमंडलं के० ) अंधकारना मंडलने नाश पमाडे डे. वली जेम ( वज्रं के० ) वज्र ( महीधनिवहं के० ) पर्वतसमूहने नाश पमाडे डे. ( तथा के० ) तेम ( स-समयं के० ) समग्र एवुं ( कर्म के० ) कर्म तेने ( एक-मपि के० ) एक एवुं पण ( वैराग्यं के० ) वैराग्य जे डे ते नाश पमाडे डे ॥ ४० ॥

टीकाः—पुनराह ॥ चंडानिलेति ॥ यथा चंडानिलस्फुरितं प्रचंडवायुस्फूर्जितं अब्दचयं मेघघटां अंतं विनाशं नयते प्रापयति । पुनर्यथा दावार्चिर्दावा श्विष्ठसमूहं अंतं प्रापयति पुनर्यथा अर्कबिंबं सूर्य-बिंबं तिमिरमंडलं अंधकारसमूहं अंतं नयते । पुनर्यथा वज्रं इंद्रायुधं महीधनिवहं पर्वतसमूहं अंतं विनाशं नयते प्रापयति । तथा एकमपि वैराग्यमेव समग्रं कर्म अंतं नयते ॥ ४० ॥

ज्ञाषाकाव्यः—आज्ञानकछंद ॥ ज्यौं समीर गं-जीर, घनाधन उय करै ॥ वज्र विनासै शिखर, दि-वाकर तम हरै ॥ ज्यौं दव पावक पूर, दहै वनकुंज कों ॥ त्यौं जंजै वैराग्य कर्मके पुंजकों ॥ ४० ॥

( ३५७ )

वल्ली पण कहे डे.

शिखरिणीवृत्तम् ॥ नमस्या देवानां चरणव-  
रिवस्याशुन्नगुरो, स्तपस्या निःसीमक्रमपद-  
मुपास्या गुणवताम् ॥ निषद्याऽरण्ये स्यात्  
करणदमविद्या च शिवदा, विरागः क्रूरागः  
द्वपणनिपुणोऽतः स्फुरति चेत् ॥ ४१ ॥

अर्थः—( चेत् केऽ ) जो ( अंतः केऽ ) हृदयने  
विषे ( विरागः केऽ ) वैराग्य, ( स्फुरति केऽ ) स्फुरे  
डे, तोज ( देवानां केऽ ) अरिहंतादि देव तेने क-  
रेखो ( नमस्या केऽ ) नमस्कार ते पण ( शिवदा  
केऽ ) मोक्ष देनारो ( स्यात् केऽ ) आय. तथा ( शु-  
न्नगुरोः केऽ ) सारा गुरुनी ( चरणवरिवस्या केऽ )  
चरणसेवा ते पण त्यारेंज मोक्षदायी आय, तथा  
( निःसीमक्रमपदं केऽ ) अत्यंत श्रमनुं स्थानक एवुं  
( तपस्या केऽ ) तप पण त्यारेंज मोक्षदायी आय  
डे. तथा ( गुणवतां केऽ ) इनादिक गुणे करी  
युक्त एवा जननी ( उपास्या केऽ ) सेवा ते पण  
त्यारेंज मोक्ष देनारी आय. तथा ( अरण्ये केऽ ) वन-  
ने विषे ( निषद्या केऽ ) स्थिति एटबे रहेबुं ते पण

( ३५७ )

त्यारेंज मोक्ष देनारी थाय. ( च के० ) तथा ( करणदमविद्या के० ) इंड्रियदमननी विद्या पण त्यारेंज मोक्षदायक थाय. अर्थात् ज्यारें हृदयने विषे वैराग्य उत्पन्न थाय, त्यारेंज पूर्वोक्त सर्ववानां थाय. ते वैराग्य केहैवो ढे ? तो के ( क्रूरागःक्षपणनिपुणः के० ) क्रूर एवो जे अपराध तेने क्षपण एटले टालवामां निपुण ढे डाह्यो एटले ॥ ४१ ॥

टीका:-पुनराह ॥ नमस्येति ॥ चेद्यदि अंतश्चित्ते विरागो वैराग्यमेव स्फुरति वर्तते तदा देवानां न-मस्या नमस्करणं शिवदा मोक्षदायिनी मोक्षदा-यकी स्यात् । पुनः शुन्नगुरोश्चरणवरिवस्या चरणयोः सेवा तदा शिवदा स्यात् । पुनरत्यंतश्रमपदं ईदृशी तपस्या तपस्तदैव शिवदा स्यात् । पुनः गुणवतां ज्ञानादिगुणयुक्तानां उपास्या सेवापि तदैव शिवदा स्यात् । पुनररण्ये वने निषद्या स्थितिस्तदैव शिवदा स्यात् । पुनः करणदमविद्या इंड्रियदमनविधिरपि तदैव शिवदः स्यात् । यदि अंतर्मध्ये वैराग्यं ज्ञवति । कथं ज्ञूतोविरागः ? क्रूरागःक्षपणनिपुणः क्रूरं घोरं आगोऽपराधस्तस्य क्षपणे क्षपणकरणे निपुणश्चतुरः ॥ ४१  
ज्ञाषाकाव्यः—कवित्त मात्रा० ॥ कीनी तिने सु

देवकी पूजा, तिन गुरु चरन कमल मन लायो ॥  
 सो वनवास वस्थो निसिवासर, तिन गुनवंत पुरुष  
 गुन गायो ॥ तिन तप लियो कियो इंद्रिय दम, सो  
 पूरन विद्या पढि आयो ॥ सब अपराध गए ताकों  
 तजि, जिन वैरागरूप धन पायो ॥ ४१ ॥

बली विरक्तगुणो कहे डे.

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ज्ञोगान् कृष्णञ्जु-  
 जंगन्जोगविषमान् राज्यं रजः सञ्ज्ञन्म्, बंधून्  
 बंधनिबंधनानि विषयग्रामं विषान्नोपमम् ॥  
 ज्ञूतिं ज्ञूतिसहोदरां तृणमिव स्नैणं विदित्वा  
 त्यज, न्स्तेष्वासक्तिमनाविखोविखन्ते मुक्तिं  
 विरक्तः पुमान् ॥ ४७ ॥ इति वैराग्यप्रक्रमः ॥ १

अर्थः—( विरक्तः के० ) वैराग्ययुक्त एवो ( पुमान्  
 के० ) पुरुष, ( मुक्तिं के० ) मुक्तिने ( विखन्ते के० )  
 प्राप्त थाय डे. शुं करीने प्राप्त थाय डे ? तो के ( ज्ञो-  
 गान् के० ) शब्दादिक ज्ञोगोने ( कृष्णञ्जुंगन्जोग-  
 विषमान् के० ) कृष्णसर्पना देह समानविषम ए-  
 वाने ( विदित्वा के० ) जाणीने तथा ( राज्यं के० )  
 आधिपत्यने राज्यने ( रजःसंनिज्ञं के० ) धूलिस-

मान जाणीने तथा ( बंधून् केण ) स्वजनने ( बंध-  
निबंधनानि केण ) बंधनना कारणरूप जाणीने तथा  
( विषयग्रामं केण ) विषयसमूहने ( विषान्नोपमं  
केण ) विषमिश्रित अन्नसमान जाणीने तथा ( चूर्ति  
केण ) रुद्धिने ( चूर्तिसहोदरां केण ) विचूर्तिनी बे-  
हन एटखे चसमनी सदृश जाणीने तथा ( स्लैणं केण )  
स्त्रीसमूहने ( तृणमिव केण ) तृण जेम होय तेम  
जाणीने मुक्तिने पामे रे. हवे ते पुरुष केहवो रे ?  
तो के ( तेषु केऽ ) ते पूर्वोक्त पदार्थोने विषे ( आ-  
सक्ति केण ) आसक्तिने ( त्यजन् केण ) त्याग क-  
रतो एवो रे. वढी केहवो रे ते पुरुष ? तो के ( अ-  
नाविलः केण ) रागद्वेषादिके करी अनाकुल रे.  
एटखे स्वड रे ॥ ४७ ॥ इति वैराग्यप्रक्रमः ॥ ४१ ॥

टीका:-विरक्तगुणानाह ॥ ज्ञोगानिति ॥ विरक्तो  
वैराग्ययुक्तः पुमान् मुक्तिं विलज्जते सिद्धिं प्राप्नोति ।  
किं कृत्वा ? ज्ञोगान् शब्दादीन् कृष्णश्चासौ चुजंगः  
सर्पस्तस्य ज्ञोगः शरीरं तद्वत् विषमान् जीमान्  
विदित्वा इत्वा । तेषु आसक्ति अत्यन्निलाषं त्यज-  
न् । पुनः राज्यं आधिपत्यं रजःसन्निच्चं धूलिसदृशं  
मत्वा त्यजन् । पुनर्बंधून् स्वजनान् कर्मबंधस्य नि-

बंधनानिकारणानि मत्वा पुनर्विषयग्रामं विषयसमूहं  
विषान्नोपमं विषमित्रितान्नसमं मत्वा । पुनर्ज्ञाति  
क्षम्भिं चूतिसहोदरां नस्मन्नगिनीं रक्षासदृशीं मत्वा ।  
पुनः स्त्रैणं स्त्रीणां समूहं तृणमिव तृणसदृशं विदि-  
त्वा तेषु आसक्तिं अत्यज्जिलाषं त्यजन् । कथं ज्ञूतो  
विरक्तः पुमान्? अनाविक्षः रागदेषाद्यनाकुलः ॥४७॥

ज्ञाषाकाव्यः—सवैया इकतीसा ॥ जाकों ज्ञोग-  
ज्ञाव दिसै कारे नागकेसी फन, राजको समाज  
दीसे जैसै रजकोष है ॥ जाको परिवारकों बढाउ  
घेरा बंध सूजै, विषै सुखसोंजकों विचारै विषपोष  
है ॥ लिखै यौं विज्ञूति ज्यौं ज्ञसमकों विज्ञूति कहै,  
वनिताविद्वासमें विद्वोके दिढ़ दोष है ॥ ऐसो जानि  
त्यागै यह महिमा वैराग ताकी, ताहीकों वैराग  
सही ताके ढिग मोख है ॥ ४७ ॥

कथा:—हवे वेराग्य उपर कथा कहे ढे. कांचन-  
पुरनगरे विक्रमसेन राजा ढे, तेनी पांचशें राणी ढे,  
तेहज नगरमां एक नागदत्त नामें शोठ वसे ढे. तेने  
विष्णु नामें जार्या महास्वरूपवती ढे. तेने एकदा  
गोंखमां बेरां थकां राजायें दीरी, तेवारें सेवको  
मोकदी बोलावी लझने बलात्कारें अंतेउरमां मोक-

ली दीधी. नागदत्तशोरें अनेक उपाय कर्या, पण कोइ रीते राजा तेनी स्त्रीने मूके नहीं. तेवारें नाग-दत्त स्त्रीथी विवहल थयो थकौ वनमां जतो रह्यो.

इवे राजा पण ते स्त्री उपर मोह्यो थको बीजी सर्व स्त्रीयोने तृणप्राय जाणवा लाग्यो. पांचशें स्त्रीयो सर्व एमज बेसी रही, तेवारें ते स्त्रीयोयें कामण दुमणादिक प्रयोगथी विषणु राणीने मारी नाखी. तेने मरण पामेली देखीने राजा तेने पगे वलगी रह्यो, पण मोहदशाथी जूदो न आय. तेनो पग मूके नहीं. पठी कोइ प्रपञ्चथी प्रधान ते राणीने अग्नि-संस्कार करवा लइ गयो. पण जेवारें अग्नितीरं मूकी, तेवारें राजा राणीने अणदेखतो थको प्रधान प्रत्यें कहेवा लाग्यो के महारी वद्वन्नाने लइ आव. प्रधान पण राजाने तिहाँ लइ जइने राणीनुं कबेवर देखाइयुं. ते जोइ राजा मनमां वैराग्य पाम्यो अने विचार्युं जे आ राणीना शरीरमां अत्यंत सुरजिगंध हतो, ते डुरजिगंध थयो ! तथा मुखकम्बल चंडमा जेबुं हतुं ते शोषाइने नहिं तेबुं थयुं ! अने नेत्र, बाहु, गलस्थल, इत्यादि अंग पूर्वैं जे हतां, ते सर्व बगडी गयां ! इत्यादि स्वरूप सर्व अनित्य जाणी

( ३६३ )

राणीने अग्निसंस्कार करी दीक्षा लइ उथ तप त-  
पीने त्रीजे देवलोके देवता थयो.

तिहाँथी चवी रत्नपुर नगरे जिनधर्मा नामें शेर  
थयो अने पूर्वलो नागदत्तशेर ते एक ब्राह्मणने धेर  
पुत्रपणे उपनो, तेनुं नाम अग्निशर्मा पाङ्कुं, ते वृ-  
द्धावस्थायें संसार त्यागी त्रिदंकी तापस थयो. वे वे  
मासें पारणुं करे, ते अनेक देश भ्रमण करीने शि-  
ष्योना परिवार सहित एकदा प्रस्तावें फरी रत्नपूर  
नगरे आव्यो, तेने राजायें अत्याग्रहपूर्वक पारणुं  
कराववा माटें निमंत्रणा करी, तेवारे तापसें पूर्वजन्म-  
नावेरथी राजाने कहुं के जो जिनधर्मी शेर पोतानी  
पीठ उपर ज्ञोजन करावे, तो हुं पारणुं करुं ? एवी  
महारी इड्डा ढे. राजायें ते वात कबूल करी जिनध-  
र्मीश्रेष्ठीने तेढी तेनी पुंर मंकावी. तेनी उपर तापस  
चढी बेरो. अने त्रांबानुं ज्ञाजन परमान्नथी जरी  
लाव्या, ते पण शेरनी पीठ उपर राखुं. तापस  
जमवा बेरो पठी ऊषण अन्नना योगें शेरनो वांसो  
तप्यो, अने महावेदना थवा मांडी. तेवारे शेरे मनमां  
चिंतव्युं जे में जन्मांतरे ए कृषिने संताप्यो हशे,  
तेथी ए हमणां मने संताप करे ढे, माटें कीधेलां

कर्म ज्ञोगव्या विना कांइ बूटे नही ! हवे तापस ज-  
मी रह्या पर्ही जाजन उपाङ्गुं तो शेठना वांसानी  
खाल नीकद्वी पडी, महावेदनाक्रांत थइ पोताने घेर  
आवी सर्व जीवायोनि खमावी अनशन ब्रत लइ म-  
रण पामी सौधमैङ थयो. अने त्रिदंभीयो मरण पा-  
मी तेज इङ्गनो ऐरावत हाथी थयो. ते हाथी मरण पा-  
मी घणो संसार परिभ्रमण करी सीताक नामें गुह्यक  
थयो. अने सौधमैङ पण तिहांथी चवी हस्तिनागपुरें  
अश्वसेन राजाने घरे पुत्रपणे ऊपनो. मातायें चौदृ  
सुपन दीठां. जन्म्या पर्ही सनक्कुमार नाम दीधुं.  
ते बीजना चंद्रमानी पेरें वधतो अनुक्रमें यौवना-  
वस्था पास्यो. अत्यंत रूपवान् सौजनाग्यवान् थयो.  
तेनो महेंड नामें कोइ मित्र ढे, तेनी साथें अनेक  
प्रकारनी रमत क्रीडा करवा लाग्यो.

एकदा वसंतक्रीडा करवा माटें मित्रनी साथें  
उद्यानमां गयो, ते अवसरें राजाने माटें अपूर्व अ-  
श्व कोइ परदेशाथी झेट लइ आढयो, ते अश्वने  
राजायें कुमरनी पासें बनमां मोकछ्यो. कुमर पण ते  
घोडा उपर चढी घणी वार घोडाने फेरव्यो पण  
जेवारें तेनी लगाम खेंची तेवारें ते घणोज दोङ्यो,

अने क्षणएकमांहे ते वन मूकीने आगल जतो रह्यो, ते समाचार अश्वसेन राजायें जाणा. तेवारें सैन्य लळने तेने जोवा निकल्यो. सर्वत्र जोयो पण क्यांहि न मखवाशी राजा रुदन करतो पाडो घेर आव्यो.

तेवारें प्रधान आवी राजाने नमस्कार करी आ-  
ज्ञा मार्गीने देशांतर जवा निकल्यो. ते केटलेक दिव-  
सें कौबेरी नगरीयें गयो, तिहां सरोवरनी पाल उपर  
बेसी वनफल खाल पाणी पीधुं, एकक्षण बेरो. ए-  
टलामां वेणु, वीणा, मृदंग, जब्बरी प्रमुखनो नाद  
सांजद्व्यो तेने अनुसारें आगल जवा लाग्यो. आग-  
ल अनेक जनथी परवस्यो थको कुमरने बेरेलो दीडो,  
तेवारें प्रधानें आश्र्वय पामीने कुमरने नमस्कार  
कस्यो. आलिंगनथी बेहु जण मद्या, कुमरें पोताना  
अर्द्धसिनं बेसाड्यो. तदनंतर हेमकुशल पूळ्यां.

पठी कुमरें भ्रूसंज्ञायें करी पोतानी जार्याने कल्हुं,  
ते प्रधानप्रत्यें बोद्धी के हे सत्पुरुष ! तहारा मित्रने  
घोडायें वनमांहे अपहस्यो ते जेवारें वाग ढीढी मूकी  
तेवारें घोडो उच्चो रह्यो अने तत्काल मरण पाम्यो  
तथा कुंमर मूर्ढायें वृक्षनी छायानीचें पछ्यो तेने  
वृक्षना अधिष्ठायक देवतायें जल आणी गाढ्युं. तेथी

( ३६६ )

कुमर सावधान यश वनदेवता प्रत्यें पूरतो हवो के तमें कोण ठो ? तारे तेणे कहुं के हुं वनाधिष्ठायिक देवता हुं. खीर समुद्रना पाणीथी में तुजने सावधान कीधो, तेवारें कुमरें कहुं के हे देव ! मुजने मानसरोवर देखाडो, तो तिहां हुं स्नान मज्जन करुं के जेथी सकल रोग निवारण आय ! अने शीतल थाऊं ! देवता तिहां लइ गयो, पढी कुमरें स्नान कीधुं. तृष्णा अने मार्गनो श्रम जे हतो ते टाछ्यो.

एवामां पूर्वजन्मना वैरी यहें दीरो, चिरकाल पर्यंत तेनी साथें युद्ध थयुं. कुमरें तेने जीत्यो. बीजा देवताऊयें हर्षित थइने कुमर उपर फूलनी वृष्टि करी. तिहां ज्ञानुवेग विद्याधरनी आठ कन्याऊं परण्यो. पठी कुमरने ते विद्याधर वैताढ्य पवर्ते लइ गयो. तिहां पण घणी कन्याऊं नुं पाणिग्रहण कहुं. अने सुखथी तिहां रह्यो. जे माटें पुण्यवंत पुरुष ज्यां जाय त्यां सुख पामे.

एकदा ते वैरी यहें गृहमांथी उपाडीने वनमाँहे मूकी दीधो. तिहांथी आगल चालतां एक मंदिर दीकुं. तेनी सातमी चूमियें चढ्यो, तेवारें रुदन करती एवी एककुमरी दीरी. कुमरें तेने बोलावी पू-

ब्युं के हे सुन्नगि ! तुं रुदन शा माटें करे डे ? त्यारें  
 कन्या बोली के, अहो सुन्नग ! संकेत पुरपाटणें  
 सुराष्ट्रराजा डे, तेनी सुनंदा नामें हुं पुत्री छुं. वली  
 जेवारें हुं यौवनावस्थाने पामी, तेवारें महारा पि-  
 तायें संकटप कस्यो जे ए महारी पुत्री हुं सनत्कु-  
 मारने परणावीश ! पण एक दिवसें कोइक विद्या-  
 धरें मने तिहांथी अपहरीने इहां आणी डे. हवे  
 महारी शी गति थाशे ? कुमर बोल्यो, के तुं जय  
 राखीश नही. सनत्कुमार ते हुंज छुं. एवी वात करे  
 डे, एटलामां ते कन्यानो हरण करनार विद्याधर  
 पण त्यां आवी पहोतो, तेनुं अने कुमरनुं मांहोमां-  
 हे युद्ध थयुं. कुमर जीत्यो अने सुनंदानुं पाणिग्र-  
 हण कस्युं. वली जे विद्याधरने जीत्यो तेने पण प्र-  
 थम रुषीश्वरें कहेबुं हतुं ते उपरथी पोतानी पुत्री  
 कुमरने परणावी अनेक विद्याडे आपी ने वैताढ्य  
 पर्वतें लङ गयो. तिहां श्रीशांतिनाथजीनां अनेक  
 बिंब वंदाढ्यां. तिहांथी निकलीने अमें आज आ-  
 हीं तमोने मध्या डैयें.

इत्यादि वार्ता मंत्रीश्वर आगल कहीने पडी  
 तिहांथी अंतेजर तथा मंत्री सहित चाल्या, ते ह-

स्तिनागपुरें आव्या. पुत्र आव्यो सांन्नदीने पिता घणोज प्रमोद पाम्यो पठी पुत्रनो राज्यान्निषेक करीने पितायें श्रीधर्मनाथना शिष्यनी पासेंशी दीक्षा दीधी.

पाठ्य सनत्कुमार ठ खंड पृथ्वी साधीने राज्य-सुख जोगववा लाग्यो. इँडें धनद चंकारीनी साथें ठत्र, चामर मोकव्यां. बे चामर, बे पावडी, एक मुकुट, बे देवफुल्य वस्त्र, बे कुंमख, नक्षत्रमाला, हार, सिंहासन, देवतानां गायन, तथा अप्सरा. ए सर्वआणी दीधां. बत्रीश हजार राजायें मढी राज्यान्निषेक कीधो. एम चक्रवर्तीनी पदवी जोगवतो रहे रहे.

एकदा सौधमेंडे सज्जामां बेरां शकां सनत्कुमार चक्रीनुं रूप वखाण्युं ते सर्व देवोयें याथातथ्य करी मान्युं. परंतु बे मिथ्यात्वी देवो हता, ते इंद्रनुं वचन श्रणमानता परीक्षा करवा माटें ब्राह्मणनो वेश धारण करी चक्रीना छार आगल आवी छार-पालने कहेवा लाग्या के अमें दूर देशांतरथी रूप जोवा सारु आव्या ठैयें. ते वखत चक्रवर्ती पोताना शरीरें उवटणुं करावता हता. तिहां घारपालनी आङ्गा मागी ब्राह्मणनेरूपें देवायें आवी रूप जोयुं. तेशी हर्ष पामी कहेता हवा के अमारो जन्म स-

फल थयो. चक्रवर्तीयें कहुं के हुं मज्जन करी ज-  
मीने राजसन्नायें बिराजुं, तेवारें आवजो. राजाना  
कहेवा प्रमाणें सन्नामां पण ते देवो, रूप जोवा आ-  
व्या. तेवारें मनमां विषाद पामी मस्तक धूणाववा  
लाग्या. चक्रवर्तीना पूढ़वाशी देवोयें कहुं के तमारुं  
शरीर हमणां रोगें ग्रसित थवाशी पूर्वनुं रूप पद्माश  
गयुं डे. इत्यादि वृत्तांत कही स्थानकें गया. सनत्कु-  
मारें यौवनादि वस्तुने अथिर जाणी विजयंधर सूरि  
पासें दीक्षा लीधी. ड मास पर्यंत अनुराग धरतां सैन्य  
प्रमुख सर्व परिकर साथें फख्या. परंतु सनत्कुमारें  
कांश तेनी तरफ जोयुं पण नही. पड़ी सर्व कोइ  
पोतपोताने घेर पाडा आव्या.

हवे चक्रवर्तीना शरीरें क्रमें क्रमें वधतां वधतां  
महारोगोत्पत्ति थइ, ते सातशें वर्ष पर्यंत जोगवी  
कठिण तपस्या करता रह्या, तेना प्रज्ञावशी अनेक  
बढ़ियो उपनी. वद्वी पूर्वनी ऐरें सौधमेंडे सनत्कु-  
मार साधुनी तपस्या तथा रोग संबंधि कष्ट सहन  
करवानी प्रशंसा करी, ते न मानतां फरी देवतायें  
आवी परीक्षा करवा माटें वैद्योपचार करवा संबंधी  
अनेक उपदेश कख्या. परंतु कृषीश्वर लगार मात्र पण

रुग्या नहीं. अने कष्ट सहन करवामां तत्पर रह्या.  
देवता पण साधुने बांदी ऊपर फूलनी वृष्टि करी  
स्वस्थानके गया. सनकुमार साधु अंत्यावस्थाये  
अनशन ब्रत लङ्घ काल करी सात सागरोपमने आ-  
उखे त्रीजे देवबोके देवता थया. देवस्थिति पूर्ण  
थये अनुक्रमे केटबाक मनुष्य तथा देवना जव  
करी केवलज्ञान उपार्जी मोक्ष सुख पामशे. ए ए-  
कवीशमा वैराग्योपदेशप्रक्रमने विषे सनकुमा-  
रनी कथा कही ॥

हवे ड काढयें करी सामान्य उपदेश कहे डे.

उपजातिवृत्तम् ॥ जिनेऽपूजागुरुपर्युपास्तिः,  
सत्त्वानुकंपाशुभ्रपात्रदानम् ॥ गुणानुरागःश्रु-  
तिरागमस्य, नृजन्मवृद्धस्य फलान्यमूनि ॥ ए ३ ॥

अर्थः—( नृजन्मवृद्धस्य केण ) मनुष्यजन्मरूप  
वृक्षनां ( अमूनि केण ) आ हवे कहेवाशे ते ( फ-  
लानि केण ) फलो डे. ते फलो कहे डे. तिहाँ प्रथ-  
म तो ( जिनेऽपूजा केण ) श्रीवीतराग प्रचुनी पूजा  
करवी ते, तथा बीजुं ( गुरुपर्युपास्तिः केण ) गुरुनी  
उपासना करवी ते. तथा त्रीजुं ( सत्त्वानुकंपा केण )

सर्वे प्राणिमात्र उपर दया राखवी ते. तथा चोशुं  
 ( शुन्नपात्रदानं केऽ ) शुन्नपात्रने विषे दान देवुं ते.  
 तथा पाचमुं ( गुणानुरागः केऽ ) गुणीने विषे प्रीति  
 राखवी ते. उम्हुं ( आगमस्य केऽ ) शास्त्रनुं ( श्रु-  
 तिः केऽ ) श्रवण करवुं ते. एटलां फलो मनुष्य  
 जन्मवृक्षनां ढे. अर्थात् एटलां शुन्नकृत्यो करवा  
 थकी मनुष्यजन्म सफल थयो जाणवो ॥ ४३ ॥

टीका:-अथ सामान्योपदेशमाह ॥ जिनेंद्रेति ॥  
 नृजन्मवृक्षस्य मनुष्यजन्म तरोरमूनि फलानि । ए-  
 तैः कृत्वा मनुष्यजन्म सफलं ज्ञवति । अमूनि का-  
 नि ? प्रथमं तावज्जिनेन्द्रपूजा श्रीवीतरागदेवस्य  
 पूजा कार्या । पुनर्गुरुरूणां पर्युपास्तिः सेवा । पुनः स-  
 त्वानां जीवानां अनुकंपा दया कार्या । पुनः शुन्न-  
 पात्रे दानं । पुनर्गुणेषु अनुरागः गुणयहणं कार्यं ।  
 पुनरागमस्य सिद्धांतस्य श्रुतिः श्रवणं कार्यं । एन्जिः  
 कृत्वा मनुष्यजन्म सफलं स्यात् ॥ ४३ ॥

नाषाकाव्यः—सर्वैद्या तेर्ष्टसा ॥ कै परमेसुरकी  
 अरचा विधि, सो गुरुकों उपसर्ग न कीजैं ॥ दीन  
 विलोकि दया धरियें चित्त, प्रासुक दान सुपत्तहिं  
 दीजैं ॥ गाहक वहै गुनकों गहियें, रुचिसों जिन

आगमको रस पीजै ॥ ए करनी करियें घट्टमें वसि,  
यौं जगमें नर चौफल दीजै ॥ ४३ ॥

शिखरिणीदृत्तम् ॥ त्रिसंध्यं देवाच्चां विर-  
चय चयं प्रापययशः, श्रियः पात्रे वापं जन-  
य नयमार्गं नय मनः ॥ स्मरक्रोधाद्यारीन्  
दखय कखय प्राणिषु दयाम्, जिनोक्तं सि-  
ष्टांतं श्रृणु वृणु जवान्मुक्तिकमलाम् ॥ ४४ ॥

अर्थः—हे नव्यप्राणी ! ( त्रिसंध्यं केष्ठा ) प्रज्ञा-  
त, मध्यान्ह अने सायंकाल, तेने विषे ( देवाच्चां  
केष्ठा ) श्रीवीतरागनी पूजाने ( विरचय केष्ठा ) कर-  
तथा ( यशः केष्ठा ) कीर्त्तिने, ( चयं केष्ठा ) वृद्धि प्र-  
त्यें ( प्रापय केष्ठा ) पमाड. तथा ( श्रियः केष्ठा )  
बह्मीना ( पात्रे केष्ठा ) सुपात्रने विषे ( वापं केष्ठा )  
वाववाने ( जनय केष्ठा ) उत्पन्न कर. तथा ( मनः  
केष्ठा ) मनने ( नयमार्गं केष्ठा ) न्याय मार्ग प्रत्यें  
( नय केष्ठा ) पमाड. वली ( स्मरक्रोधाद्यारीन् केष्ठा )  
काम, क्रोध, मान, माया, लोक, ए आदि शत्रुउने  
( दखय केष्ठा ) खंडन कर. तथा ( प्राणिषु केष्ठा )  
प्राणिमात्रने विषे ( दयां केष्ठा ) दयाने ( कखय

के० ) कर. तथा ( जिनोक्तं के० ) जिनप्रणीत एवा  
 (सिद्धांतं के०) सूत्रं सिद्धांतने (शृणु के०) श्रवण कर.  
 ए पूर्वोक्तं सर्वे करीने (जवात् के०) वेगें करी (मुक्ति-  
 कमलां के०) मोहङ्करूपं लक्ष्मीने (वृणु के०) वर ॥ ४४ ॥

**टीकाः—**त्रिसंध्यमिति ॥ त्रिसंध्यं त्रिकालं प्रज्ञाते  
 मध्यान्हे सायं च देवार्चा श्रीबीतरागपूजां विरचय  
 कुरु । पुनर्यशः कीर्त्ति चयं बृद्धिं प्रापय । श्रियो ल-  
 हम्याः पात्रे सुपात्रे वापं जनय वपनं कुरु । पुनर्म-  
 नश्चित्तं नयमार्गं न्यायमार्गं प्रति नय । पुनः स्मर-  
 क्रोधाद्यारीन् कामं क्रोधं मानं माया लोकाद्यान्  
 शत्रून् दखय खंकय । पुनः प्राणिषु जीवेषु दयां क-  
 लय कुरु । पुनर्जिनोक्तं अर्हतप्रणीतं सिद्धांतं सूत्रं  
 शृणु । एतानि कृत्वा जवात् वेगात् मुक्तिकमलां  
 शिवश्रियं वृणु वरय ॥ ४४ ॥

**ज्ञापाकाव्यः—हरिगीतछंद ॥** जो करै साधि त्रि-  
 काल सुमिरन, जासु जस जग विस्तरै ॥ जो सुनै  
 परमागम सुरुचिसों, नीति मारगं पग धरै ॥ जो  
 निरखि दीन दया प्रयुंजै, कामं क्रोधादिकं हरै ॥ जो  
 सुधन सपत सुखेत खरचै, ताहिं सिवसंपति वरै ॥ ४४ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ कृत्वा अर्हत्पदपूजनं  
 यतिजनं नत्वा विदित्वाऽग्मं, हित्वा संग-  
 मुधर्मकर्मठधियां पात्रेषु दत्त्वा धनम् ॥ ग-  
 त्वा पर्षतिमुत्तमक्रमजुषां जित्वां अतरारित्रि-  
 जम्, स्मृत्वा पञ्चनमस्त्रियां कुरु करक्रोड-  
 स्थमिष्टं सुखम् ॥ ४५ ॥

अर्थः—हे श्राद्धजन ! एटबां वानां करिने  
 ( इष्टं के० ) वांछित एवा ( सुखं के० ) सुखने ( क-  
 रक्रोडस्थं के० ) हस्तोत्संगगत एटबे हाथमां तथा  
 खोलामां रहे एवा ने ( कुरु के० ) कर. शुं करीने  
 कर ? तो के ( अर्हत्पदपूजनं के० ) श्रीवीतराग  
 जगवानना पदपूजनने ( कृत्वा के० ) करीने तथा  
 ( यतिजनं के० ) साधुजनने ( नत्वा के० ) नम-  
 स्कार करीने तथा ( आगमं के० ) सिद्धांतने ( वि-  
 दित्वा के० ) जाणीने अथवा सांज्ञलीने तथा ( अ-  
 धर्मकर्मठधियां के० ) पापासक्त बुद्धिवाला जनोना  
 ( संगं के० ) संगने ( हित्वा के० ) त्याग करीने  
 तथा ( पात्रेषु के० ) सुपात्रने विषे ( धनं के० ) धनने  
 ( दत्त्वा के० ) आपीने तथा ( उत्तम क्रमजुषां के० )

उत्तम मार्गना सेवनार जनोना ( पद्धतिं केण )  
 मार्गप्रत्येण ( गत्वा केण ) जइने तथा ( अंतरारिव्र-  
 जं के ) अच्युतरना वैरिसमूहने ( जित्वा केण )  
 जीतीने तथा ( पंचनमस्कियां केण ) पंचपरमेष्ठिन-  
 मस्कार मंत्रने ( स्मृत्वा केण ) स्मरण करीने तथा  
 एमनुंज ध्यान करीने इष्टित सुखने करोत्संगप्राप्त  
 कर. एटदे कर जे हाथ अने उत्संग जे खोदो  
 तेने विषे प्राप्त कर ॥ ४५ ॥

टीकाः—कृत्वाऽर्हतिति ॥ जोश्राद्ध ! एतानि कृ-  
 त्वा इष्टं वांडितसुखं कर क्रोडस्थं हस्तोत्संगगतं  
 कुरु । करोत्संगप्राप्यं कुरु । किं कृत्वा ? अर्हत्पदपू-  
 जननं वीतरागचरणपूजां कृत्वा । पुनर्यतिजननं साधु-  
 जननं नत्वा । पुनरागमं सिद्धांतं विदित्वा ज्ञात्वा  
 श्रुत्वा । पुनः अधर्मकर्मरधियां पापासक्तबुद्धीनां सं-  
 गं संसर्गं त्यक्त्वा परित्यज्य । पुनः पात्रेषु निजं ध-  
 नं वित्तं दत्वा । पुनः उत्तमक्रमजुषां उत्तममार्गसे-  
 विनां पद्धतिं मार्गं प्रति गत्वा अनुश्रित्य पुनरंतरा-  
 रिव्रजं अंतरंगारिषड्गं आच्युतं वैरिसमूहं जि-  
 त्वा । पुनः पंच नमस्कियां नमस्कारमंत्रं स्मृत्वा  
 ध्यात्वा इष्टं सुखं करोत्संगप्राप्यं कुरु ॥ ४५ ॥

( ३७६ )

ज्ञाषाकाव्यः—वस्तुष्ठंद ॥ देव पूजहिं देव पूज-  
हिं रचहिं गुरु सेव ॥ परमागम रुचि धरहिं, तज-  
हिं दुष्ट संगति तत्त्वन ॥ गुनिसंगति आदरहिं, कर-  
हिं त्याग दुरज्ज्ञ ज्ञन ॥ देहि सुपत्तहिं दान नित,  
जपहिं पंच नवकार ॥ ए करनी जे आचरहिं, ते  
पावहिं ज्ञवपार ॥ ४५ ॥

हरिणीवृत्तम् ॥ प्रसरति यथा किर्तिर्दिङ्कु  
द्धपाकरसोदरा, उच्युदयजननी याति स्फा-  
ति यथा गुणसंततिः ॥ कलयति यथा वृ-  
द्धि धर्मः कुकर्महतिद्वमः, कुशल-सुखने  
न्याये कार्यं तथा पथि वर्तनम् ॥ ४६ ॥

अर्थः—हे प्राणी ! ( न्याये के० ) न्यायोपपन्न  
एवा ( पथि के० ) मार्गने विषे ( तथा के० ) तेवी  
रीतें ( वर्तनं के० ) वर्तन ( कार्यं के० ) करवा यो-  
ग्य ढे. केवी रीते ? तो के ( यथा के० ) जेम ( दि-  
क्षु के० ) चारेदिशाउमां ( द्धपाकरसोदरा के० )  
चंद्रकिरणसमान उज्ज्वल एवी ( कीर्तिः के० ) की-  
र्ति ( प्रसरति के० ) प्रसरे ढे. वली ( यथा के० )  
जेम ( अच्युदयजननी के० ) उदयने करनारी एवी

( गुणसंततिः केष्ट ) गुणश्रेणि, ( स्फातिं केष्ट ) वि-  
स्तारने ( याति केष्ट ) पामे डे. तथा वद्धी ( यथा  
केष्ट ) जेम ( कुकर्महतिहमः केष्ट ) पापहनने विषे  
समर्थ एवो ( धर्मः केष्ट ) धर्म, ( वृद्धिं केष्ट ) वृ-  
द्धिने ( कलयति केष्ट ) प्राप्त थाय डे. ते न्याय मा-  
र्ग केहवो डे ? तो के ( कुशबसुखन्ने केष्ट ) चतुर  
पुरुषोयें सुखन्ने डे ॥ एष ॥

टीकाः—प्रसरतीति ॥ न्यायये न्यायोपपन्ने पथि  
मार्गे तथा प्रवर्त्तनं कार्यं तथा प्रवृत्तिः कार्या । यथा  
दिक्कु चतुर्षु दिक्कु द्वपाकरसोदरा चंद्रकिरणवद्धु-  
ज्ज्वला कीर्तिः स्फुरति विस्तरति । पुनर्यथा अ-  
न्युदयजननी उदयकारका गुणसंततिर्गुणश्रेणिः स्फा-  
तिं याति विस्तारं ब्रजति । पुनर्यथा कुकर्महतौ  
पापहनने हमः समर्थो धर्मो वृद्धिं कलयति वृद्धिं  
प्राप्नोति । तथा न्याये पथि न्यायमार्गे प्रवर्त्तनं का-  
र्यं । कथंचूते न्याये पथि ? कुशबैश्चतुरपुरुषैः सुख-  
न्नः सुप्रापः सुखेन लभ्यस्तस्मिन् ॥ एष ॥

नाषाकाव्यः— दोहा ॥ युन अरु धर्म सुधिर रहै,  
जस प्रताप गंजीर ॥ कुशबै वृक्ष जिम लहलहै,  
तिहिं मारग चलो वीर ॥ एष ॥

शिखरिणीवृत्तद्वयम् ॥ करे श्लाघ्यस्त्यागः  
 शिरसिगुरुपादप्रणमनम्, मुखे सत्या वाणी  
 श्रुतमधिगतं च श्रवणयोः ॥ हृदि स्वर्डा वृ-  
 त्तिर्विजयि चुजयोः पौरुषमहो, विनाप्यैश्व-  
 र्येण प्रकृतिमहतां मंकुमिदम् ॥ ४७ ॥

अर्थः—( अहो केष्ट ) आश्र्वय ढे के ( प्रकृतिम-  
 हतां केष्ट ) स्वज्ञावें करी उत्तम एवा जनोने ( वि.  
 नाप्यैश्वर्येण केष्ट ) साम्राज्यविना पण ( इदं केष्ट )  
 आ हवे केहेवाशे ते ( मंकुनं केष्ट ) चूषण ढे. ते  
 शुं चूषण ढे ? तो के ( करे केष्ट ) हाथने विषे  
 ( त्यागः केष्ट ) दान तेज ( श्लाघ्यः केष्ट ) श्लाघ्य  
 ढे. पण कंकणादि चूषण मंकुन नथी. तथा ( शि-  
 रसि केष्ट ) मस्तकने विषे ( गुरुपादप्रणमनं केष्ट )  
 गुरुजनना पदने विषे प्रणाम तेज मंडन ढे, परंतु  
 मुकुटतिक्षकादि नथी. ( च केष्ट ) तथा ( मुखे केष्ट )  
 मुखने विषे ( सत्या केष्ट ) सत्य एवी ( वाणी केष्ट )  
 वाणी तेज मंकुन ढे परंतु तांबूलादि नथी. तथा ( श्र-  
 वणयोः केष्ट ) कानने विषे ( अधिगतं केष्ट ) चण्डुं एवुं  
 ( श्रुतं केष्ट ) सिङ्घांत तेज मंकुन ढे, परंतु कुंभादि

( ३४४ )

दि नथी. ( हृदि केष ) हृदयने विषे ( स्वष्टा केष )  
निर्मल एवी ( वृत्तिः केष ) व्यापार तेज मंमन ढे,  
परंतु हारमालादि नथी. तथा ( चुजयोः केष )  
बेहुहाथने विषे ( विजयि केष ) जयनशील एवुं  
( पौरुषं केष ) पुरुषार्थ तेज मंमन ढे, परंतु केयूरा-  
दि नथी. अर्थात् महान् पुरुषोने धनादिविना पण  
आपूर्वोक्त सर्व मंमन रूप ढे ॥ ४७ ॥

टीकाः—करइति ॥ अहो आश्र्यें प्रकृतिमहतां  
स्वज्ञावेनोत्तमानां पुंसां ऐश्वर्येण साम्राज्येन विनाऽपि  
इदं मंमनं अस्ति । इदमिति किं ? करे हस्ते  
त्यागोदानं श्खाद्यः मंमनं न कंकणादि । पुनः शि-  
रसि गुरुणां पादयोश्चरणयोः प्रणमनं नमस्कारकरणं  
मंमनं न मुकुटतिथकादीनि । मुखे सत्या वाख्येव  
मंमनं न तांबूलादि । श्रवणयोः कर्णयोः अधिगतं  
पठितं श्रुतं शास्त्रमेव मंमनं न कुंमलादि । हृदि हृ-  
दये स्वष्टा निर्मला वृत्तिव्यापारएव मंडनं न हार-  
मालादि । चुजयोर्बाह्योर्विजयिजयनशीलं पौरुषं  
प्रराक्रमो धर्मविषये यद्वलं तदेव मंडनं न केयूरादि ।  
महतां पुंसां धनं विनापि दैयैव मंडनं ॥ ४७ ॥

ज्ञाषाकाव्यः—कवित्त मात्रात्मक ॥ वंदनं विनय

मुक्तुट शिर उपर, सुगुरु वचन कुंमखयुग कान ॥  
 अंतरशत्रु विजय जुजमंसन, मुगति माल उर गुन  
 अमलान ॥ त्याग सहज कर कटक विराजत, शो-  
 चित सत्य सबद मुख पान ॥ चूखन तजहिं तहुं  
 तन मंसित, यातें संत पुरुष परधान ॥ ए७ ॥

नवारण्यं मुक्त्वा यदि जिगमिषुमुक्तिनग-  
 रीम्, तदानींमा कार्षीर्विषयविषवृद्धेषु वस-  
 तिम् ॥ यतश्चग्रायाप्पेषां प्रथयति महामो-  
 हमचिरा, दयं जंतुर्यस्मात्पदमपि न गंतुं  
 प्रज्ञवति ॥ ए८ ॥ इति सामान्योपदेश-  
 प्रक्रमः ॥ २७ ॥

अर्थः—हे श्रावकजन ! ( यदि केण ) जो ( न-  
 वारण्यं केण ) संसाररूप अटवीने ( मुक्त्वा केण )  
 मूकीने ( मुक्तिनगरीं केण ) मोक्षनगरी प्रत्यें ( जि-  
 गमिषुः केण ) जवाने इठतो एवो तुं गो, ( तदानीं  
 केण ) त्यारें तो ( विषयविषवृद्धेषु केण ) विषयरूप  
 जे विषवृक्षो तेने विषे ( वसतिं केण ) निवासने  
 ( माकार्षीः केण ) म कर. ( यतः केण ) जेकारण  
 माटें ( एषां केण ) ए विषयविषवृक्षोनी ( ग्रायापि

केण ) ग्राया पण ( महामोहं केण ) महोटा अङ्ग-  
नने ( प्रथमयति केण ) विस्तारे डे. जेम बीजी पण  
विषवृद्धोनी ग्राया डे, ते महोटी मूर्ढने उत्पन्न करे  
डे. अने ( यस्मात् केण ) जे महामोहं थकी ( अ-  
यं केण ) आ ( जंतुः केण ) जीव, ( अचिरात् केण )  
वेगें करी ( पदमपिगंतुं केण ) एक पगदुं पण  
चालवाने ( नप्रज्ञवति केण ) समर्थ थातो नथी.  
अर्थात् स्थावरपणाने प्राप्त थाय डे ॥ ४७ ॥  
इति सामान्योपदेशप्रक्रमः ॥ ४८ ॥

टीकाः—ज्ञवारण्यमिति ॥ ज्ञो श्राद्ध ! ज्ञवारण्यं  
संसाररूपां अटर्वीं मुक्त्वा त्यक्त्वा यदि मुक्तिनगरीं  
सिद्धिपुरीं प्रति जिगमिषसि गंतुकामोऽसि तदानीं  
विषयाएव विषवृद्धास्तेषां वसतिं निवासं माकार्षीः  
मा कृथाः । कुतः ? यतोयस्मात् कारणात् एषां वि-  
षयविषवृद्धाणां ग्रायाऽपि महामोहं महदङ्गानं प्र-  
थयति विस्तारयति । अन्येषामपि विषवृद्धाणां  
ग्राया महामोहं महतीं मूर्ढां जनयति । यस्मान्महा-  
मोहाद्यं जंतुः प्राणी अचिराद्वेगात् पदमपि गंतुं एकं  
पादमपि चकितुं न शक्नोति । किंतु ? स्थावरत्वं  
प्राप्नोति ॥ ४७ ॥ सिंदूरप्रकरण्यं, व्याख्यायां हर्ष-

( ३४ )

कीर्तिन्जिः ॥ सूरिन्जिर्विहितायां तु, सामान्यप्रक्र-  
मोऽजनि ॥ ३२ ॥ इति सामान्योपदेशप्रक्रमः ॥ ३२ ॥

हवे एक काव्ये करी ग्रंथनुं समर्थन करे छे.

उपजातिवृत्तम् ॥ सोमप्रज्ञाचार्यमज्ञा च  
यन्न, पुंसां तमःपंकमपाकरोति ॥ तदप्पमु-  
ष्मिन्नुपदेशखेशे, निशम्यमानेऽनिशमेति ना-  
शम् ॥ ३३ इति ग्रंथसमर्थनम् ॥

अर्थः—( सोमप्रज्ञा केण ) चंद्रनीकांति ( च केण )  
ब्रह्मी ( अर्यमज्ञा केण ) सूर्यनीकांति ते ( पुंसां केण )  
पुरुषोना ( यत् केण ) जे ( तमःपंकं केण ) अंधका-  
ररूप जे कचरो तेने ( नश्रपाकरोति केण ) नशी  
नाश करती. ( च केण ) परंतु ( तदपि केण ) ता-  
द्वश एवो पण अङ्गान अने पापरूप कचरो ते ( अ-  
मुष्मिन् केण ) आ सिंदूरप्रकराख्यनामा ( उपदेश-  
खेशे केण ) उपदेशनो खेश ते ( निशम्यमाने केण )  
सांचखे डते ( अनिशं केण ) रात्रि दिवस एटखे  
निरंतर ( नाशं केण ) नाशने ( एति केण ) पामे  
छे. अर्थात् आ सिंदूरप्रकर सांचखवाथी तम जे  
पाप अने अङ्गान ते नाशने पामे छे. आ श्लोकमाँ

( ३७३ )

‘सोमप्रज्ञा’ ए पदधी ग्रंथकर्त्तायें पोतानुं सोमप्रज्ञा-  
चार्य एवुं नाम पण सूचव्युं रे ॥

टीका:-अथ समर्थयति ॥ सोमप्रज्ञेति ॥ सोम-  
प्रज्ञा चंडकांतिश्च पुनः अर्यमन्ना सूर्यप्रज्ञाऽपि पुंसां  
यत्तमः पंकं अंधकारकर्द्दमं न अपाकरोति न दूरी करो-  
ति । तदपि तावशमपि तमः पंकं अङ्गानपापं अमु-  
ष्मिन् सिंदूर प्रकराख्ये उपदेशादेशे निशम्यमाने श्रू-  
यमाणे सति अनिशं निरंतरं नाशं एतिहयं याति ।  
एतत् श्रवणात्तत्तमः पापं च याति । अत्र सोम प्र-  
ज्ञाचार्य ईति ग्रंथकृता खनामापि सूचितम् ॥ ४५ ॥  
इति ग्रंथसमर्थनम् ॥

हवे एक श्लोकथी प्रशस्ति कहे डे ॥

मालिनीवृत्तम् ॥ अन्नजदजितदेवाचार्यप-  
द्वोदयादि, श्यु मणिविजयसिंहाचार्यपादारविं-  
दे ॥ मधुकरसमतां यस्तेनसोमप्रज्ञेण, व्य-  
रचिमुनिपराङ्गा सूक्तमुक्तावलीयम् ॥ १०० ॥  
इति प्रशस्तिः ॥ इति सिंदूरप्रक्रमः समाप्त ॥

अर्थः—( तेन केऽ ) ते ( सोमप्रज्ञेण केऽ ) सो-  
मप्रज्ञनामा ( मुनिपराङ्गा केऽ ) मुनिप जे मुनि-

श्रेष्ठ तेमना जे राजा एवा सूरीश्वर तेमणे ( इयं केण ) आ ( सूक्तमुक्तावली केण ) सु नाम शोजायमान प्रस्ताववालां उक्त एटद्वे काव्य ते रूप मुक्ता जे मोतीयो तेनी आवली जे पंक्ति ते ( व्यरचि केण ) विरचित करी. ते क्या सोमप्रज्ञाचार्य ? तो के ( यः केण ) जे अजितदेवा चार्यपद्मोदयाद्वि अजितदेवनामा आचार्यना पद्मरूप उदयाचलने विषे ( शुभणि केण ) सूर्यसमान एवा जे ( विजयसिंहाचार्य केण ) विजयसिंहाचार्य तेना ( पादारविंदे केण ) चरणारविंदने विषे ( मधुकरसमतां केण ) भ्रमरनी समानताने ( अञ्जजत् केण ) जज्ञता हवा ॥ १०० ॥ ए प्रशस्ति कही ॥ इति सिंदूरप्रकरस्य बालावबोधः समाप्तः ॥

टीकाः अथ प्रशस्तिमाह ॥ अञ्जजदजितदेवेति ॥ तेन सोमप्रज्ञेण मुनि पराङ्गा मुनिपाः मुनिश्रेष्ठास्तेषां राजा सूरीश्वरस्तेन मुनिपराङ्गा सूरीश्वरेण इयं सूक्तमुक्तावलिः सूक्तान्येव सुचूषितान्येव शोजनप्रस्तावकाव्यान्येव मुक्तामौक्तिकानि मुक्ताफलानि तेषामावलिः श्रेणिः व्यरचि चिरचिता । तेन केन ? यः सोमप्रज्ञः अजितदेवनामाचार्यस्य पद्मएव

उदयाद्विरुदयाचलः तत्र द्युमणिः सूर्यसमानोविजय-  
सिंहाचार्यस्तस्य पादारविंदे चरणकमले मधुकरसमतां  
भ्रमरतुल्यतां अन्नजत् प्राप । अर्थात् पूर्वमजितदेवा-  
चार्यस्तस्य सोमप्रज्ञाचार्यस्तेनेयं सिंदूरप्रकरनामा  
सूक्तमुक्तावली व्यरचि कृता ॥ १०० ॥ इति प्रशस्तिः  
॥ इति श्रीसिंदूरप्रकराख्यग्रंथस्य हर्षकीर्तिसूरिविर-  
चिता व्याख्या समाप्ता ॥

ज्ञाषाकाव्यः—सर्वैर्या इकतीसा ॥ गहैं जे सुज-  
नरीति, गुनीसों निवाहै प्रीति, सेवा साधै गुरुकी,  
विनैसों कर जोरिके ॥ विद्याको विसन धैर, पर-  
तिय संगहरै, ऊर्जनकी संगतिसों, बैठे मुख मोरि-  
के ॥ तजै लोक निंधकाज, पूजै देव जिनराज, करै  
जे करणि थिर, उमंग बहोरिके तेही जीव सुखी  
होहिं, तेहि, मोखमुखी होहिं, तेही होइ परम,  
करमफंद तोरिके ॥ ४७ ॥

वृत्त ऊपर प्रमाणे ॥ पर निंदा त्याग करु, मन-  
में वैराग धरु, क्रोध मान माया लोज, च्यारो परि-  
हर रे ॥ हिरदेमें तोष गहु, समतासो शीरो रहु,  
धरमको न्नेद लहु, खेदमें न पर रे ॥ करमकों वंस  
खोज, मुग्निको पंथ जोड सुकृतको बीज बोज,

दुरितसों फर रे ॥ अरे नर ऐसो होहि, वार  
वार कहुं तोहि, नांहि तौ सिधार चैया, निगोद  
तेरो घर रे ॥ ४४ ॥

कवित्त मात्रात्मक ॥ आखस त्यागु जागु नर  
चेतन, बल संज्ञारु मति करहुं विलंब ॥ इहाँ न  
सुख लवक्षेश जगतमहिं, निंब विरखमहिं लगै न  
अंब ॥ तातें तूं अंतर विपक्ष हरु, करु, विलक्ष  
निज अक्षकदंब ॥ गहु गुन झान वैष्ठ चारित रथ,  
देहि मोख मग सनमुख बिंब ॥ १०० ॥

अथ अन्नोग कवित्त मात्रात्मक ॥ जैन वंस स-  
र हंस सितंबर, मुनिपति अजितदेव अतिआरज ॥  
ताके पट्ट वादिमदञ्जन, प्रगटे विजयसिंह आचा-  
रज ॥ ताके पट्ट जए सोमप्रज, तिन्है गिरंथ कि-  
यो हितकारज ॥ जाके पढत सुनत अवधारत, हो-  
इ पुरुष जे, पुरुष अनारज ॥ १०१ ॥ दोहा ॥ नाम  
सूक्तमुक्तात्मदी, छाविंशति अधिकार ॥ सत सिद्धो-  
क परधान सब, इति गरंथ विस्तार ॥ १०२ ॥ कौं-  
रपाल बनारसी, मित्रयुगल इक चित्त ॥ तिन गरं-  
थ नाषा कियो, बहुविधि ठंद कवित्त ॥ १०३ ॥  
सोलहसें इक्या नवैं, रितु ग्रीष्म वैसाख ॥ सोम

( ३७४ )

वार एकादशी, कर नक्षत्र सित पाख ॥ १०४ ॥  
आ ज्ञाषा करनारें बीजी टीका उपरथी रचना क-  
रेक्षी देखाय ढे जे माटें कोइ कोइ स्थलें अर्थमां  
कचित् फेर दीठामां आवे ढे. अने ढेहलां बे का-  
व्यनो अर्थ फेरव्यो ढे.

इति सोमप्रज्ञाचार्यविरचित सिंदूरप्रकरः ( सूक्त-  
मुक्तावदि ) ग्रंथ हर्षकीर्ति सूरिकृत युक्ति, व्याख्या  
अन्यपंमितकृत बालावबोध संयुत, बनारसीदासकृ-  
तज्ञाषाकाव्यसहितः समाप्तः ॥ समाप्तोयं ग्रंथः ॥

